

जीवराज जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थ १८

ग्रन्थमाला संपादक
प्रो. आ. ने. उपाध्ये व प्रो. हीरालाल जैन

श्री—भावसेन—त्रिविष्णु—विरचित

प्रमापमेय

(सिद्धान्तसार मोक्षशास्त्र का प्रथम परिच्छेद)

प्रस्तावना, हिन्दी अनुवाद, तुलनात्मक टिप्पणी इत्यादि
सहित प्रथमवार संपादित

संपादक

प्रा. डॉ. विद्यावर जोहरापूरकर पम्.ए., पीएच.डी.
संस्कृतविभाग, शासकीय महाविद्यालय, मध्यप्रदेश (म.प.)

प्रकाशक

गुलाबचन्द्र द्विराजन्द दोशी
जैन संस्कृति संरचना संघ, सोलायूर,

वीर नि. सं. २५९२]

लत १९६६

[विक्रम सं. २०२२

मूल्य रुपये ५ मात्र

विषयसूची

General Editorial	i-ii	११. परोक्ष प्रमाण के भेद	८
Introduction	iii-iv	१२. स्मृति	८
अस्ताचना	(२)-(६)	१३. प्रत्यमिश्राज	९
१. प्रारम्भिक		१४. ऊहापोह	१०
२. अध्यकार		१५. तके	११
३. प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम		१६. अनुमान	१२
४. विश्वतत्त्वप्रकाश तथा प्रमापमेय		१७. पक्ष	१३
५. प्रमापमेय तथा कथाविचार		१८. उत्थ	१४
६. लंपाइनसामग्री		१९. हेतु	१५
७. प्रमुख विषय		२०. दृष्टान्त	१६
८. कुछ प्रमुख विशेषताएँ		२१. उपनिषद-नियमन	१७
९. उपरंहार		२२. हेतु पक्ष का खर्च होता है १८	
मूल ग्रन्थ तथा अनुवाद		२३. पक्षबर्म हेतु व्यासिमान होता है १९	
१. मंगलाचरण	१	२४. अपक्षबर्म हेतु नहीं होता २०	
२. प्रमाण का लक्षण	१	२५. हेतु के लक्षण का समाप्ति २०	
३. प्रत्यक्ष प्रमाण के भेद	२	२६. अन्वयन्यतिरेकी अनुमान २१	
४. इन्द्रिय प्रत्यक्ष	२	२७. केवलस्यतिरेकी अनुमान २२	
५. मानस प्रत्यक्ष	३	२८. केवलस्यतिरेकी अनुमान २३	
६. अवग्रह आदि शास्त्र	४	२९. अनुमानभास्त्र २४	
७. वोगिप्रत्यक्ष-अवजिशास्त्र	४	३०. असिद्ध के भेद २५	
८. मनःपर्याय शास्त्र	५	३१. असिद्ध के होते हुए विरद्ध	२७
९. स्वसंबोधन प्रत्यक्ष	५	३२. तपक्ष के होते हुए विरद्ध	
१०. अत्यक्षाभास्त्र	६	के भेद ३०	

३३, सूपक के अभाव में विवर के भेद	५४, असिद्धादित्यमा	५४
३४, पश्चिमायक अनैकानितिक के भेद	५५, धन्यवद्यार्थित्यमा	५५
३५, पञ्चिकदेशी अनैकानितिक के भेद	५६, प्रासित्यमा-अप्रासित्यमा	५६
३६, अकिञ्चित्कर	५७, प्रसंगसमा	५७
३७, अनध्यनसित	५८, प्रतिष्ठान्तसमा	५८
३८, कालात्ययापदित्य	५९, उत्पत्तिसमा	५९
३९, प्रकरणसमा	६०, संशयसमा	६०
४०, अन्वेष्यहष्टान्तामास	६१, प्रकरणसमा	६१
४१, व्यतिरेक हष्टान्तामास	६२, अद्वेतुसमा	६२
४२, हष्टान्तामासों में व्याप्ति की विकल्पता	६३, अर्थात्तिसमा	६३
४३, तर्क	६४, उपपत्तिसमा	६४
४४, तर्क के दोष	६५, लिखित्यसमा	६५
४५, छल	६६, नित्यसमा व अनित्यसमा	६६
४६, वाक्छल	६७, कार्यसमा	६७
४७, सामान्यछल	६८, जातिधो की संख्या	६८
४८, उत्तरार्छल	६९, नियवद्यान	६९
४९, जातियो	७०, प्रतिज्ञाहानि	७०
५०, साधन्यसमा-वैष्णन्यसमा	७१, प्रतिज्ञान्तर	७१
५१, उत्कर्षसमा-आपकर्षसमा	७२, प्रतिज्ञाविरोध	७२
५२, वर्ण्यसमा-अवर्ण्यसमा	७३, प्रतिज्ञासंन्यास	७३
५३, विकल्पसमा	७४, उत्पान्तर	७४
	७५, अर्थान्तर	७५
	७६, निर्धेक	७६

७८. अविज्ञातार्थक	६९	१०३. पत्र के विषय में अर्थ
७९. अपार्थक	७०	और परार्थ
८०. अप्रसंकाल	७०	१०४. बाद और अस्त्र
८१. हीन	७१	१०५. चार कथाएँ
८२. अधिक	७१	१०६. तीन कथाएँ
८३. अन्य नियमित्यान	७१	१०७. बाद के लक्षण का स्पष्टिकन १४
८४. नियमित्यानों का उपसंहार	७२	१०८. अस्त्र के लक्षण का स्पष्टिकन १५
८५. छुल आदि का प्रयोग	७३	१०९. बाद और अस्त्र में भेद नहीं १६
८६. बाद	७३	११०. क्या बाद का साधन
८७. व्याल्डावाद	७५	प्रस्ताव है ? १७
८८. गोट्टीवाद	७६	१११. क्या बाद का साधन
८९. विवादवाद	७७	सर्के है ? १८
९०. बाद के चार अंग	७९	११२. क्या बाद का सिद्धान्त
९१. सभापति	८१	अविश्वद होता है ? १०१
९२. सम्म	८०	११३. बाद के पांच अवयव १०२
९३. पश्चात्र की निन्दा	८२	११४. बाद के पांच अवयव १०३
९४. बादी और प्रसिद्धादी	८३	११५. बाद और अनुभान
९५. तात्त्विक बाद	८४	में भेद १०४
९६. प्रातिभवाद	८५	११६. पांच अवयवों का
९७. नियतार्थवाद	८६	दूसरा अर्थ १०५
९८. परार्थनवाद	८६	११७. बाद में पत्र और प्रसिद्धि १०६
९९. पत्र का लक्षण	८७	११८. अस्त्र के लक्षण का स्पष्टिकन १०७
१००. पत्र के अंग	८८	११९. विसंगति के लक्षण
१०१. पत्र का स्वरूप	८९	का स्पष्टिकन १०८

११८. चर्चप-विद्युता तत्त्व के		१२५. द्रव्यप्रमाण	११९
रक्षक नहीं हैं	११०	१२६. क्षेत्रप्रमाण	१२०
११९. वाद ही तत्त्व का रक्षक है १११		१२७. कालप्रमाण	१२१
१२०. क्या चर्चप-विद्युता विजय		१२८. उपमानप्रमाण	१२१
के लिए होते हैं ?	११२	१२९. अन्य प्रमाणों का	
१२१. वाद विजय के लिए		अन्तर्भूति	१२३
होता है	११३	१३०. उपर्युक्त	१२४
१२२. वाद और चर्चप में अभेद	११५	१३१. तुलना और समीक्षा	१२५-१२६
१२३. आगम	११७	१३२. लोकसूची	१२७-१२८
१२४. आगमभास	११८		

प्रस्तावना

१. प्रारम्भिक—आचार्य भावसेन बैविद्यदेव का विश्वतत्त्वप्रकाश नामक ग्रन्थ कुछ ही समय पहले इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हुआ है। उन का न्यायविषयक दूसरा ग्रन्थ ‘प्रमाप्रमेय’ अब हम प्रस्तुत कर रहे हैं।

२. ग्रन्थकार—इस ग्रन्थ के कर्ता आचार्य भावसेन का विस्तृत परिचय हमने विश्वतत्त्वप्रकाश की प्रस्तावना में दिया है। अतः यहाँ उस का सोरांश ही देना काफी होगा। ग्रन्थकार मूलसंब, सेनगण के आचार्य थे। बैविद्य यह उन की उपाधि दी जर्जीत के बालकरण, तर्क और अन्य इन तीन विद्याओं में पारंगत थे। उन के समाधिमरण का समारक आश्रम प्रदेश के अनन्तपुर जिले में अपराधपुरम प्राम के सभीय है। इस स्मारक का शिलालेख कल्पड भाषा में है तथा विश्वतत्त्वप्रकाश की प्रशस्ति के कुछ पद भी कल्पड में हैं। अतः ग्रन्थकार भी कल्पडभाषी रहे होंगे ऐसा प्रतीत होता है। उन के नाम से ग्रन्थसूचियों में निम्नलिखित ग्रन्थों का पता चलता है—
१. विश्वतत्त्वप्रकाश, २. कातन्त्रखण्डमाला, ३. प्रमाप्रमेय, ४. सिद्धान्तसार,
५. न्यायसूर्यावली, ६. सुक्षिमुक्षिविचार, ७. सप्तप्रदार्थीटीका, ८. शाकटायनव्याकरण टीका, ९. न्यायदीपिका तथा १०. कथाविचार। इन में से पहले दो प्रकाशित हो चुके हैं। तीसरा इस पुस्तक में प्रकाशित हो रहा है। औथे, पांचवें तथा छठवें ग्रन्थ के सूखमचित्र जर्मनी से प्राप्त हुए हैं किन्तु उन के अध्ययन का प्रबन्ध अभी नहीं हो सका है। शेष ग्रन्थों के बारे में अधिक विवरण नहीं मिल सका है। ग्रन्थकार का समय तेहवीं सदी के उत्तरार्ध में अनुमानित है। उन्होंने बाहवीं सदी तक के ग्रन्थों का उपयोग किया है तथा तुरुकशास्त्र का उल्लेख किया है, अतः सन १२५० यह उन के समय की पूर्वमर्यादा है। उन की कातन्त्रखण्डमाला की एक प्रति सन १३६७ की लिखी है, यही उन के समय की उत्तरमर्यादा है।

३. प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम—ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ के नामका दो प्रकार से उल्लेख किया है—प्रथम श्लोक में प्रमाप्रमेय यह नाम:

दिया है तथा अन्तिम पुष्टिपक्का में इसे सिद्धान्तसार मोक्षशास्त्र का प्रमाण-निखण भासक पहला परिच्छेद बताया है। इन में से हम ने पहला नाम ही शीर्षक के लिए उपयुक्त समझा है क्यों कि एक तो उस का उल्लेख पहले हुआ है, दूसरे, वह प्रथा के विषय के अनुरूप है तथा प्रन्थसूचियों में भी वही उल्लिखित है। प्रन्थकर्ता द्वारा उल्लिखित दूसरे नाम के सिद्धान्तसार तथा मोक्षशास्त्र ये दोनों अंश दूसरे प्रन्थों के लिए प्रयुक्त होते आये हैं—जिनचन्द्रकृत सिद्धान्तसार माणिकचन्द्र प्रन्थमाला में प्रकाशित हो चुका है तथा नरेन्द्रसेनकृत सिद्धान्तसारसंग्रह इसी ओवराज प्रन्थमाला में प्रकाशित हुआ है—अतः इस नाम को हम ने गीण स्थान दिया है। उस नाम से प्रन्थ के विषय का बोध भी नहीं होता।

४. विश्वतत्त्वप्रकाश तथा प्रमाप्रमेय—यही एक बात ध्यान देने योग्य है कि प्रमाप्रमेय को प्रन्थकार ने सिद्धान्तसार-मोक्षशास्त्र का प्रमाण-निखण भासक पहला परिच्छेद बताया है, इस से अनुमान होता है कि इस प्रन्थ का अगला परिच्छेद प्रमेयों के बारे में होगा। इसी प्रकार विश्वतत्त्वप्रकाश-मोक्षशास्त्र के पहले परिच्छेद के अन्त में आचार्य ने उसे अशेष-परमसंविचार यह नाम दिया है, इस से अनुमान होता है कि उस के दूसरे परिच्छेद में स्वमत का समर्थन होगा। दुर्भाग्य से इन दोनों प्रन्थों के ये उत्तराधि प्राप्त नहीं हैं। एकतरह से ये दोनों पूर्वार्थ एक-दूसरे के पुरक हैं क्यों कि इस प्रमाप्रमेय में प्रमाणों का विचार है तथा विश्वतत्त्वप्रकाश में प्रमेयों का विचार है।

५. प्रमाप्रमेय तथा कथाविचार—प्रन्थकर्ता ने विश्वतत्त्वप्रकाश में तीन स्थानों पर कथाविचार नाम का उल्लेख करते हुए सूचित किया है कि उस में अनुमानसंबंधी विविध विषयोंकी चर्चा है। वे प्रायः सब विषय इस प्रमाप्रमेय में वर्णित हैं। तथा इस के परिच्छेद १०३ से १२२ तक विशेष रूप से कथा (वाद के प्रकारों) का ही विचार किया गया है। अतः सम्बेद होता है कि आचार्य ने इसी अंश का विश्वतत्त्वप्रकाश में उल्लेख किया होगा। किन्तु यह भी संभव है कि इस विषय पर उन्हीं ने

कोई स्वतन्त्र प्रन्थ भी विस्तार से लिखा हो क्यों कि शब्द के अनित्यत्व के विषय में प्रामाकर मीमांसकों के मत का खंडन इस प्रमाप्रमेय में नहीं पाया जाता जिसका उल्लेख विश्वतत्त्वप्रकाश पृ. ९३ पर है ।

६. सम्पादनसामग्री—इस प्रन्थ की एकमात्र ताइफ़त्रीय प्रति के दर्शन हमने हुमच के श्रीदिवेन्द्रकीर्ति स्थामीजी के मठ में किये थे । यह प्रति कब्ज़ह लिपि में है । मैसूर के श्री फयनाम शर्मा के सहयोग से इस का देवनागरी रूपान्तर हमें प्राप्त हुआ । मठ से प्रति प्राप्त करने में श्रीमान धंडिल मुजबलि शास्त्रीजी का सहयोग भी उल्लेखनीय रहा । इसी प्रति से यह संस्करण तैयार किया गया है । प्रति बहुत शुद्ध है । केवल एक स्थान पर (परिच्छेद २९ में) हम अर्थनिर्णय करने में असफल रहे हैं । ऐसा कि लगा कहा है — यह प्रन्थ एक बड़े मन्थ का पहला परिच्छेद है । अतः इस में किसी उप-विभाग या प्रकारण आदि का विभाजन नहीं है । अध्ययन तथा अनुवाद की मुखिया के लिए हमने इसे १३० परिच्छेदों में विभक्त किया है तथा विषयानुसारी शीर्षिक दिये हैं । अनुवाद प्राप्तः शब्दशः किया है तथा स्पष्टीकरण का भाग ब्रैकेटों में रखा है ।

७. प्रमुख विषय—इस प्रन्थ में आचार्य ने प्रमाण अर्थात् वर्थार्थ ज्ञान के स्वरूप से संबंधित सभी विषयों का वर्णन किया है । प्रथम परिच्छेद में पंगलाचरण तथा विषयमिदेश करने के बाद दूसरे परिच्छेद में प्रमाण का लक्षण सम्पूर्ण ज्ञान अथवा पदार्थवायात्म्यनिश्चय यह बतलाया है । परि. ३ से १० तक प्रत्यक्ष प्रमाण तथा उस के चार भेदों का — इन्द्रियप्रत्यक्ष, मानसप्रत्यक्ष, योगिप्रत्यक्ष एवं स्वसंवेदनप्रत्यक्ष का वर्णन है । परि. ११ से १९ तक प्रत्यक्ष प्रमाण तथा उसके प्रकारों का — स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तक्तक ऊद्घाषोह का वर्णन है । प्रत्यक्ष प्रमाण का सब से महत्त्वपूर्ण प्रकार अनुमान है, उस के छह अक्षयवों का — पक्ष, साध्य, हेतु, उपनय, तथा निगमन का वर्णन परि. २० से २१ तक है । इन अक्षयवों में से हेतु के लक्षण की विशेष चर्चा परि. २२ से २९ तक है । परि. २९ से ३८ तक अनुमान के तीन प्रकार बतलाये हैं — केवलाचर्यी, केवलव्यतिरेकी तथा अन्वयव्यतिरेकी । परि. ३९ में इस से भिन्न प्रकार भी बतलाये हैं — दृष्ट,

- (इ) परोक्ष प्रमाण के छह भेद किये हैं - सूति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अहोपोह, अनुमान, आगम ।
- (ई) अनुमान के छह अवयव माने हैं - पक्ष, साध्य, हेतु, उष्टान्त, उपनय, निगमन ।
- (उ) हेतुका लक्षण अन्यथानुपपत्ति न मानकर व्याप्तिमान पक्षधर्म हीना माना है ।
- (ऊ) अनुमान के दो प्रकारों से भेद किये हैं - केवलान्वयी, केवल-व्यतिरेकी तथा अन्यव्यतिरेकी; इष्ट, सामान्यतोष्ट, अद्यष्ट ।
- (ऋ) हेत्वाभासों के सात प्रकार किये हैं - असिद्ध, विशद, अनैकानिक, अकिञ्चित्कर, अनध्यवसित, कालात्यथापदिष्ट तथा प्रकरणसम ।
- (ऋ) आत्माध्य, इतरेतराध्य आदि के लिए भी तर्क शब्द का प्रयोग किया है ।
- (ल) जातियोंकी संख्या बीस बतलाई है ।
- (ए) वाद के तीन (व्याख्या, गोष्ठी, विवाद) तथा चार (तारिक, प्रातिम, नियतार्थ, परार्थन) प्रकार बतलाये हैं ।
- (ऐ) वाद और जल्द में भेद होने का प्रबल खण्डन किया है ।
- (ओ) करणप्रमाण के अन्तर्गत इव्य, क्षेत्र तथा काल के नापने के प्रकार बतलाये हैं ।
- (औ) उपमानप्रमाण के अन्तर्गत आगमिक परंपरा के पल्य, रज्जु आदि की गणना भी बतलाई है ।

इन बातों के अवलोकन से स्पष्ट होगा कि जहाँ आचार्य ने ग्राचीन जैन आगमिक परम्परा के भावप्रमाण, करणप्रमाण, प्रत्यक्ष-परोक्ष आदि भेदों को सुरक्षित रखा है, वहा प्रत्यक्ष के भेद, हेतु का लक्षण, हेत्वाभास आदि के बर्णन में बौद्ध तथा नैयायिक विद्वानों के विचारों से भी लाभ उठाया है। जैन-जैनेतर विचारों के समन्वय की इस दृष्टि से यह मन्य महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा ।

९. उपर्युक्तहार—आचार्य भावसेन का यह दूसरा व्याख्याविषयक प्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। उन के पहले प्रन्थ विश्वतत्त्वप्रकाश की तुलना में यह प्रन्थ काफी छोटा है तथा प्रत्येक विषय की साधक-बाधक चर्चा भी इस में उतने विस्तार से नहीं है। तथापि विचारों की स्वतत्त्वता को दृष्टि से इस का महत्त्व अद्वितीय सिद्ध होगा। हमें आशा है कि आचार्य के शेष प्रन्थों के प्रकाशन का प्रबन्ध भी निकट भविष्य में हो सकेगा। इस प्रन्थ की प्रति की प्राप्ति के लिए हम श्रीदेवेन्द्रकीर्ति स्वामीजी, हुममच, श्री. पंडित मुजबलि शास्त्रीजी, मुडविद्री तथा श्री. पद्मनाम शर्मा, मैसूर के बहुत आभारी हैं। इस के प्रकाशन की स्वीकृति के लिए आदरणीय डॉ. उपाध्येजी तथा डॉ. हीरालालजी के प्रति भी हम कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

जावरा
दीपावली }
शक १८८६ }

विद्याधर जोहरापुरकर

श्री-भावसेन-त्रिविद्वदेव-विरचितं

प्रमाप्रमेयम्

[सिद्धान्तसार-सोक्षशास्त्रस्य प्रथमः परिच्छेदः]

॥ यमः सिद्धेभ्यः ॥

[१. सङ्गलाचरणम्]

श्रीवर्षमानं सुरराजपूजये साक्षात्कृतारोषपदार्थतत्त्वम् ।
सीख्याकरं सुकृतयतिं प्रणाम्य प्रमाप्रमेयं प्रकटं प्रबद्धये ॥ १ ॥
वालव्युत्पत्त्यर्थं शास्त्रमिदं रच्यते मया स्पष्टम् ।
उद्देशालक्षणादौ सोढव्यं विश्वविद्वद्भिः ॥ २ ॥

[२. प्रमाणलक्षणम्]

अथ किं प्रमाणम् । पदार्थयाधात्मनिष्ठ्यः प्रमाणम् । तच्च भाव-
प्रमाणं करणप्रमाणमिति द्विविधम् । प्रमितिः प्रमाणमिति भावव्युत्पत्त्या

[अनुवाद]

देवों के राजा—इन्द्रों द्वारा पूजित, सुख के आकर—श्रेष्ठ निवि, सुकृति के स्थानी, तथा समस्त पंडाथों के स्वरूप को जिन्होंने साक्षात्-प्रत्यक्ष जाना है उन श्रीवर्षमान-महाबीर जिन को प्रणाम कर के मैं प्रमाप्रमेय-प्रमाण तथा उन के विषयों—का स्पष्ट वर्णन करूँगा ॥

अज्ञानी लोगों की ज्ञान कराने के लिए मैं इस शास्त्र की स्पष्ट रूप से रचना करता हूँ । इस के उद्देश्य-संज्ञाओं में तथा लक्षणों—व्याख्याओं आदि में (कोई हृषि हो तो उसे) समस्त विद्वान् सहन करें (—क्षमा कर के सुधारें) ॥

प्रमाण का लक्षण

प्रमाण क्या है ? पदार्थ के वास्तविक स्वरूपके निष्ठ्य को (—पदार्थ ज्ञान की) प्रमाण कहते हैं । उसके दो प्रकार हैं — भाव प्रमाण तथा करण

सम्यक् ज्ञानमेव प्रमाणम् । प्रकर्त्तेण संशयविषयसाकृत्यवसायव्यवच्छेत्—
देह मीथते निश्चीयते वस्तुतत्त्वं येन तत् प्रमाणमिति करणव्युत्पत्त्वा
सम्यक् ज्ञानसाधनं प्रमाणम् । तत् प्रत्यक्षं परोक्षमिति द्विविधम् ॥

[३. प्रत्यक्षप्रमाणभेदा ।]

तत्र पदार्थीनां साक्षात् प्रतीत्यन्तराभ्यवधानेन वेदेन प्रत्यक्षम् ।
तत् साधनं च । तत्र इन्द्रियप्रत्यक्षं मानसप्रत्यक्षं योगिप्रत्यक्षं स्वसंवेदन-
प्रत्यक्षमिति चतुर्धा ॥

[४. इन्द्रियप्रत्यक्षम्]

आत्माबधानेनाभ्यग्रमनसा सहकृतात् निर्वृतेन्द्रियात् आत्मम्
इन्द्रियप्रत्यक्षम् । इन्द्रियं च स्पर्शसंसनव्याप्तिश्चाऽत्रोत्तेन्द्रियमिति पञ्चं
विधम् । तत् प्रत्येकं द्रव्यभावमेवात् द्विविधम् । निर्वृत्युपकरणे द्रव्ये-
न्द्रियम् । तत्र विरूपिः जाग्राद्युपुरुषः इत्युपकरणप्रत्यक्षं नातीतंस्थाना ।

प्रमाण । प्रमिति ही प्रमाण है इस भाव-व्युत्पत्ति के अनुसार सम्यक् ज्ञान ही
प्रमाण है । उत्तम रीतिसे अर्थात् संशय, विषयीस तथा अनिश्चय को दूर कर
के जो वस्तुतत्त्वका का निश्चय करता है वह प्रमाण है इस करण-व्युत्पत्ति के
अनुसार सम्यक् ज्ञान का साधन प्रमाण कहलाता है । प्रमाण के दो प्रकार
हैं—प्रत्यक्ष तथा परोक्ष ।

प्रत्यक्ष प्रमाण के भेद

साक्षात् अर्थात् दूसरे ज्ञान के व्यवधान के बिना जो पदार्थी का
जानना है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है । उस जानने के साधन की भी प्रत्यक्ष प्रमाण
कहते हैं । उस के चार प्रकार हैं— इन्द्रिय प्रत्यक्ष, मानस प्रत्यक्ष, योगिप्रत्यक्ष
तथा स्वसंवेदन प्रत्यक्ष ।

इन्द्रिय प्रत्यक्ष

आत्मा का अवधान होने पर तथा मन व्यग्र न हो उस समय— इन
दोनों के सहकार्य से निर्दोष इन्द्रिय से प्राप्त होनेवाला ज्ञान इन्द्रिय-प्रत्यक्ष है ।
इन्द्रिय पांच प्रकार के हैं— स्पर्शन, रसम, घ्राण, चक्षु तथा औत्र । इन में
प्रत्येक के दो प्रकार हैं— द्रव्य-इन्द्रिय तथा भाव-इन्द्रिय । द्रव्येन्द्रिय के दो
भाग हैं— निर्वृत्ति तथा उपकरण । इन में निर्वृत्ति (इन्द्रिय का अन्तर्भाग)
(स्पर्शनेन्द्रिय के लिए) कई प्रकारकी, (रसनेन्द्रिय के लिए) खुरपी की

उपकरणं सर्वाङ्गित्यग्निद्वानासागोलकपद्मपुरकर्णशङ्कुलीविवरप्रसूति ।
मनसो हृदये अष्टवलपश्चाकारं द्रव्येन्द्रियम् । लक्ष्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ।
तत्र ज्ञानवरणशयोपशमः लघिः । आत्मनो ग्रहणश्यापार उपयोगः ।
स्पर्शं रसगन्धरूपशब्दात्मस्मृत्यादयो विषयाः ॥

[५. मानसप्रत्यक्षम्]

आत्माबधानेन सहकृतात् मानसात् जाते मानसप्रत्यक्षम् । स्पृष्ट-
रसभवणश्चेन्द्रियं प्राप्तये ज्ञानञ्जनकम् । चक्षुरपापार्थे । मानसं स्वात्मनि
आकार की, (श्राणेन्द्रिय के लिए) कुरुद की कली जैसी, (चक्षु इन्द्रिय के
लिए) मरुर के दाने जैसी तथा (कर्ण इन्द्रिय के लिए) औ की नाली जैसी
होती है । (स्पर्शेन्द्रिय के लिए) उपकरणं संपूर्णं शरीर का त्वचा है,
(रसभेन्द्रिय के लिए) जीभ, (श्राणेन्द्रिय के लिए) नाक का
गोल भाग, (चक्षु इन्द्रिय के लिए) पलकें, तथा (कर्ण इन्द्रिय के लिए)
कान का शङ्कुलीविवर उपकरण होता है । हृदय के स्थान में आठ पंखुडियों
के कमल के आकार का मन है, वह मन के लिए द्रव्येन्द्रिय (द्रव्य मन)
समझना चाहिए । भावेन्द्रिय के दो भाग हैं - लघितथा उपयोग । ज्ञान-
वरण कर्म के क्षयोपशम को लघित कहते हैं । आत्मा द्वारा (पदार्थ के) ग्रहण
(जानने) के लिए प्रयत्न करना वह उपयोग कहलाता है । स्पर्श, रस,
गन्ध, रूप, शब्द तथा अपना स्वरूप एवं स्मृति आदि (इन इन्द्रियों के तथा
मन के) विषय हैं ।

मानस प्रत्यक्ष

ज्ञात्वा के अवधान के सहकार्य से मन द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है
वह मानस प्रत्यक्ष है । स्पर्शेन, रसेन, घाण तथा श्रोत्र से इन्द्रिय प्राप्त अर्थ का
(- जिस से संपर्क हो उसी पदार्थ का) ज्ञान करते हैं । चक्षु अप्राप्त अर्थ
(जिस से संपर्क न हो उस पदार्थ) का ज्ञान करता है । आत्मा तथा
उसकी शुद्धि, सुख, दुख, इच्छा, द्वेष एवं प्रयत्न के प्राप्त होने पर मन उस
के विषय में प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न करता है । स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, ऊहापोह,

तदीयबुद्धिसुखादुःखाद्वयप्रयत्ने च प्राप्ते प्रत्यक्षे ज्ञाने जनयति । स्मृति-
प्रत्यभिज्ञानोहापोहतकांनुमानागमादिपरोक्षज्ञानम् अप्राप्ते जनयति ॥

[६. अवग्रहादयः]

अनभ्यस्ते विषये सर्वेऽन्द्रियेभ्यः अवप्रहेहावायधारणानानि-
जायन्ते । तत्र इन्द्रियार्थसंबन्धादुत्पदामाद्यज्ञानम् अवग्रहः । अयमेकः
एवार्थं इति । अवग्रहगुद्वीतार्थं विशेषप्रतिपत्तिः ईहा । पुरुषेणानेन भवि-
त्यमिति । ईहितार्थं निर्णयः अवायः । पुरुष प्रत्ययमिति । कालान्तरा-
विस्मरणहेतुसंस्कारजनकं धारणाज्ञानम् । स पदार्थं चृक्षः इति । अभ्यस्त-
विषये त्वादावेद अवायधारणे जायेते । न त्वचप्रहेत्ते ॥

[७. योगिप्रत्यक्षम्—अवधिज्ञानम्]

ध्यानविशेषाकावारणक्षयत् विशुद्धामान्तःकरणसंयोगात् जातः
सकलपदार्थश्वासभ्रसः योगिप्रत्यक्षम् । ज्ञानावारणस्य विशिष्टश्वसयोगश-
तकं अनुमानं तथा आगम इत्यादि प्रोक्ष ज्ञान अप्राप्त अर्थे के विषय में मनः
उत्पन्न करता है ।

अवग्रह आदि ज्ञान

जब विषय परिचित नहीं हो तब सब इन्द्रियों से उस के बारे में
अवग्रह, ईहा, अवाय तथा धारणा ये ज्ञान होते हैं । यह एक पदार्थ है इस-
तरह इन्द्रिय और पदार्थ के सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाला ग्राथमिक ज्ञान
अवग्रह कहलाता है । अवग्रह से जाने हुए पदार्थ के विषय में विशेष विवार
को ईहा कहते हैं, जैसे— यह पुरुष होना चाहिए । ईहा से जाने हुए पदार्थ
के बारे में निश्चय होता यह अवाय ज्ञान है, जैसे—यह पुरुषही है । समय-
बीतने पर्याप्त उस पदार्थ को न भूलने के कारण भूत संस्कार को उत्पन्न
करे वह धारणाज्ञान है, जैसे—यह वही चृक्ष है । परिचित विषय के बारे में
इहाले ही अवाय तथा धारणा ज्ञान होते हैं, अवग्रह तथा ईहा ज्ञान नहीं होते ।

योगिप्रत्यक्ष — अवधिज्ञान-

विशिष्ट ध्यान से (ज्ञानके) आवारण का क्षम होने पर विशुद्ध आत्मा
का अन्तःकरण से संयोग होने पर जो सभी पदार्थों का स्पष्ट ज्ञान

माज्जातम् अवधिमनः पर्यायज्ञानमीषद्योगिप्रत्यक्षम् । पुद्गलान् संसारि-
जीवान् अवधीकृत्य जानातीत्यवधिज्ञानम्, देशपरमसर्वावधिमेशात्
त्रिविधम् । तत्र देशावधिः भवप्रत्ययो गुणप्रत्ययश्च । भवप्रत्ययो देशावधि-
भेद्यमः । स च तीर्थकरकुमारदेवनारकाणां सर्वाङ्गोत्थः । गुणप्रत्ययः
भनुष्यतिरश्चा नामेरुपरितनस्वस्तिकनन्द्यावर्तादिशुभचिन्होत्थः । तद्-
विभङ्गो नामेरुपस्तनशुद्धिरात्मशुभचिन्होत्थः । देशावधिर्जन्मयः सामान्य-
भनुष्यतिरश्चाम् । उत्कृष्टः संयतानामेव । कश्चुमतिमनः पर्यायश्च । गुण-
प्रत्ययावधी अनुगाम्यननुशास्यवस्थिताभवस्थितवर्धमातहीयमात्मेदाश्च ।
वरमावधिसर्वावधी यात्रद्वाराइरहित्वान्मिम । विनुदत्तिमनः पर्यायकृत्य ॥

होता है उसे योगिप्रत्यक्ष कहते हैं। ज्ञान के आश्रण के विशिष्ट
क्षयोपशम से उत्पन्न हुए अवधिज्ञान तथा मनःपर्यायज्ञान ईषद्वीगि-
प्रत्यक्ष है। पुद्गल तथा संसारी जीवों को विशिष्ट अवधि (पर्याय) का जानता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं। उस के तीन प्रकार हैं—देशावधि,
परमावधि तथा सर्वावधि। देशावधि दो प्रकार का होता है—भवप्रत्यय तथा गुण-
प्रत्यय। भवप्रत्यय (विशिष्ट जन्म के कारण प्राप्त होनेवाला) अवधिज्ञान देशा-
वधि का प्रकार है, वह तीर्थकरों को बाल अवस्था में तथा देवों और
नारकी जीवों को (जन्मतः) प्राप्त होता है तथा संूर्ण शरीर में उद्भूत होता
है। गुणप्रत्यय (तपस्या आदि विशिष्ट गुणों से प्राप्त होनेवाला) अवधिज्ञान-
भनुष्य तथा तिर्थीचों (पशु-पक्षियों) को प्राप्त हो सकता है तथा नाभि के ऊपर
के स्वस्तिक, नन्द्यावर्त आदि शुभ चिन्हों से उद्भूत होता है। इस ज्ञान का
विर्भग (मिथ्यात्व से युक्त गुणप्रत्यय अवधिज्ञान) नाभि के नीचे के दर्दुर
(मैटक) और अशुभ चिन्हों से उद्भूत होता है। देशावधि का जन्मय प्रकार
सामान्य समुद्ध तथा तिर्थीचों को प्राप्त हो सकता है। देशावधि का उत्कृष्ट
प्रकार सिर्फ संयतों (महाव्रतधारी मुनियों) को ही प्राप्त हो सकता है। कश्चु-
मति मनःपर्यायज्ञान भी संयतों को ही होता है। गुणप्रत्यय अवधिज्ञान के
छह मेद होते हैं—अनुगामी (एक स्थान से दूसरे स्थान में साथ जावे वह),
अननुगामी (दूसरे स्थान में साथ न जानेवाला), अवस्थित (जिस की जानने-
की शक्ति स्थिर हो), अनवस्थित (जिस की जानने की शक्ति कम-अविक
होती हो), वर्षमान (बदनेवाला) तथा हीपमान (कम होनेवाला)। पर्या-

[८. मनःपर्यायज्ञानम्]

परमसति स्थितमर्थे मनसा पर्वति जानातीति मनःपर्यायज्ञानम् ॥
ऋगुविषुलमती इति द्वैषम् । ऋगुमनोवाक्यायस्थितवर्तमानपुरुषचिन्ति-
तमर्थे जानद् ऋगुभिति । ऋगुवक्षमनोवाक्यायस्थित-अतीतानप्रत्यवर्तमान-
पुरुषचिन्तितमर्थे जानद् विषुलमति ॥

[९. स्वसंबैदनप्रत्यक्षम्]

सकलज्ञानानां स्वस्वरूपसंबैदनं स्वसंबैदनप्रत्यक्षम् ॥

[१०. प्रत्यक्षाभासः]

मनःपर्याययोगिस्वसंबैदनप्रत्यक्षादन्यत्र प्रत्यक्षाभासोऽपि । स च
संशयविपर्यासमेवात् द्वेष्टा । अनध्यवसायस्य अभावत्वेन प्रत्यक्षाभासत्वा-
वस्ति तथा सर्वावधि एवं विषुलमति मनःपर्यायज्ञान केवल चरमशरीरी मुनियों
को (जो उसी जन्म के अन्त में मुक्त होंगे उन्हीं को) प्राप्त होता है ।

मनःपर्याय ज्ञान

दूसरे के मन में स्थित अर्थ—क्रियार आदि को मन से प्राप्त करे अर्थात्
जाने वह मनःपर्याय ज्ञान है । इस के दो प्रकार हैं—ऋगुभिति तथा विषुलमति ।
सरल मन, वाणी तथा शरीर से युक्त वर्तमान समय के पुरुषों के विचारे हुए
अर्थ को जाने वह ऋगुभिति मनःपर्याय ज्ञान है । भूतकाल, भवित्यकाल
तथा वर्तमानकाल के सरल तथा वक दोनों प्रकार के मन, वाणी तथा शरीर
से युक्त पुरुषों के विचारे हुए अर्थ को जाने वह विषुलमति मनःपर्यायज्ञान है ।

स्वसंबैदन प्रत्यक्ष

सभी ज्ञान अपने अपने स्वरूप को जानते हैं इसी ज्ञान को स्वसंबैदन-
प्रत्यक्ष कहते हैं ।

प्रत्यक्षाभास

मनःपर्याय, योगिप्रत्यक्ष तथा स्वसंबैदन प्रत्यक्ष को छोड़ कर अप्यत्र-
(दूसरे) प्रत्यक्ष ज्ञानों के आभास भी होते हैं । उस के दो प्रकार हैं—संशय
तथा विपर्यास । अनध्यवसाय (निश्चय का अभाव) प्रत्यक्षाभास नहीं है
इयों कि (ज्ञान का) अभाव वह उस का स्वरूप है (गलत ज्ञान को)

भावः । तत्र साधारणाकारदर्शनात् विशेषादर्शनात् उभयविशेषस्मरणात् संशयः । अर्थं स्थाणुर्धा पुरुषो वेति । वादिविप्रतिपत्तेः शब्दो नित्यः अनित्यो वेति । क्वचिदनुपलब्धेऽथ अप्र पिशाचोऽस्ति न वेति । साधारणाकारदर्शनात् विशेषादर्शनात् विपरीतविशेषस्मरणात् विपर्ययः । स्थाणौ पुरुषव्याजम्, रज्जौ सर्पबुद्धिः, शुक्लिकाशकले रजतप्रतिपत्तिः, मरीचिकायां जलाध्वोधः । अर्थानामप्रतिपत्तिः अनध्यवसायः । सं च ज्ञानस्य प्रागभावः संस्काररहितप्रध्वंसाभावश्च, न तु गच्छत्तृणस्पर्शादिज्ञानस्, तस्यावग्रहादिज्ञानत्वेन प्रमाणत्वात् । इति प्रत्यक्षप्रपञ्चः ॥

आभास कहते हैं, अनध्यवसाय में निश्चय का अभाव होने से उसे सही या गलत नहीं कह सकते, अतः वह आभास नहीं है । दो पदार्थों में सामान्य आकार के देखने से, उन के विद्युत (अन्तर) के न देखने से तथा उन विद्युतों के स्मरण से उत्पन्न होनेवाला ज्ञान संशय कहलाता है । जैसे— यह टूँठ है या पुरुष है । वादियों के मतभेद से इन्द्र नित्य है या अनित्य है (ऐसा संशय भी होता है) । कहीं कहीं कुछ ज्ञान न होने से भी संशय होता है, जैसे— यहाँ पिशाच है या नहीं । साधारण आकार के देखने से, विशेष के न देखने से तथा विहृद्व विशेष के स्मरण से जो ज्ञान होता है उसे विपर्यय कहते हैं, जैसे टूँठ को पुरुष समझना, रस्ती की सीधी मानना, सीप के टुकड़े में चादी का ज्ञान तथा मृगजल में अल का ज्ञान । पदार्थों के ज्ञान के न होने को अनध्यवसाय कहते हैं, वह ज्ञान का प्रागभाव है (ज्ञान होने के पहले उसका जो अभाव है वह प्रागभाव कहलाता है) अध्यवा संस्कारहित प्रध्वंसाभाव है (ज्ञान नष्ट होने के बाद जो उस का अभाव है वह प्रध्वंसाभाव कहलाता है, ऐसा प्रध्वंसाभाव जिस में पहले हुए ज्ञान का कोई संस्कार न बचे— अनध्यवसाय कहलाता है) । मार्ग में जाते हुए घासफूस आदि के स्पर्शी के ज्ञान को अनध्यवसाय नहीं कहना चाहिए क्यों कि वह ज्ञान अवग्रह—ज्ञान होने से प्रमाण है (अतः उसे प्रत्यक्षाभास नहीं कह सकते) । इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण का वर्णन पूरा हुआ ।

[११. परोक्षभेदाः]

परोक्षं च आत्माव्यवहानप्रस्थक्षादिकारणकं स्मृतिप्रस्थभिशानोद्घाषोद्गतकानुमानागमभेदम् ॥

[१२. स्मृतिः]

संस्कारोद्बोधजनिता तदिति प्रतीतिः स्मृतिः । स देवदत्तः इत्यादि । स्मृतिः प्रमाणं दृशनिषेपादिषु प्रशृतिप्राप्तिप्रहणान्यथानुपयते ॥ अथ स्मृतियोद्बोधितप्राप्तनानुभवात् देवदत्तादिषु प्रबृत्यादुपयते । अर्थापेक्षयथोपपत्तिरिति चेत् न । प्राप्तनानुभवस्य विवृत्य उद्बोधनां संभवात् । तथा हि-प्राप्तनानुभवो नोद्बुध्यते इदानीमविद्यमालत्वात् विरविनष्टत्वात् रामादिवल् । प्रवृत्यादिहेत्वनुपयते । तथा हि-प्राप्तनानुभवो इत्तादिषु इदानीतलप्रबृत्यादिहेतुर्व भवति प्रवृत्यादिकाले ॥

परोक्ष प्रमाण के मेद

परोक्ष प्रमाण वह है जिस में व्यात्मा के अवधान के साथ प्रत्यक्ष आदि कोई प्रमाण कारण होता हो । इसके लह प्रकार है— स्मृति, प्रश्नाभिज्ञान, ऊहापोह, तर्क, अनुमान और आगम ।

स्मृति

(पहले हुए ज्ञान के) संस्कार के उद्बोधन से उत्पन्न होनेवाले ‘वह’ इस प्रकार के ज्ञान को स्मृति कहते हैं, जैसे—वह देवदत्त । स्मृति प्रमाण है क्यों कि इस के विभा दिये हुए अध्यवा धरीहर रखे हुए (धन आदि) के विषय में प्रवृत्त होना, प्राप्ति अथवा स्वीकार की उपपत्ति नहीं लगती (स्मृति के प्रमाण होने पर ही ये व्यवहार ही सकते हैं) । स्मृति के द्वारा जागृत हुए पुराने अनुभव से ही देवदत्त आदि के विषय में प्रशृति होती है इस उपपत्ति से—अर्थापति से दूसरे प्रकारसे (उक्त व्यवहार की) उपपत्ति लगती है (अतः स्मृति को प्रमाण मानना बहरी नहीं) यह कहना ठीक नहीं क्यों कि पुराना अनुभव जागृत होना संभव नहीं क्यों कि वह नष्ट हो चुका होता है । जैसे कि (अनुमान-प्रयोग होगा—) पुरातन अनुभव जागृत नहीं हो सकता क्यों कि वह इस समय विद्यमान नहीं है तथा राम आदि के समान बहुत पहले ही नष्ट हो चुका है । प्रशृति आदि के कारण होने की

विद्यमानत्वात् चिरविनष्टस्वात् रामादिवदिति । तथा स्मृतिः प्रमाणं सम्यग्गृहान्त्वात् ज्ञातार्थाध्यभिज्ञातित्वात् बन्धमेष्ट विद्वीतर्त्त्वात् निर्मुकः प्रत्यक्षबद्धत् । अतस्मिंस्तदिति प्रश्नयः स्मरणाभासः । यद्वद्दते स देवदत्त इति प्रतीतिः इत्यादि ॥

[१३. प्रत्यभिज्ञानम्]

दर्शनस्मरणकारणके संकलने प्रत्यभिज्ञानम् । तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगि तदुक्तमेवेत्यादि । यथा स एवार्थं देवदत्तः, बोसदृशो गवयः, गोविलक्षणो महिषः इदमस्माद् दूरम्, चृशोऽयं मित्यादि । बोतं प्रत्यभिज्ञानं प्रमाणम्, अविसंवादित्वात् गृहीतार्थाद्यभिमि-

भी इस तरह उपपत्ति नहीं लगती । जैसे कि - पुरातन अनुभव द्वये हुए (धन) आदि के विषय में इन सबस की प्रवृत्ति आदि का कारण नहीं हो सकता क्यों कि वह इस प्रवृत्ति के सबस में विषयान ही नहीं है, वह राम आदि के समान बहुत पहलेही नष्ट हो चुका है । स्मृति इसलिए भी प्रमाण है कि वह यथार्थ ज्ञान है, ज्ञात अर्थ (जाने हुए पदार्थ) से उस का विरोध नहीं होता, उस में वाचक नहीं है, इन सब वाचों में स्मृति निर्दीश प्रत्यक्ष के ही समान है । जो वह नहीं है उस के विषय में 'वह' इच्छ प्रकार का ज्ञान होना समरण का आभास है, जैसे यज्ञदत्त के विषय में 'वह देवदत्त' इस प्रकार का स्मृति-ज्ञान स्मृति का आभास है ।

प्रत्यभिज्ञान

(किसी वस्तु के) देखने तथा (पढ़के देखो हुई किसी वस्तु का) स्मरण करने से जो संकलित ज्ञान होता है उसे प्रत्यभिज्ञान कहते हैं जैसे - यह वही है, यह उस जैसा है, यह उस से मिल है, यह उस के उल्टा है, यह पढ़के ही कहा हुआ है इत्यादि । उदाहरणार्थ - यह वही देवदत्त है, गवय गाय जैसा है, भैसा भाव से मिल है, यह यहांसे दूर है, यह दृश्य है इत्यादि । यह प्रत्यभिज्ञान प्रमाण है क्यों कि वह अविसंवादी है (पदार्थों के समरूप से उस का विरोध नहीं होता) जाने हुए पदार्थ से वह विवर नहीं होता, वह वाचित नहीं होता, उस में वाचक नहीं है, इन सब वाचों में यह दोषरहित प्रत्यक्ष ज्ञान के समान ही है । सब वस्तुएँ शृणिक हैं

चारित्वात् अद्वाच्यत्वात् वाचकेन हीनत्वात् निरुपयश्चक्षत् । अथ सर्वे क्षणिकं सत्त्वात् प्रदीपष्टत् इत्यसुमानं वाचकमस्तीति चेत् । तस्यान् अध्यवसितत्वेन हेत्वाभासत्वात् । चतु लूपुनजातिनामकेशादौ प्रत्यभिशानश्य आमितदर्शनात् अप्राप्याण्यमिति चेत् तर्हि रज्जुसर्पदौ प्रत्यक्षस्य आनितदर्शनात् सर्वश्य प्रत्यक्षस्य अप्राप्याण्यं स्थादिति अतिप्रसङ्गते ॥ सहशो तदेवेदं सरिमत्तेष्व तत्सदृशम् इत्यादि प्रत्ययः प्रत्यभिज्ञामरसः ॥

[१४. उहापोहः]

अ मेनेदं अधतीत्यादि विना न भृतीत्यादि वाचकम्यज्ञानम् उहापोहः ।

क्यों कि वे सत् हैं जैसे दीपक इस अनुमान से (प्रत्यभिज्ञान के प्रमाण हीने में) बाधा उपस्थित होती है (सब पदार्थ एक ही क्षण अस्तित्व में रहते हैं अतः यह वही है आदि ज्ञान-जो कि अनेक क्षणों में पदार्थ के अस्तित्व पर आधारित हैं—अप्रमाण हैं ऐसा मानना चाहिए) यह कथन ठीक नहीं । यह हेतु (जो सत् हैं वे क्षणिक हैं यह कहना) अनध्यवसित (अनिधित) होने से हेत्वाभास है । एक बार काढने पर नख तथा केश पुनः उगते हैं उन में (ये वही नख केश हैं इस प्रकार का) प्रत्यभिज्ञान भ्रमपूर्ण होता है ऐसा देखा जाता है अतः उसे अप्रमाण मानना चाहिए ऐसा यदि कहें तो रस्सी को सांप समझने में प्रत्यक्ष भी भ्रमपूर्ण होता है अतः सभी प्रत्यक्ष को अप्रमाण मानने का अतिप्रसंग आयेगा (तात्पर्य—जिस तरह रस्सी में सांप का ज्ञान आन्त होने पर भी सभी प्रत्यक्ष ज्ञान आन्त नहीं होते उसी तरह किर से उगे हुए नखों में प्रत्यभिज्ञान आन्त होने पर भी सभी प्रत्यभिज्ञान आन्त नहीं होते) । जो उस ऐसा है उस के विषय में यह वही है ऐसा समझना, उसी के विषय में यह उस ऐसा है ऐसा समझना आदि प्रत्यभिज्ञान के आभास होते हैं ।

उहापोह

इस से यह होता है, इस के विना यह नहीं होता इस तरह के वास्तविक ज्ञान को उहापोह कहते हैं । जैसे—इच्छा पूरी होने से सब को सन्तोष

इच्छाप्रतिशब्दनेन सर्वेषां श्रीतिः इच्छाविद्यातेन सर्वेषां वेषः इत्यादि ।
तद्विपरीतः तदाभासः ॥

[१५. तर्कः]

साध्यसाधनयोः व्याप्तिशानं तर्कः । साधनसामान्यस्य साध्य-
सामान्येन अव्यभिचारः संबन्धो व्याप्तिः । सा चान्वयव्यतिरेकमेवात्
हैथा । सपक्षे भूयः साधनसद्भावदर्शने साध्यसद्भावदर्शनेन निश्चिता
अव्याप्तिशादिः । ये ए. धूमबान् च योऽच्छिमान् तथा महानसादि-
रिति । विपक्षे भूयः साध्याभावदर्शने साधनाभावदर्शनेन निश्चिता
व्यतिरेकव्याप्तिः । यो योऽच्छिमान् च भवति स सर्वोऽपि धूमबान् च
भवति यथा ह्रदाद्विरिति । अव्याप्ती व्याप्तिशानं तर्काभासः यद् यत् प्रमेय-
तत् तज्जित्यमित्यादि ॥

होता है, इच्छा में रुकावट आने से सब नाराज होते हैं इत्यादि । इस के
विपरीत (अवास्तविक) ज्ञान को इस का आभास समझना चाहिए ।

तर्क

साध्य और साधन की व्याप्ति के ज्ञान को तर्क कहते हैं । साधन के
सामान्य स्वरूप का साध्य के सामान्य स्वरूप से कभी न बदलनेवाला जो
संबंध होता है उसे व्याप्ति कहते हैं । उस के दो प्रकार हैं — अन्वय तथा
व्यतिरेक । सामान्य पक्ष में बारबार साधन का अस्तित्व देखने के सभ्य साध्य
का भी अस्तित्व देखने ये जिस का निश्चय हुआ हो वह अन्वयव्याप्ति होती
है । जैसे — जो जो धूए से युक्त होता है वह सब अग्नि युक्त होता है जैसे —
रसोईवर (यहाँ रसोईवर आदि समानपक्षों में हुआ इस साधन के दोनोंपर
अग्नि इस साध्य का भी अस्तित्व बारबार देखा गया है अतः वहाँ हुआ होता
है वहाँ अग्निभी होता है यह अन्वयव्याप्ति निश्चित हुई) । विषद् पक्ष में
बारबार साध्य का अभाव देखने पर साधन का भी अभाव देखने से जिस
का निश्चय हो वह व्यतिरेकव्याप्ति होती है । जैसे — जो अग्नि से युक्त
नहीं होता वह सब धूए से युक्त भी नहीं होता जैसे सरोवर आदि । जहाँ
व्याप्ति न हो वही व्याप्ति समझना तर्क कर आभास है, जैसे — जो जो प्रमेय
है वह वह नित्य होता है (यहाँ जो प्रमेय होता है वह नित्य होता है वह-

[१६. अनुमानम्]

सम्यक्साधनात् साध्यविज्ञानम् अनुमानम् । स्वार्थपरार्थभेदात् विविधम् । परोपदेशमन्तरेण साधनदर्शनात् साध्यविज्ञानं स्वार्थानुमानम् । स्वार्थानुमानपरामर्शिपुरुषवचनात् ज्ञाते परार्थानुमानम् । तद्वचनमपि तद्वेतुत्वात् परार्थानुमानमेव । तथा अनित्यः शब्दः कृतकत्वात्, यो यः कृतकः स सर्वोऽप्यनित्यः यथा घटः, यदूयश्चनित्यं न भवति तत् सत् कृतकं न भवति यथा व्योम, कृतकश्चायं शब्दः, तस्मादनित्यः इति । पक्षसाध्यहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनाभ्यव्यवहारः पद् प्रसिद्धाः ॥

[१७. पक्षः]

सिषाध्यविवितधर्माधारो धर्मी पक्षः । शब्दः इति । पक्षस्य प्रसिद्धत्वं व्याप्ति नहीं हो सकती क्यों कि बहुतसे प्रमेय अनित्य भी होते हैं, अतः इसे यदि व्याप्ति माना जाता है तो उस ज्ञान को तर्कीभास कहा जायेगा ।

अनुमान

श्रीग्रंथ साधन से साध्य का ज्ञान होता यह अनुमान प्रमाण है । इस के दो प्रकार हैं — स्वार्थानुमान तथा परार्थानुमान । दूसरे के उपरेश के बिना साधन को देखने से जो साध्य का ज्ञान होता है वह स्वार्थानुमान है । स्वार्थानुमान के जाननेवाले पुरुष के कहने से जो ज्ञान होता है वह परार्थानुमान है । उस का कारण होने से ऐसे अनुमान के कथन को भी परार्थानुमानही कहते हैं (वाक्य शब्दों से बना होता है अतः वह अड होता है इस लिए प्रमाण नहीं हो सकता किन्तु यही का वाक्य परार्थानुमान का ज्ञान करने का कारण है अतः उसे व्यक्तिगत से अनुमानप्रमाण कहते हैं) । उस का उदाहरण — शब्द अनित्य है क्यों कि वह कृतक है, जो जो कृतक होता है वह सभी अनित्य होता है जैसे वट, जो जो अनित्य नहीं होता वह कृतक नहीं होता । जैसे आकाश, और वह शब्द कृतक है इस लिए यह अनित्य है । अनुमान के छह अवयव प्रसिद्ध हैं — पक्ष, साध्य, हेतु, दृष्टान्त, उपयोग तथा निगमम् ।

पक्ष

जिसे सिद्ध करने की इच्छा है उस धर्म (गुण) के आधार धर्मी (धर्म)

प्रमाणात् विकल्पस्त् उभयादौ । प्रमाणं प्रायुक्तलक्षणम् । पर्वतोऽग्निमान्
शूमस्थात् भ्रह्मनस्थात् इत्यादौ प्रमाणप्रसिद्धः पक्षः । विकल्पस्तु प्रमाणा-
प्रमाणसाधारणकालम् जलभरीचिकासाधारणप्रदेशे जलकालस्तु ।
वेदस्याध्ययनं सर्वे गुर्वध्ययनपूर्वकम् वेदाध्ययनवाच्यत्वाद्बुनाध्ययनं
यथा, अस्ति सर्वज्ञः असंभवद्वाचकप्रमाणत्वात् करतलवत् इत्यादौ
विकल्पसिद्धः पक्षः । अनित्यः शब्दः कृतकर्त्त्वात् घटवत् इत्यादौ उभय-
प्रसिद्धः पक्षः ॥

से युक्त पदार्थ) को पक्ष कहते हैं, जैसे (उपर्युक्त अनुमान में अस्तित्व इस
धर्म का आधार है) शब्द । पक्ष तीन प्रकार से प्रसिद्ध होता है — प्रमाण से,
विकल्प से तथा दोनों से । ‘पर्वत अग्नियुक्त है क्यों कि वह शूमयुक्त है, जैसे
रसोऽधिग्रह’ इस जैसे अनुमान में पक्ष प्रमाण से प्रसिद्ध है (पर्वत इस पक्ष का
प्रत्यक्ष प्रमाण से ज्ञान हो चुका है) । प्रमाण और अप्रमाण दोनों में जो हो
सकता है ऐसे ज्ञान की विकल्प कहते हैं, जैसे जहाँ मृगजल हमेशा दीखता
हो ऐसे प्रदेश में होनेवाला जल का ज्ञान (जहाँ हमेशा मृगजल दीखने की
संभावना हो ऐसे प्रदेश में जल दीखने पर विकल्प होगा कि यह आस्तनिक
जल है या मृगजल है) । सभी वेदाध्ययन गुर्वध्ययनपूर्वक है (गिर्य वेद
पदता है यह तभी संभव है जब गुरु ने वेद पढ़ा हो अतः शिष्य के अध्ययन
से पूर्व नियम से गुरु का अध्ययन हुआ है) क्यों कि वह वेदाध्ययन है
जैसे आज्जल का वेदाध्ययन, इस अनुमान में पक्ष विकल्पसिद्ध है (सभी
वेदाध्ययन यह पक्ष है इस का अनुमान करनेवाले को जो ज्ञान हुआ है वह
विकल्पसिद्ध है — सभी वेदाध्ययन को उसने प्रमाण से नहीं जाना है) ।
इसी प्रकार सर्वज्ञ है क्यों कि उस के अस्तित्व में बाधक प्रमाण संभव नहीं
है, जैसे अपना हाथ (अपने हाथ के अस्तित्व में कोई बाधा नहीं उसी तरह
सर्वज्ञ के अस्तित्व में कोई बाधा नहीं है) इस अनुमान में भी विकल्पसिद्ध
पक्ष है (सर्वज्ञ वह पक्ष है वह प्रतिवादी के लिए अज्ञात और बादी के लिए
ज्ञात है अतः विकल्पसिद्ध है) । शब्द अनित्य है क्यों कि वह कृतक है जैसे
घट— ऐसे अनुमानों में पक्ष उभयप्रसिद्ध है (कुछ आदियों के लिए इस पक्ष
का — शब्द का — ज्ञान प्रमाणसिद्ध है तो कुछ के लिए विकल्पसिद्ध है) ॥

[१८. साध्यम्]

स्वसिद्धं परासिद्धं साध्यम् । अनित्यः इति ॥

[१९. हेतुः]

व्याप्तिमात्रं पक्षधर्मो हेतुः । कृतकत्वात् इति । तस्य हेतोः पक्षधर्मत्वं सपक्षे सर्वं विपक्षेऽसत्त्वम् । असिद्धसाधकात्यम् । अबाधितविषयत्वम् असत्त्वप्रतिपक्षत्वमिति वह गुणः । तत्र साध्यवर्मधारो धर्मी पक्षः, पक्षे सर्वत्र हेतोः प्रवर्तनम् पक्षधर्मत्वम् । साध्यसमाधर्मी धर्मी सपक्षः सपक्षे सर्वत्र एकदेशे चा हेतोः प्रवर्तनं सपक्षे सत्त्वम् । साध्यविपरीतधर्मी धर्मी विपक्षः, विपक्षे सर्वत्र हेतोरपवर्तनं विपक्षेऽसत्त्वम् । प्रतिशादिनः संदिग्धविपर्यस्ताप्रतिपक्षम् असिद्धम्, तस्मात्वं हेतोरसिद्धसाध्यत्वम् । अबाधितसाध्ये पक्षे हेतोः प्रवर्तनम् अबाधितविषयत्वम् ।

साध्य

जो आपने लिए सिद्ध हो और दूसरे के लिए असिद्ध हो (उसे सिद्ध कर बतलाना हो) वह साध्य है, ऐसे (उपर्युक्त अनुमान में शब्द का) अनित्य होना ।

हेतु

व्याप्ति से युक्त पक्ष के धर्म को हेतु कहते हैं । जैसे - (उपर्युक्त अनुमान में) क्यों कि (शब्द) कृतक है । हेतु के लह गुण होते हैं - पक्ष का धर्म होना, सपक्ष में अस्तित्व, विपक्ष में अभाव, ऐसी बात को सिद्ध करना जो अब तक सिद्ध नहीं हुई हो, ऐसी बात को सिद्ध करना जो बाधित न हो सभा जिस में प्रतिपक्ष संस्था न हो । सिद्ध करने योग्य धर्म के आधार को पक्ष कहते हैं, पक्ष में हेतु का सर्वत्र अस्तित्व होना यह पक्षधर्मत्व नाम का पहला गुण है । साध्य के समान धर्म जिस वर्मी (गुणयुक्त पदार्थ) में होते हैं उसे सपक्ष कहते हैं, सपक्ष में सर्वत्र या एक हिस्से में हेतु के होने को सपक्ष में सत्त्व कहते हैं (यह दूसरा गुण है) । साध्य के विरुद्ध धर्म जिस धर्मी में होते हैं उसे विपक्ष कहते हैं, विपक्ष में सर्वत्र हेतु का अभाव होना यह विपक्ष में असत्त्व नामका तीसरा गुण है । प्रतिशादी के लिए जो संदेहयुक्त, विपर्यास-युक्त या अज्ञात होता है उसे असिद्ध कहते हैं, ऐसे साध्य को सिद्ध

यथा पि विपरीते हेतोः अत्रिष्ठपत्त्वम् असत्प्रतिपश्यत्वं, तथा विपक्षे असत्त्वात् नार्थान्तरम् । हेतोः विपक्षे असत्त्वनिष्ठये साध्यविपरीते अत्रिष्ठपत्त्वं निष्ठितमिति । तथापि श्रोतृणां दग्धुन्तर्यार्थं पृथक् निरुपणम् ॥

[२०. दृष्टान्तः]

हठी अन्ती साध्यसाधनधर्मौ तदभावौ का वादिप्रतिवादिभ्याम् अविगानेन यस्मिन् धर्मिणि स दृष्टान्तः । स च अन्यपो ध्यतिरेकश्चेति द्वेधा । साधनसदभावै साध्यसदभावौ यत्र प्रदर्शयेते सोऽस्ययदृष्टान्तः । यो यः कृतकः स सर्वोऽप्यनित्यः यथा घटः इति । साध्याभावै साधनभावौ यत्र बीध्यते स ध्यतिरेकदृष्टान्तः । यद् यद्विनित्ये न भवति तत् तत् कृतकं न भवति यथा व्योमेति ॥

करना वह असिद्धसाधनत्व नामका चौथा गुण है । जिस पक्ष में साध्य आधित न हो उस में हेतु का होना अवावितविषयत्व नाम का पांचवा गुण है । यद्यपि साध्य के विरुद्ध पक्ष में हेतु के तीन रूप (पक्षवर्त्तत्व, सपक्ष-सत्त्व तथा विपक्षे असत्त्व) न होना वही असत्प्रतिपक्षत्व नामका छठा गुण है तथा यह विपक्ष में अभाव इस तीसरे गुण से भिन्न नहीं है, विपक्ष में हेतु का अभाव निष्ठित होनेसे ही साध्य के विरुद्ध पक्ष में हेतु के तीन रूप न होना निष्ठित हो जाता है, तथापि श्रोताओं को स्पष्ट रूप से समझानेके लिए इसे अलग गुण के रूप में बतलाया है ।

दृष्टान्त

वादी और प्रतिवादी दोनों की मान्यता से जिस धर्मी में दो अन्त अर्थोत् साध्यधर्म और साधनधर्म देखे जाते हैं अथवा साध्यधर्म और साधनधर्म का अभाव देखा जाता है उस धर्मी को दृष्टान्त कहते हैं । उस के दो प्रकार हैं — अन्वय दृष्टान्त तथा अतिरेक दृष्टान्त । जिस में साधन के हीनेपर साध्य का होना बतलाया जाय उसे अन्वय दृष्टान्त कहते हैं । जैसे—जो जो कृतक होता है वह सभी अनित्य होता है जैसे घट (यही घट इस दृष्टान्त में कृतकत्व यह साधनधर्म है तथा अनित्यत्व यह साध्य धर्म है इन के अन्वय के कारण यह अन्वय दृष्टान्त है) । साध्य के न होने पर साधन का न होना जिस में देखा जाय वह अतिरेक दृष्टान्त है । जैसे—जो अनित्य नहीं होता

[२१. उपनयनिगमने]

पश्चधर्मत्वप्रदर्शनार्थं हेतोऽपस्कारः उपनयः । कृतकव्याये शब्दः इति । उक्तोऽपस्लेषारार्थं प्रतिक्रियाः पुरुर्द्वचनं निगमनम् । तस्यादनित्यः इति ॥

[२२. हेतोः पश्चधर्मत्वम्]

नमु पश्चधर्मो हेतुरित्यगुरुकम् उदेष्यति शकटं कृत्तिकोशयात् इत्यादेः अपश्चधर्मस्त्वा पि सत्यग्नेतुस्वात् इति चेत् न । अपश्चधर्मस्यासिद्धत्वात् । तथा हि, अनित्यः शब्दः चाक्षुषत्वात् इत्यविद्यमानसत्त्वाकस्य स्वयमेष निरूपणात् । शीता हेतयः ६ सिद्धाः अपश्चधर्मत्वात् शब्दे चाक्षुषत्वविद्यति ग्रयोगात् । चाक्षुषत्वस्य अन्यथा सत्त्वेऽपि एष्ये असत्त्वादेवासिद्धत्वम्

वह कृतक नहीं होता जैसे आकाश (यहीं आकाश इस दृष्टान्त में अनित्यत्व यह साध्यधर्म तथा कृतकत्व यह साधनधर्म दोनों नहीं हैं) ।

उपनय और निगमन

हेतु पक्ष का धर्म है यह बतलाने के लिए हेतु को उपस्कृत करना । वह उपनय है । जैसे (उपर्युक्त अनुमान में)—ओर वह शब्द कृतक है (शब्द पक्ष है, उस में कृतकत्व हेतु का उपस्कार किया गया, यही उपनय है) । कहे गये अनुमान के उपसंहार के लिए प्रतिक्रिया को पुनः कहना यह निगमन है । जैसे (उपर्युक्त अनुमान में)—इस लिए शब्द अनित्य है ।

हेतु पक्ष का धर्म होता है

यहीं प्रश्न होता है कि हेतु को पक्ष का धर्म कहना ठीक नहीं क्यों—कि (कुछ समय बाद) रोहिणी नक्षत्र का उदय होगा क्यों कि (इस समय) कृत्तिका नक्षत्र का उदय हुआ है इत्यादि अनुमानों में जो हेतु पक्ष का धर्म नहीं है वह भी योग्य हेतु होता है (उपर्युक्त अनुमान में कृत्तिका का उदय यह हेतु रोहिणी इस पक्ष का गुण नहीं है किर भी उस से रोहिणी के उदय का यथार्थ अनुमान होता है) । यह शका ठीक नहीं क्यों कि जो हेतु पक्ष का धर्म नहीं होता वह असिद्ध होता है । जैसे—शब्द अनित्य है क्यों कि वह

नान्यथा, अतिप्रसंगात् । तस्य साध्यविनाभावाभावात् असिद्धत्वे विरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्कराणामपि अभिज्ञत्वमेवेति एक एव हेत्याभावः स्यात् । तथा च अत्यरो हेत्वाभावाः असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्कराणः हत्यासंशयं स्यात् । तस्यात् हेतुः पक्षवर्यलो सत्येष विशिष्टपद्धे प्रकृतसाध्यप्रसाधकत्वम् नाविनाभावमात्रात् । अन्यथा पर्वतोऽग्रिमान् अनुमानस्य धूमशब्दात् इत्यादेवपि साध्ये प्रसाधकत्वं स्यात् । तस्यापि साध्यविनाभावसद्भावात्, न चैवं, ततः पक्षधर्मं एव सम्यग् हेतुरित्यज्ञीकर्तव्यः ॥

चाक्षुप (आँखों से देखा जानेवाला) है यह हेतु अविद्यमान सत्ताक है (इस हेतु का अस्तित्व ही नहीं है क्यों कि शब्द आँखों से नहीं देखा जाना) यह शोकाकार ने स्वर्यं कहा है (इसी प्रकार जो हेतु पक्ष का धर्म नहीं होता वह असिद्ध होता है) । ऐसा अनुमान-प्रयोग भी कर सकते हैं — ये हेतु (जो पक्ष के धर्म नहीं है) असिद्ध है क्यों कि वे पक्ष के धर्म नहीं हैं जैसे शब्द का चाक्षुप होना । आँखों से देखा जाना दूसरे पदार्थों में तो पाया जाता है किन्तु पक्ष (शब्द) में नहीं है इसी लिए उसे असिद्ध कहते हैं और किसी कारण से नहीं, अन्यथा अतिप्रसंग होगा । इस हेतु का साध्य से अविनाभाव (उस के होने पर ही यह होता है इस तरह का नियन संबंध) नहीं है अतः वह असिद्ध है ऐसा कहें तो विरुद्ध, अनैकान्तिक, अकिञ्चन्कर ये सब हेत्वाभाव भी असिद्धही होंगे (क्यों कि इन का भी साध्य से अविनाभाव नहीं होता) अतः हेत्वाभाव एकही होगा और हेत्वाभाव चार है — असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक और अकिञ्चन्कर — यह शोकाकार का कथन सुसंगत नहीं होगा । इस लिए हेतु पक्ष का धर्म ही तभी वह किसी पक्ष में इष्टसाध्य को सिद्ध कर सकता है केवल, अविनाभाव से नहीं । अन्यथा पर्वत अग्नि से युक्त है क्यों कि (सोई घर में ऊँआ है इत्यादि हेतु भी साध्य को सिद्ध कर सकेंगे (तात्पर्य — ऊँआ और अग्नि इन का अविनाभाव संबंध होने पर भी ऊँआ से अग्नि का अनुमान तभी होगा जब वह पर्वत इस पक्ष में विद्यमान हो) क्यों कि उन का भी साध्य से अविनाभाव है, किन्तु ऐसा नहीं होता, अतः पक्ष का धर्म ही योग्य हेतु होता है ऐसा मानना चाहिए ।

[२३. पक्षधर्मस्य हेतोः व्याप्तिमस्त्वम्]

ननु स कथमहीक्षियते । देशान्तरे गतः पुत्रः स स्यामो मैत्रतत्त्वय-
त्वात् इतरतत्त्वयवत् इत्यादेः पक्षधर्मस्यापि असम्यग्हेतुत्वात् इति विद्वा ।
तस्य भूयोदर्शमात् व्याप्तिग्रहणकालं पव एकपितृजन्यानामेकवर्णव्यभिः
चारेण व्याप्तिवैकल्यादेव असम्यग्हेतुत्वात् । तस्मात् व्याप्तिमान् अपक्ष-
धर्मः व्याप्तिरहितः पक्षधर्मः वा न सम्यग्हेतुः । किन्तु व्याप्तिमान् पक्ष-

पक्ष का धर्म हेतु व्याप्तियुक्त भी होना चाहिए ।

यहाँ प्रश्न होता है कि पक्ष के धर्म को ही हेतु मानना कैसे उचित है? मैत्र का एक पुत्र जो विदेश में गया है, सांबला है क्यों कि वह मैत्र का पुत्र है जैसे मैत्र के दूसरे पुत्र — इस प्रकार के अनुमान में हेतु पक्ष का धर्म होने पर भी योग्य हेतु नहीं है (मैत्र का पुत्र होना यह हेतु विदेश में गये हुए मैत्र के पुत्र में — पक्ष में विद्यमान है किर भी उस से उस का सांबला होना सिद्ध नहीं होता — वह मैत्र का पुत्र गोरा भी हो सकता है, अतः हेतु पक्ष का धर्म होने पर योग्य ही होगा ऐसा नहीं कह सकते) । किन्तु यह शोकाठीक नहीं है । यहाँ बार बार देखने से व्याप्ति का ग्रहण करने के समय में ही एक पिता के कई पुत्र एक ही रंग के नहीं होते यह देखने से (जो मैत्र का पुत्र है वह सांबला होता है यह) व्याप्ति गलत सिद्ध होती है अतः उसी कारण से हेतु भी गलत होता है (हेतु के गलत होने का कारण पक्ष का धर्म होना यह नहीं है — व्याप्ति गलत होना यह हेतु गलत होने का कारण है) । अतः जो व्याप्ति से युक्त है किन्तु पक्ष का धर्म नहीं है वह योग्य हेतु नहीं होता; तथा जो व्याप्ति से रहिन है और पक्ष का धर्म है वह भी योग्य हेतु नहीं होता । जो व्याप्ति से युक्त होते हुए पक्ष का धर्म है वही योग्य हेतु होता है । किर कृतिका के उदय से रोहिणी के उदय का अनुमान किस तरह होता है (क्यों कि कृतिका-उदय यह हेतु रोहिणी इस पक्ष का धर्म नहीं है) इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यहाँ कृशल व्यक्ति अनुमान का प्रयोग इस प्रकार करते हैं — यह कृतिका नक्षत्र का उदय एक घटिका के बाद रोहिणी नक्षत्र के उदय से युक्त होता है क्यों कि यह कृतिका का उदय है जैसे पहले देखे हुए कृतिका के उदय (इस अनुमान-प्रयोग में कृतिका

धर्मं पव गमयन्हेतुः । तदिं शाकटोदयकृतिकोदयासां गमयगमकभावः
कथमिति वेत्स वीतः कृतिकोदयः सुहूलाम्भे शाकटोदयवान् कृतिकोदय-
त्वास् प्राकृपरिद्वृहृति कोदयत् इत्यादि कुशालप्रयोगाविति धूमः ॥

[२४. हेतोः अपक्षधर्मत्वनिषेधः]

स मु नदीपूरोऽव्यधोदेशो चृत्तः सामुदरिस्थितात् ।

नियम्यो गमयत्येव चृत्तां वृष्टिं नियामिकाम् ॥ ३ ॥

पित्रोद्य ब्राह्मणत्वेन पुत्रब्राह्मणतानुमात् ।

सर्वलोकप्रसिद्धा न पक्षधर्ममपेक्षते ॥ ४ ॥

उपरि चृष्टो देवः अधोदेशो नदीपूरस्यान्यथानुपपत्तेः, पुत्रः ब्राह्मणः भाता-
पित्रोः ब्राह्मणस्य अन्यथानुपपत्तेः, इत्यादेवपक्षधर्मस्यापि गमकत्वमस्ति
इति चेत्स । अपक्षधर्मस्य कर्त्त्यस्य गमकत्वानुपपत्तेः । कुत इति चेत् पक्षे
का उदय यह पक्ष हुआ, इस में कृतिका का उदय होना यह हेतु विद्यमान
है अतः उस से वरिका के बाद (हिणी के उदय से पुल होना यह साध्य
सिद्ध होता है) ।

जो पक्ष का धर्म नहीं वह हेतु नहीं होता

यही प्रश्न होता है कि नदी में बाढ़ बीचे के प्रदेश में होती है किन्तु
उस नियम्य (साधन) से ऊपर के प्रदेश में दूर्दि नियामिका (साध्य) भारी
वर्षा का अनुमान होता ही है (यद्यपि पहाँ बाढ़ यह हेतु ऊपर का प्रदेश
इस पक्ष में नहीं होता) । इसी प्रकार गातापिता के ब्राह्मण होने से पुत्र के
ब्राह्मण होने का अनुमान होता है यह सब लोगों में प्रसिद्ध है, यहाँ भी
(गातापिता का ब्राह्मण होना यह हेतु पुत्र इस पक्ष में नहीं है अतः) हेतु
में पक्षधर्म होना ज़रूरी नहीं है । ऊपर के प्रदेश में वर्षा दूर्दि है, अन्यथा
बीचे के प्रदेश में नदी में बाढ़ आई है इस की उपपत्ति नहीं आती; पुत्र
ब्राह्मण है क्यों कि उस की गातापिता ब्राह्मण होने से वह अन्यथा नहीं हो
सकता इत्यादि अनुमानों में जो हेतु पक्ष का धर्म नहीं है वह भी साध्य का
बोध करता है । किन्तु शंकाकार का यह कथन ठीक नहीं है । जो पक्ष का
धर्म नहीं है वह हेतु कलिपत होगा अतः वह साध्य का बोध कराये यह संभव
नहीं है । ऐसा क्यों है इस प्रश्न का उत्तर है कि पक्ष में हेतु का अभाव है

सद्भावस्यैव कल्पकाभावत्वात् असिद्धत्वादिति थत्वत् । अथ पक्षा-
दृश्यत्र विद्यमानत्वात् गमकत्वमिति चेत् तर्हि सर्वे सर्वस्य गमके
स्थादित्यतिप्रसङ्गते ॥

[२५. हेतुलक्षणोपसंहारः]

अथ निश्चितव्याप्तिके सर्वे स्थव्यापकस्य सर्वस्य गमकमिति चेत् न
चेतद्वाचास्ति । कल्पकस्थास्य व्याप्तिनिश्चयाभावात् । न तावत्
सप्तके तत्त्विक्षयः तस्य सप्तकाभावात् । अथ पक्षे एवस्य व्याप्तिनिश्चय
इति चेत्त । अपश्चधर्मस्यास्य पक्षे अभावात् तत्र तत्त्विक्षयानुपपत्तेः । पक्षे
तस्य सद्भावेऽपि तत्र कल्पकस्य निश्चये तेन कल्पकस्य व्याप्तिनिश्चया-
योगात् तत्र तत्त्विक्षये अर्थापत्तेः आनर्थक्यम् व्याप्तिनिश्चयात् पूर्वमेव पक्षे
कल्पकस्य निश्चितव्याप्तिकस्थापकस्थार्थस्यापि गमकत्वे

इसी कारण वह साध्य का बोधक नहीं हो सकता — वह असिद्ध होता है ।
पक्ष से अभ्यत्र हेतु रहेगा और साध्य का बोध करतेगा यह कहना भी संभव
नहीं क्यों कि ऐसा कहने से सभी हेतु सभी साध्यों के बोधक हो जायेंगे;
(चुंआ रसोईघर में होगा और अग्रि का बोध पर्वतपर होगा) यह अतिप्रसंग है ।

हेतु के लक्षण का समारोप

जिस की व्याप्ति निश्चित है वह सब अपने व्यापक सब (पदार्थों)
का बोध करता है यह कहें तो वह बात भी यहाँ (जो पक्ष का धर्म नहीं है
उस हेतु में) नहीं पाई जाती । कारण यह है कि इस कलिपत हेतु की
व्याप्ति का निश्चय ही कहीं नहीं हो सकता । उस की व्याप्ति वा निश्चय सप्तक
में नहीं हो सकता क्यों कि उस के कोई सप्तक ही नहीं है (जिस का पक्ष
में अस्तित्व हो उसी के बारे में सप्तक और विपक्ष की कल्पना संभव है,
जिस का पक्ष ही न हो उस का सप्तक कैसे हो सकता है) । पक्ष में ही इस
(हेतु) की व्याप्ति का निश्चय होता है यह कथन भी योग्य नहीं । यह हेतु
पक्ष का धर्म ही नहीं है अतः पक्ष में उस का अभाव है इसलिए पक्ष में इस
की व्याप्ति का निश्चय संभव नहीं हो सकता । (यहाँ एक वाक्य का अर्थ
हमें ज्ञात नहीं हो सका) । जिस की व्याप्ति निश्चित नहीं तथा जो पक्ष का

काकस्य काञ्चनात् धर्मः प्राप्तादः इत्यादिरपि गमकत्वं स्थाप्तं । अथ विष्णोऽसत्त्वात् व्याप्तिनिष्ठय इति ऐति केवलव्यतिरेकानुमानं तत्, नाथोपत्तिः । तस्याप्यपश्यधर्मत्वे अगमकत्वमेव । पक्षे सप्तोऽप्यविद्यमानो हेतुः स्थसाध्यं क्वच प्रसाधयेत्, न क्वापि । तद्विं नदीपूरखृष्टवादीनां गम्यगमकभावः कथमिति चेत् वीतः नदीपूरः वृष्टिपूर्वकः विशिष्टपूरत्वात् संप्रतिपञ्चपूरवत्, वीतः पुमान् ब्राह्मण एव ब्राह्मणमातापितृजन्मत्वात् संप्रतिपञ्चब्राह्मणवत् इत्यादिकुशलप्रयोगादिति ग्रन्थः । तस्मात् व्याप्तिमान् पश्यधर्मं एव सम्बद्धं हेतुर्भवति ॥

[५८. अन्वयव्यतिरेकी अनुमानम्]

स हेतुः अन्वयव्यतिरेकी केवलान्वयी केवलव्यतिरेकी इति जिधा ।

धर्म नहीं वह हेतु भी यदि साध्य का बोध करा सके तो 'महल सफेद है क्यों कि कौआ काला है' ऐसे हेतु भी साध्य के बोधक सिद्ध होंगे विष्णु में अभाव होने से इस हेतु की व्याप्ति का निष्ठय होता है यह कथन भी उचित नहीं क्यों कि ऐसी स्थिति में उसे केवलव्यतिरेकी अनुमान ही कहेंगे, व्याप्तिसमर्थक अर्थापत्ति नहीं । ऐसा हेतु भी (जिस का विष्णु में अभाव है) यदि पक्ष का धर्म नहीं है तो वह साध्य का बोध नहीं करा सकता । जो हेतु पक्ष में जौर सप्तश्च में भी न हो वह साध्य को कहाँ सिद्ध करेगा—अर्थात् कहीं भी सिद्ध नहीं कर सकता । फिर नदी की बाढ़ से वृष्टि का बोध किस तरह होता है इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यहाँ कुशल व्यक्ति इस प्रकार अनुमान का प्रयोग करते हैं — यह नदी की बाढ़ वृष्टिपूर्वक होती है क्यों कि यह विशिष्ट बाढ़ है जैसे पहले देखी हुई बाढ़ (यहाँ नदी की बाढ़ इस पक्ष में वृष्टिपूर्वक होना यह साध्य है तथा विशिष्ट बाढ़ होना यह हेतु यहाँ पक्ष का हो धर्म है) । इसी प्रकार यह पुरुष ब्राह्मण है क्योंकि यह ब्राह्मण माता—पिता से उत्पन्न हुआ है जैसे पहले देखे हुए ब्राह्मण (यही यह पुरुष इस पक्ष में ब्राह्मण माता—पिता से उत्पन्न होना यह हेतु विद्यमान है अतः उस से ब्राह्मण होना यह साध्य सिद्ध होता है) । इसलिए व्याप्ति से युक्त पक्ष का धर्म ही साध्य हेतु होता है ।

अन्वयव्यतिरेकी अनुमान

हेतु के तीन प्रकार हैं — अन्वयव्यतिरेकी, केवलान्वयी तथा केवल-

सपक्षविपक्षसहितः अन्वयव्यतिरेकी । पर्वतोऽग्निमान् धूमवत्वात्, यो यो धूमवान् स सर्वोऽप्यग्निमान् यथा मद्वानलः, यो योऽग्निमान् न भवति स सर्वोऽपि धूमवान् न भवति यथा हृदः, धूमवाञ्चायं पर्वतः तस्मात् अग्निमान् भवति इत्यादि ॥

[२७. केवलान्वयी अनुमानम्]

विपक्षरहितः सपक्षरहितः केवलान्वयी । वीतः सदसदूर्धर्गः कस्यचिदेकज्ञानालभवन्, यथा पञ्चाङ्गगुलम्, अनेकआयं सदसदूर्धर्गः तस्मात् कस्यचिदेकज्ञानालभवनमित्यादि । यद्यु केवलान्वयी न प्रमाणं विपक्षाद् व्याख्यात्सिरहितत्वात् असैकान्तिकवत् शति मीमांसकः प्रायोक्तीत् । तत्र विपक्षत्रह्यप्रव्याख्यात्सिस्मरणाथोरमात्रे विपक्षाद् व्याख्यात्सिरहितत्वस्य शालुमशक्तेः अशातासिद्धो

अतिरेकी । सपक्ष और विपक्ष दोनों से सहित हेतु अन्वयव्यतिरेकी होता है । जैसे — यह पर्वत अग्नियुक्त है क्यों कि यह धुंए से युक्त है, जो धुंए से युक्त होता है वह सब अग्नि से युक्त होता है, जैसे रसोईधर, जो अग्नि से युक्त नहीं होता वह धुंए से युक्त भी नहीं होता, जैसे सरोवर, और यह पर्वत धुंए से युक्त है, अतः यह अग्नि से युक्त है । (यहाँ धुंए से युक्त होना यह हेतु अन्वयव्यतिरेकी है क्यों कि इस में रसोईधर आदि सपक्ष हैं और सरोवर आदि विपक्ष है) ।

केवलान्वयी अनुमान

जो हेतु सपक्ष से सहित किन्तु विपक्ष से रहित होता है उसे केवलान्वयी कहते हैं । उदा.— विचार का विषय सत् तथा असत् (भावरूप तथा अभावरूप) पदार्थों का समूह किसी एक के ज्ञान का विषय होता है क्यों कि वह अनेक है, जो अनेक होता है वह किसी एक के ज्ञान का विषय होता है, जैसे पांच अंगुलियाँ, ये सत् तथा असत् पदार्थ भी अनेक हैं, इसलिए ये किसी एक के ज्ञान के विषय होते हैं । (यहाँ अनेक होना यह हेतु सदसदूर्धर्ग इस पक्ष में है, पञ्चाङ्ग इस सपक्ष में है, किन्तु इस का कोई विपक्ष नहीं है क्यों कि संसार के जितने भी पदार्थ हैं उन सबका सदसदूर्धर्ग इस पक्ष में अन्तर्भीकृत हो जाता है, अतः यह हेतु केवलान्वयी है) । यहाँ

हेतुः स्यात् । विषयग्रहणसंभवे केवलान्वयित्वाभावात् कस्यप्राप्तां प्रसाच्येत्, न कस्यापि । अपि च व्याख्यात्तिर्नाम अभावः, रद्वितत्वमपि प्रतिवेद्य पञ्च । तथा य व्यापाकरपञ्चे अभावप्रतिवेदिग्निप्रतिवेद्याभावात् स्वरूपासिद्धो हेत्वाभासः । विषयाद्व्याख्यात्तिरद्वितत्वं नाम विषयस्वरूपमेव । तदत्र केवलान्वयित्विनि भास्तीति स्वरूपासिद्धो हेतुः स्यात् । तस्मात् केवलान्वयि अप्राप्तं व्याख्यिमत्प्रकाशमेवात् धूमानुमानविदिति स्थितम् ॥

[२८. केवलब्यतिरेकी अनुमानम्]

सप्तस्तरहितः विषयसहितः केवलब्यतिरेकी । आत्मा चेतनः शास्त्र-

शीकाकार मीमांसक का प्रश्न है कि केवलान्वयी हेतु प्रमाण नहीं होता क्यों कि इस में विषय में अभाव यह गुण नहीं है, अनैकान्तिक हेत्वाभास में भी विषय में अभाव यह गुण नहीं होता इसीलिए वह हेत्वाभास होता है अतः इस केवलान्वयी हेतु को भी प्रमाण नहीं मान सकते । किन्तु इस आक्षेप में विषय में अभाव न होना यह जो हेतु है वह अज्ञातासिद्ध है (इस का अस्तित्व सिद्ध नहीं हुआ है) क्यों कि इस केवलान्वयी हेतु में अमुक विषय है इस तरह का ग्रहण तथा उस में इस हेतु का अभाव है इस प्रकार का स्परण नहीं हो सकता इसलिए विषय में अभाव न होने का ज्ञान ही नहीं हो सकता । यदि विषय के अस्तित्व का ग्रहण हो सके तो वह हेतु केवलान्वयी ही नहीं रहेगा अर्थः अप्रमाण किसे सिद्ध करेंगे ? प्राभाकर मीमांसकों के पक्ष में यी विषय में अभाव न होना यह आक्षेप स्वरूपासिद्ध है (उस का स्वरूप सिद्ध नहीं है) क्यों कि उन के मतानुसार व्याख्यात्ति का अर्थ अभाव है तथा रहित होने का अर्थ भी अभाव ही है । प्राभाकर मीमांसकों के मतानुसार विषय में व्याख्यात्ति के अभाव का अर्थ है विषय का स्वरूप । और इस केवलान्वयी हेतु में विषय ही नहीं है इसलिए विषय में अभाव नहीं है यह कहना स्वरूपासिद्ध हो जाता है । इसलिए धूप से अग्नि के अनुमान के समान ही केवलान्वयी हेतु भी प्रमाणभूत होता है क्यों कि वह व्याप्ति से युक्त तथा विषय का धर्म है यह निष्कर्ष स्थिर हुआ ।

केवलब्यतिरेकी अनुमान

जिस हेतु में विषय होता है किन्तु सप्तस्तरहित विषय सप्तस्तरहित-

त्वात्, यो यः चेतसो न भवति स सर्वोऽपि ज्ञाता न भवति इत्युपादः, ज्ञाता ज्ञायमात्मा, तस्माच्चेतसो भवति हन्यादि । तनु केवलव्यतिरेकि न प्रमाणं सप्तक्षसत्त्वरहितत्वात् विश्ववस्तु हन्यति भीमांशकः प्रायुद्धकः । अत्र सप्तक्षयहणसत्त्वसमरणयोरभावे सप्तक्षसत्त्वरहितत्वस्य ज्ञातुमशाक्यत्वात् अज्ञाताभिहो हेतुः स्यात् । सप्तक्षयहणसंभवे केवलव्यतिरेकित्वायाधात् कस्याप्त्राणां प्रमाणध्येयत न कस्यापि । प्राप्ताकरणक्षे सप्तक्षे सत्त्वरहितत्वं नाम एषक्षस्यकरणमात्रमेव । तदत्र केवलव्यतिरेकित्वास्तीति स्वरूपादित्यत्वं हेतोः स्यात् । ततः केवलव्यतिरेकि प्रमाणं व्याप्तिगत्यश्वर्गत्वात् धूमानुभान्विति स्थितम् ।

रेकी कहते हैं । उदा ।— आत्मा चेतन है क्यों कि वह ज्ञाता है, जो चेतन नहीं होता वह ज्ञाता नहीं होता जैसे वस्त्र, आत्मा ज्ञाता है, अतः वह चेतन है । (इस अनुमान में आत्मा इस पक्ष में चेतन होना साध्य है तथा ज्ञाता होना हेतु है, इस में एत इत्यादि विषय तो सम्बन्ध है किन्तु सप्तक्ष सम्बन्धी है क्यों कि जिसे भी ज्ञाता है वे सब आत्मा होने से पक्ष में ही समानित हो जाते हैं अतः यह हेतु केवलव्यतिरेकी है) । यहाँ भी सीमांशकः शंकाकार प्रश्न करते हैं कि केवलव्यतिरेकी अनुमान प्रमाण नहीं होता क्यों कि इस में सप्तक्ष में हेतु का अस्तित्व होना यह सुण नहीं है । विश्व हेत्याभास में भी सप्तक्ष में अस्तित्व न होना यही दोष होता है और उसी से वह अप्रमाण होता है । सीमांशकों के इस आश्रोप में सप्तक्ष में अस्तित्व न होना यह हेतु उज्जालाभिह है । उत्तरका होना भिन्न नहीं है । क्यों कि सप्तक्ष का अस्तित्व यहण करना तथा इस में हेतु के अस्तित्व को स्पष्ट करना यहाँ संभव नहीं है (यही सप्तक्ष ही नहीं है अतः सप्तक्ष में हेतु है या नहीं है यह कहना संभव नहीं है) परि सप्तक्ष या ज्ञान संभव हो तो वह हेतु केवलव्यतिरेकी नहीं रहेगा, फिर अप्रपाप्य किसे भिन्न करेगे । प्राप्ताकर सीमांशकों के पक्ष में भी सप्तक्ष में अस्तित्व के अभाव का अर्थ सप्तक्ष का स्वरूप ही है । वह सप्तक्ष इस केवलव्यतिरेकी हतु में ही नहीं अतः सप्तक्ष में अस्तित्व नहीं यह कहना स्वरूपासिन्द्र हो जाता है । इसलिए केवलव्यतिरेकी हेतु भी प्रमाणभूत होता है क्यों कि धूए से अग्नि के अनुमान के समान ही यहाँ भी व्याप्ति है

[२९. अनुमानभेदत्रयम्]

तत् सर्वं क्रिविधं इष्टानुमानं सामान्यतोदष्टानुमानम् अदष्टानुमानं चेति । अस्यदादिप्रत्यक्षगृहीतव्याप्तिकम् अस्यदादिप्रत्यक्षप्रहृणदेश्यादि अनुमापकं दष्टानुमानम् । पर्वतोऽहिमान् धूमवस्थाल् मदानस्वरूप् इत्यादि । अस्यदादिप्रत्यक्षेण सामान्यतो गृहीतव्याप्तिकम् अनीन्द्रियार्थीनुमापकं सामान्यतोदष्टानुमानम् । रूपादिपरिचित् सिः करणजन्या क्रियात्वात्, या या क्रिया सा सा करणजन्या यथा घटकिया, क्रिया चेत्यं रूपादिपरिचित् सिः, रूपादिपरिचित् सिः, रूपादिपरिचित् सिः । अतःपैदैव निश्चितव्याप्तिकम्

युक्त होना तथा पक्ष का धर्म होना ये दोनों गुण हेतु में हैं यह मत स्थिर हुआ ।

अनुमान के तीन भेद

उपर्युक्त सभी अनुमानों के तीन प्रकार होते हैं—दृष्ट अनुमान, सामान्यतोदष्ट अनुमान तथा अदष्ट अनुमान । जिस अनुमान की (आधारभूत) व्याप्ति का ज्ञान हम जैसे लोगों के प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा होता हो तथा वृत्त जैसे लोगों के प्रत्यक्ष द्वारा ज्ञानने योग्य पदार्थ का ही जिस से बोध होता हो वह दृष्ट अनुमान कहलाता है जैसे— पर्वत अशियुक्त है क्यों कि यह धूप से रुक्त है जैसे रसोईघर (धूप से रुक्त होता है तब अशिय से युक्त होता ही है) (यहाँ शुभा और अशिय इन की व्याप्ति प्रत्यक्ष से ज्ञानी गई है तथा अनुमान से जाना गया पदार्थ अशिय भी प्रत्यक्ष से जाना जा सकता है अनः यह दृष्ट अनुमान है) । जिस की व्याप्ति का सामान्य रूप से हम जैसे लोगों के प्रत्यक्ष द्वारा ज्ञान होता है किन्तु जिस से ज्ञात होनेवाला पदार्थ अनीन्द्रिय (इन्द्रियप्रत्यक्ष से न जाना जाये) होना है उस अनुमान को सामान्यतोदष्ट कहते हैं । जैसे—रूप आदि का ज्ञान साधनसे होता है क्यों कि वह किता है, जो जो क्रिया होती है वह वह साधन से निष्पत्त होती है जैसे घट की क्रिया यह रूप आदि का ज्ञान भी क्रिया है अनः यह भी साधन से निष्पत्त होती है (यहाँ क्रिया और साधन से निष्पत्त होना इन की व्याप्ति सामान्यतः हमारे प्रत्यक्ष से ज्ञात होती है किन्तु इस अनुमान से बोधित होनेवाला पदार्थ—रूप आदि का ज्ञान साधन से निष्पत्त होता है — इन्द्रियप्रत्यक्ष से नहीं)

अतीन्द्रियार्थं अनुमापकम् अदृष्टानुमानस् । मुक्तात्मा सकलक्षेशरहितः सकलकर्मरहितत्वात्, यो यः सकलक्षेशरहितो न भवति स सर्वः सकलकर्मरहितो न भवति यथा संसारी, सकलकर्मरहितश्चार्थं मुक्तात्मा, तस्मात् सकलक्षेशरहितः इत्यादि ॥

[३०. अनुमानाभासः]

इति पश्चधर्मतार्थहितहेतोः साध्यसाधनम् अनुमानाभासः । तत्र पश्चधर्मरहितो हेतुरसिद्धः । व्याप्तिरहितः हेतवः विरुद्धानैकान्तिकान्-ध्यवसितकालात्ययापदिष्टप्रकरणसमाः । सिद्धे प्रत्यक्षादिवाधिते च साध्ये प्रयुक्तो हेतुरकिञ्चित्करः । अकिञ्चित्करस्य व्याप्तिपश्चधर्मताराहि-

जाना जा सकता अतः यह सामान्यतोदृष्ट अनुमान है । जिस की व्याप्ति का निश्चय केवल आगम से ही होता हो तथा जिस से ज्ञात होनेवाला पदार्थ भी अतीन्द्रिय हो उस अनुमान को अदृष्ट कहते हैं । जैसे—मुक्त आत्मा सभी दुःखों से रहित होता है क्यों कि वह सभी कर्मों से रहित होता है, जो सभी कर्मों से रहित नहीं होता वह सभी दुःखों से रहित नहीं होता जैसे संसारी जीव, मुक्त आत्मा सभी कर्मों से रहित होता है, अतः वह सभी दुःखों से रहित होता है (यहाँ मुक्त आत्मा का सभी दुःखों से रहित होना यह विषय अतीन्द्रिय है तथा जो कर्मरहित होता है वह दुःखरहित होता है यह व्याप्ति भी प्रत्यक्ष से नहीं जानी जाती, इस का निश्चय केवल आगम से होता है अतः यह अदृष्ट अनुमान है) ।

अनुमान के आभास

जो व्याप्ति से रहित है तथा पक्ष का धर्म नहीं है ऐसे हेतु से साध्य को सिद्ध करना यह अनुमान का आसान है । जो हेतु पक्ष का धर्म नहीं होता उसे असिद्ध कहते हैं । विरुद्ध, अनैकान्तिक, अनध्यवसित, कालात्ययापदिष्ट तथा प्रकरणसम ये हेतु व्याप्ति से रहित होते हैं । जो साध्य वहले ही सिद्ध हो उस के विषय में तथा जो प्रत्यक्ष आदि से वाचित हो उस के विषय में प्रयुक्त हेतु अकिञ्चित्कर कहलाता है । अकिञ्चित्कर हेतु व्याप्ति से रहित नहीं होता तथा पक्षधर्मत्वरहित भी नहीं होता फिर उसे (हेतु का) आभास कैसे कहा जाय ऐसा प्रश्न हो सकता है, उत्तर यह है कि उस का

स्थापावस्तुहि तस्याभासत्वं कौतस्कुतमिति चेत् प्रतिवायसिद्धाप्रमाण्य-
स्थात्। साध्यविकलादिदृशान्ताभासाद्य व्याप्तिर्हीतः। शब्द वाप्तः।
अनिश्चितपक्षबूत्तिः हेतुरसिद्धः। पक्षविपक्षयोरेव वर्तमानो हेतुः विरुद्धः।
पक्षविपक्षवृत्तिर्हेतुः अनैकान्तिकः। प्रतिवादिप्रसिद्धसाध्ये प्रयुक्तो हेतुर-
किञ्चित्करः। अनिश्चितव्याप्तिकः पक्ष एव वर्तमानो हेतुः अनध्यवसितः।
वाचितसाध्ये पक्षे प्रयुक्तो हेतुः कालात्मयापदिष्टः। स्वपरपक्षसिद्धाच-
यित्रिरूपो हेतुः प्रकरणसमः॥

[३१. असिद्धभेदाः]

तत्रासिद्धभेदाः पक्षेऽविद्यमानो हेतुः स्वरूपासिद्धः, अनित्यः शब्दः
चाक्षुषत्वात् प्रदीपवत्। भिन्नाधिकरणे प्रयुक्तो हेतुः व्याख्यिकरणासिद्धः,

प्रमादपूर्णं (दोषपूर्ण) न होना प्रतिपक्षी के लिए असिद्ध है (प्रतिपक्षी उस हेतु में दोष बतला सकता है अतः उसे हेतु का आभास कहा है)। साध्य-
विकल आदि दृष्टान्ताभास भी व्याप्ति से रहित होते हैं (इन का अग्रे वर्णन
करेंगे)। (हेत्वाभासों के लक्षण) इस प्रकार हैं – जिस हेतु का पक्ष में
अस्तित्व निश्चित नहीं हो वह असिद्ध होता है। जो हेतु पक्ष में तथा विपक्ष
में ही हो (सपक्ष में न हो) वह विद्ध होना है। जो हेतु तीनों पक्षों में (पक्ष
सपक्ष तथा विपक्ष में) हो वह अनैकान्तिक होता है। प्रतिवादी के लिए जो
साध्य पहले ही सिद्ध होता है उस के विषय में प्रयुक्त हेतु अकिञ्चितर होता
है। जो हेतु पक्ष में ही हो किन्तु जिस की व्याप्ति अनिश्चित हो वह अनध्य-
वसित होता है। जिस पक्ष में साध्य का अस्तित्व वाचित है उस के विषय
में प्रयुक्त हेतु कालात्मयापदिष्ट होता है। जिस हेतु के तीनों रूप (पक्ष में
अस्तित्व, सपक्ष में अस्तित्व, विपक्ष में अभाव) अपने पक्ष के तथा प्रतिपक्ष
के – दोनों के सिद्ध करने में प्रयुक्त होते हैं वह प्रकरणसम होता है (इन
सब हेत्वाभासों के उपर्येक तथा उदाहरण अब आपशः बतायेंगे)।

असिद्ध हेत्वाभास के प्रकार

असिद्ध हेत्वाभास के भेद इस प्रकार हैं – जो हेतु पक्ष में विद्यमान न हो वह
स्वरूपासिद्ध होता है, जैसे – शब्द अनित्य है, क्यों कि वह चाक्षुष है (चाक्षुष
होना पह हेतु शब्द इस पक्ष में विद्यमान नहीं है अतः वह स्वरूपासिद्ध है)।

पर्वतोऽशिमान् महानसस्य धूमवत्त्वात् मठवत् । पक्षैकदेशे वर्तमानो हेतुः
भागासिद्धः, अनित्यः शब्दः प्रयत्नजन्मत्वात् पटवत् । पक्षैऽविद्यमान-
विशेषो हेतुः विशेषासिद्धः, अनित्यः शब्दः सामान्यवत्त्वे सति चाक्षुष-
त्वात् । पक्षैऽविद्यमानविशेषणो हेतुः विशेषासिद्धः, अनित्यः शब्दः
चाक्षुषत्वे सति सामान्यवत्त्वात् । पक्षे अक्षतो हेतुः अक्षातासिद्धः,
रागादिरहितः कपिलः उत्पत्तत्वज्ञानत्वात् । संदिग्धासिद्धश्चायमेव । पक्षे
संदिग्धविशेषो हेतुः संदिग्धविशेषासिद्धः, कपिलो रागादिमान् पुलवत्त्वे
सति उत्पत्तत्वज्ञानत्वात् । पक्षे संदिग्धविशेषणो हेतुः संदिग्धविशेष-

(पक्ष से) भिन्न स्थान में प्रश्नत हेतु व्यधिकरणासिद्ध होता है, जैसे—पर्वत
अभिसे युक्त है क्यों कि रसोईधर धूए से युक्त है जैसे मठ (यहाँ धूए से
युक्त होना यह हेतु पर्वत इस पक्ष में न बतला कर उस से भिन्न स्थान
(रसोईधर में बतलाया है अतः यह व्यधिकरणासिद्ध है) । पक्ष के एक हिस्से
में जो विद्यमान हो (सर्वत न हो) उस हेतु को भागासिद्ध कहते हैं, जैसे
—शब्द अनित्य है क्यों कि यह प्रयत्न से उत्पन्न होता है जैसे वस्त्र (यहाँ
प्रयत्न से उत्पन्न होना यह हेतु शब्द इस पक्ष के एक हिस्से में विद्यमान है,
सर्वत न हो, क्यों कि अक्षग्रामक शब्द तो प्रयत्न से उत्पन्न होता है और
मैथगञ्जनादि शब्द विना प्रयत्न के भी उत्पन्न होता है अतः यह हेतु भागा-
सिद्ध है) । जिस का विशेषण पक्ष में विद्यमान न हो वह हेतु विशेषासिद्ध
होता है, जैसे—शब्द अनित्य है क्यों कि वह सामान्ययुक्त होते हुए चाक्षुष
होता है (यहाँ सामान्ययुक्त होने हए चाक्षुष होना इस हेतु का विशेषण
अर्थात् चाक्षुष होना) शब्द इस पक्ष में नहीं पाया जाता अतः यह हेतु विशेष-
णासिद्ध है) । जिस हेतु का विशेषण पक्षमें विद्यमान न हो वह विशेषणासिद्ध
होता है, जैसे—शब्द अनित्य है क्यों कि वह चाक्षुष होते हुए सामान्ययुक्त है
(यहाँ चाक्षुष होते हुए सामान्ययुक्त होना इस हेतु का विशेषण अर्थात् चाक्षुष
होना शब्द उस पक्ष में नहीं पाया जाता अतः वह हेतु विशेषणासिद्ध है) । पक्ष
में जिस हेतु के अस्तित्व का ज्ञान न होता हो, वह अज्ञाता सिद्ध होता है, जैसे—
कपिल राग आदि से गहित है क्यों कि उन्हें तत्त्वज्ञान उत्पन्न हुआ है (यहाँ
कपिल इस पक्ष में तत्त्वज्ञान उत्पन्न होना इस हेतु का अस्तित्व जाता नहीं गया)

व्याख्यासिद्धः, कपिलो रागादिमान् अनुत्पन्नतत्त्वज्ञानत्वे सति पुरुषत्वात् । निरर्थविशेष्यवान् हेतुः व्यर्थविशेष्यासिद्धः, अनित्यः शब्दः कृतकत्वे सति सामान्यवत्त्वात् । निष्ठायोजनविशेषणवान् हेतुः व्यर्थविशेषणासिद्धः, अनित्यः शब्दः सामान्यवत्त्वे सति कृतकत्वात् । प्रमाणेनासिद्धे पक्षे अयुक्तो हेतुः आश्रयासिद्धः, अस्ति प्रधानं विश्वपरिणामित्वात् । यत्कू सादित्यते जैनैः, पक्षस्य विकल्पसिद्धत्वप्रतिपादनात् ॥

है अतः यह अज्ञातासिद्ध हेतु है)। इसी को संदिग्धभासिद्ध भी कहते हैं। जिस का अस्तित्व विशेष्य में है या नहीं इस में सम्बद्ध हो वह हेतु संदिग्धविशेष्यासिद्ध होता है। जैसे—कपिल राग आदि से युक्त है क्यों कि पुरुष होते हुए उसे तत्त्वज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है (यहाँ तत्त्वज्ञान उत्पन्न न होना यह विशेष्य-कपिल इस पक्ष में है या नहीं यह संदिग्ध है अतः यह संदिग्धविशेष्यासिद्ध हेतु हुआ)। जिस के विशेषण का अस्तित्व में पक्ष में संदिग्ध हो वह हेतु संदिग्ध-विशेषणासिद्ध होता है। जैसे—कपिल राग आदि से युक्त है क्यों कि तत्त्वज्ञान उत्पन्न न होते हुए वह तुरन्त है (यहाँ तत्त्वज्ञान उत्पन्न न होना यह विशेषण कपिल इस पक्ष में संदिग्ध है अतः यह हेतु संदिग्धविशेषणासिद्ध हुआ)। जिस हेतु में विशेष्य निरर्थक हो वह व्यर्थविशेष्यासिद्ध होता है। जैसे—शब्द अनित्य हैं क्यों कि वह कृतक होते हुए सामान्य से युक्त है (यहाँ सामान्य से युक्त होना यह विशेष्य निरपेक्षी है अतः यह हेतु व्यर्थविशेष्यासिद्ध हुआ)। जिस हेतु का विशेषण निरूपयोगी हो वह व्यर्थविशेषणासिद्ध होता है। जैसे—शब्द अनित्य है क्यों कि वह सामान्ययुक्त होते हुए कृतक है (यहाँ सामान्य-युक्त होते हुए यह विशेषण निरूपयोगी है अतः यह हेतु व्यर्थविशेषणासिद्ध हुआ)। जो पक्ष प्रमाण से सिद्ध न हुआ हो उस के विषय में प्रयुक्त हेतु आश्रयासिद्ध होता है। जैसे—प्रधान (प्रकृति) का अस्तित्व है क्यों कि यह विश्व उसी का परिणाम है (विकसित स्वरूप है) (यहाँ प्रकृति इस पक्ष का अस्तित्व प्रमाणासिद्ध नहीं है अतः इस के बारे में सभी हेतु आश्रयासिद्ध होगी) जैनों द्वारा इस को (आश्रयासिद्ध हेत्वाभास को) मान्यता नहीं दी जाती क्यों कि ये पक्ष को विकल्पसिद्ध भी मानते हैं (जिस का अस्तित्व है या नहीं इस के विषय में सम्बद्ध हो वह पक्ष विकल्पसिद्ध होता है—उस के विषय में भी अनुमान हो सकता है ऐसा जैनों का मत है)।

[२२. सप्तशसदभावे विश्वद्भेदाः]

साध्यविषयीते निश्चितव्यापिको हेतुः विश्वः। तद्भेदाः सति सप्तके चत्वारे विश्वाः। पक्षविषयाव्यापको [यथा - नित्यः शब्दः कार्यत्वात्]। पक्षरूपे शब्दे कार्यत्वमस्ति, विषयरूपे अनित्ये ग्रटपटादौ च सर्वत्रास्ति कार्यत्वम्। विषयकैकदेशबृह्तिः पक्षव्यापको यथा—नित्यः शब्दः सामान्यवच्चे सति अस्मद्विवॉहेन्द्रियग्राहात्वात्। विषयरूपे ग्रटादौ वाञ्छेन्द्रियग्राहात्वमस्ति, विषयरूपे सुखादौ तत्त्वास्त्येव, पक्षीकृतेषु शब्देषु।

सप्तके रहते हुए विश्वद्भेदवाचास के प्रकार

जिस की व्याप्ति साध्य के विश्व पक्ष में निश्चित हो उस हेतु को विश्व कहते हैं। सप्तके रहते हुए उस विश्व वेत्त्वाभास के चार प्रकार होते हैं। पक्ष तथा विषय में व्यापक विश्व वेत्त्वाभास का उदाहरण—शब्द नित्य है क्यों कि वह कार्य है। वहाँ शब्द इस पक्ष में कार्य होना (यह हेतु) है, विषय अर्थात् घट पट इत्यादि अनित्य पदार्थों में भी सर्वत्र कार्य होना (यह हेतु) विद्यमान है (अतः यह हेतु पक्षविषयव्यापी विश्व वेत्त्वाभास है)। पक्ष में व्यापक तथा विषय के एक भाग में रहनेवाले विश्व वेत्त्वाभास का उदाहरण—शब्द नित्य है क्यों कि सामान्य से युक्त होते हुए वह हम जैसे लोगों की वास्तु इन्द्रियों से ज्ञात होता है। यहाँ घट इत्यादि विषय में (अनित्य पदार्थों में) वास्तु इन्द्रियों से ज्ञात होना (यह हेतु) है, सुख इत्यादि विषय में (अनित्य पदार्थों में) वह नहीं है (वे वास्तु इन्द्रियों से ज्ञात नहीं होते)। तथा शब्द इस पक्ष में सर्वत्र नात्य इन्द्रियों से ज्ञात होना (यह हेतु) विद्यमान है (अतः यह विषयकदेशबृह्ति पक्षव्यापक विश्व वेत्त्वाभास है)। पक्ष तथा विषय दोनों के एक भाग में रहनेवाले विश्व वेत्त्वाभास का उदाहरण—शब्द नित्य है क्यों कि वह प्रयत्न से उत्पन्न होता है। यहाँ पक्ष में जो शब्द चालू, होठ आदि की हलचल से उत्पन्न होते हैं उन में तो प्रयत्नजनित होना यह हेतु है किन्तु नदी की आवाज, मेघगर्जना आदि शब्दों में वह हेतु नहीं है (वे शब्द प्रयत्नजनित नहीं हैं), घट इत्यादि विषय में वह (प्रयत्नजनित होना) विद्यमान है किन्तु प्रागभाव ऐसे विषय में वह नहीं है (प्रागभाव प्रयत्नजनित नहीं होता, किसी वस्तु के उत्पन्न होने से पहले उस का जो

सर्वत्र वाणीन्द्रियप्राह्लादमस्ति । पश्चविषद्वैकदेशावृत्तिर्था—नित्यः शब्दः प्रथलजन्यत्वात् । पश्चीकुसे तात्वोष्ठपुटध्यायारजनिसे शब्दे प्रथलजन्यत्वमस्ति, नदीघोषमेघगर्जनादौ तद्वास्ति, विषक्षरणे धटावौ तद् विद्यते, प्रायभावे तद्वास्ति । पश्चैकदेशावृत्तिः विषक्षरापको यथा—नित्या पृथिवी कृतकत्वात् । पश्चरूपे पृथिव्यादौ कृतकत्वमस्ति, पृथ्वीयततस्वरूपपरमाणुष तदपि वास्ति, विषक्षरूपे अनित्ये धटपटादौ सर्वत्र कृतकत्वं व्याप्तमस्ति ॥

[२३. सपक्षाभावे विश्वद्वभेदाः]

असति सपक्षे चत्वारो विश्वाः । पश्चविषक्षव्यापको यथा—आकाशविशेषगुणः शब्दः प्रमेयत्वात् । पश्चीकुते शब्दे सर्वत्र प्रमेयत्वमस्ति । शब्दे विहायान्यपदार्थाः आकाशविशेषगुणा न भवन्ति अतः एव अभाव होता है उसे प्राप्तभाव कहते हैं वह स्वाभाविक होता है प्रथलनिर्मित नहीं) (इस प्रकार यह हेतु पश्चविषद्वैकदेशव्यापी विश्वद्व हेत्वाभास है) । पक्ष के एक भाग में रहनेवाला और विषक्ष में व्यापक विश्वद्व हेत्वाभास इस प्रकार होता है—पृथिवी नियम है क्यों कि कठ कृतक है । यही पृथिवी इस पक्ष में कृतक होना (यह हेतु) है, किन्तु पृथ्वी में समाविष्ट उस के स्वरूप के परमाणुओं में यह (कृतक होना) नहीं है (न्यायमत के अनुसार पृथ्वी आदि के परमाणु नियम हैं, वे किसी के द्वारा बनाये नहीं जाते, उन भरमाणुओं से हींशर पृथ्वी आदि का निर्माण करता है, अतः पृथ्वी कृतक है किन्तु पृथ्वी—परमाणु कृतक नहीं है), धट पट इत्यादि विषक्ष में (अनित्यपदार्थों में) सर्वत्र कृतक होना (यह हेतु) व्याप्त है (अतः यह पश्चैकदेशावृत्तिविषक्षव्यापक विश्वद्व हेत्वाभास है) ।

सपक्ष के अभाव में विश्वद्व हेत्वाभास के चार प्रकार—

सपक्ष न हो तो विश्वद्व हेत्वाभास के चार प्रकार होते हैं । पक्ष और विषक्ष में व्यापक विश्वद्व का उदाहरण—शब्द आकाश का विशेष गुण है क्यों कि वह प्रमेय है । यहीं प्रमेय होना यह हेतु शब्द इस पक्ष में सर्वत्र व्याप्त है, शब्द को छोड़ अन्य पदार्थ आकाश के विशेष गुण नहीं होते अतः वे सब विषक्ष हैं, उस धट पट आदि विषक्ष में सर्वत्र प्रमेय होना यह हेतु है ।

ते विपक्षाः । विपक्षरूपेषु तेषु घटपटादिषु सर्वत्र प्रमेयत्वमस्ति । पक्ष-विपक्षैकदेशवृत्तिर्था—आकाशविशेषगुणः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वात् । पक्षतों प्रपञ्चे ताल्प्रोप्तुषुक्ष्यापारघटिते शब्दे प्रयत्नानन्तरीयकत्वमस्ति, पर्जन्यमर्जनादिशब्दे नास्ति । विपक्षरूपेषु घटपटादिषु सोऽथ हेतुरस्ति । प्रागभावादौ स न संभावयते । पक्षव्यापको विपक्षैकदेशवृत्तिर्था—आकाशविशेषगुणः शब्दः अस्मद्वादिवाहेन्द्रियप्राह्यत्वात् । पक्षीकृतेषु शब्देषु हेतुः सर्वशास्ति, विपक्षरूपे घटपटादावपि हेतुरयं समस्ति, लुभादौ हेतुरयं न विद्यते । विपक्षव्यापकः पक्षैकदेशवृत्तिः यथा—आकाशविशेषगुणः शब्दः अपदात्मकत्वात् । विपक्षरूपेषु घटपटादिषु (अतः यह पक्षविपक्षव्यापी विरुद्ध हेत्वाभास है) । पक्ष और विपक्ष के कुछ भाग में व्यापक विरुद्ध का उदाहरण—शब्द आकाश का विशेष गुण है क्यों कि वह प्रक्षेप से उत्पन्न होता है । यही पक्ष में समाविष्ट शब्दों में जो ताळु, होठ आदि की किया से उत्पन्न होते हैं उन शब्दों में प्रयत्न से उत्पन्न होना यह हेतु है, किन्तु मेवर्गर्जना आदि शब्दों में यह हेतु नहीं है (वे शब्द प्रयत्नजन्य नहीं होते); तथा धट, पट आदि विपक्षों में यह हेतु है किन्तु प्रागभाव आदि में नहीं है प्रागभाव आदि प्रयत्नजन्य नहीं होते) (अतः यह पक्ष और विपक्ष दोनों के एक भाग में रहनेवाला विरुद्ध हेत्वाभास है) । पक्ष में व्यापक और विपक्ष के एक भाग में रहनेवाले विरुद्ध का उदाहरण—शब्द आकाश का विशेष गुण है क्यों कि वह बाय्य इन्द्रियों से ज्ञात होता है । यही शब्द इस पक्ष में बाय्य इन्द्रियों से ज्ञात होना वह हेतु सर्वत्र व्यास है, धट धट आदि विपक्ष में भी यह हेतु है किन्तु सुखदुःख आदि विपक्ष में यह हेतु नहीं है (वे बाय्य इन्द्रियों से ज्ञात नहीं होते) (अतः यह पक्षव्यापी विपक्षैकदेशवृत्ति विरुद्ध हेत्वाभास है) । विपक्ष में व्यापक तथा पक्ष के एक भाग में रहनेवाले विरुद्ध का उदाहरण—शब्द आकाश का विशेष गुण है क्यों कि वह पदरूप नहीं है । यहाँ बट पट आदि विपक्ष में सर्वत्र पदरूप न होता वह हेतु व्याप है, पक्ष में समाविष्ट नदी का अवनि, मेवर्गर्जना आदि शब्दों में भी यह हेतु है (वे शब्द पदरूप नहीं होते) किन्तु ताळु, होठ आदि की किया से उत्पन्न शब्दों में यह हेतु नहीं है (वे शब्द पदरूप

कषदस्त्वकर्त्त्वं सर्वत्र व्याप्तमरित, पक्षरुपे लक्षीयोषजलधरनिहादादौ च
अथदात्मकर्त्त्वं विद्यते, सार्वोग्रहुष्टव्यापारजनिते शब्दे नाहित। नमु
पक्षेकदेशव्यतिरीक्षा भागास्त्रिलक्ष्मेन असिद्धभेदत्वात् तेषां किमर्थयत्र प्रयोग
इति चेत् केषांचित् हेत्वामुभयद्वयसद्भावप्रदर्शनार्थम् ॥

[३४. अनैकान्तिकभेदाः पक्षव्यापकाः]

विपक्षेऽपि वृत्तिमान् हेतुरनैकान्तिकः । तदभेदाः । पक्षव्यवयापको
यथा—अनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् । पक्षरुपे शब्दे सर्वत्र प्रमेयत्वमस्ति,
सपक्षे घटपटादौ आस्ति, तथा नित्यरुपे विपक्षे आकाशादौ च प्रमेयत्वं
सर्वत्र व्याप्तम् । पक्षव्यापकः सपक्षविपक्षेकदेशवृत्तिः यथा—अनित्यः
शब्दः कर्मदादिवाहं ब्रियत्राहत्यात् । पक्षरुपे शब्दे कर्मदादिप्रत्यक्षत्वं
सर्वत्र व्याप्तमस्ति, अनित्यरुपे सपक्षे घटपटादौ अस्ति, अनित्यरुपे

होते हैं) (अतः यह विपक्षव्यापकी पक्षीकरेशवृत्ति विकृद्ध हेत्वाभास है) । यहाँ
प्रक्षेत्र होता है कि जो हेतु पक्ष के एक भाग में ही होता है (अन्य भागों में
नहीं होता) वह भागासिद्ध होता है, वह आसिद्ध हेत्वाभास का प्रकार है, फिर
यहाँ उस का प्रयोग क्यों किया है । उत्तर यह है कि कुछ हेतुओं में दोनों दोष
(असिद्ध होना और विकृद्ध होना) होते हैं यह बनलाने के लिए (ऐसे उदाहरण दिये हैं) ।

पक्ष में व्यापक अनैकान्तिक हेत्वाभास

जो हेतु विपक्ष में भी विद्यमान होता है उसे अनैकान्तिक हेत्वाभास
कहते हैं । उस के प्रकारों के उदाहरण इस प्रकार हैं । तीनों पक्षों में (पक्ष,
सपक्ष तथा विपक्ष में) व्याप्त होनेवाले अनैकान्तिक का उदाहरण—शब्द अनित्य
है क्यों कि वह प्रमेय है । यहाँ शब्द इस पक्ष में सर्वत्र प्रमेय होना यह हेतु
विद्यमान है, घट पठ इत्यादि सपक्ष में भी यह विद्यमान है तथा आकाश
इत्यादि जो नित्य है उन विपक्ष के पदार्थों में भी प्रमेय होना सर्वत्र व्याप्त है ।
पक्ष में व्यापक तथा सपक्ष और विपक्ष के एक भाग में रहनेवाले अनैकान्तिक
का उदाहरण—शब्द अनित्य है क्यों कि वह हम जैसे लोगों के बाह्य इन्द्रियों
द्वारा ज्ञात होता है । यहाँ शब्द इस पक्ष में हम जैसे लोगों को प्रत्यक्ष ज्ञात
प्र.प्र.३

सपक्षे सुखादौ नास्ति, नित्यविषयकरपायां वृथिव्याम् अस्मदादिप्रत्यक्ष-
स्थमस्ति, तद्यतपरमाणुषु नास्ति । पक्षमपक्षव्याप्तयोर्को विपक्षैकदेशाद्वृत्ति-
र्यथा—गौरेयं विषाणित्वात् । अथमिति पुरोचतिनि पक्षे विषाणित्वं
व्याप्तमस्ति, तथा सपक्षरूपे अन्यगोषु च विषाणित्वमस्ति, गवां
विषयकरपे महिषादौ च विषाणित्वं विद्यते, तेषां विपक्षरूपे खरतुरगादौ
विषाणित्वं न प्रकाशते । पक्षविषयपक्षव्याप्तः सपक्षैकदेशाद्वृत्तिः यथा—
नाये गांः विषाणित्वात् । अथमिति पुरोभागिपक्षे विषाणित्वं व्याप्तमभूत् ।
गौरेऽभवति महिषीत्यस्य विपक्षो गौरेवतीति तत्रापि विषाणित्वं विद्यते ।
गौरेऽभवतीत्यस्य सपक्षो महिषादिः तेषु च विषाणित्वं विद्यते, खरतुर-
गादौ नास्ति ॥

होना यह हेतु सर्वत्र व्याप्त है, सपक्ष में घट पट इत्यादि अनित्य पदार्थों में
यह है किन्तु सपक्ष के ही सुख इत्यादि अनित्य वस्तुओं में यह हेतु नहीं है
विपक्ष में नित्य पृथ्वी में हम जैसों को प्रत्यक्ष द्वारा ज्ञात होना यह हेतु है,
किन्तु उसी पृथ्वी के परमाणुओं में यह हेतु नहीं है । पक्ष और सपक्ष में
व्यापक तथा विपक्ष के एक भाग में रहनेवाले अनैकानितिक का उदाहरण—
यह बैल है क्यों कि इसे सींग है । यह इस शब्द द्वारा वर्णित जो सामने
सिध्यत है उस प्राणी में अर्थात् पक्ष में सींग होना यह हेतु है, जो सपक्ष हैं
उन दूसरे बैलों में भी यह सींग होना विद्यमान है, बैलों के लिए विपक्ष ऐसे
मेंस आदि में भी सींग होना यह हेतु है किन्तु उसी विपक्ष के गधे, घोड़े
आदि प्राणियों में यह हेतु नहीं है । पक्ष और विपक्ष में व्यापक तथा सपक्ष
के एक भाग में रहनेवाले अनैकानितिक का उदाहरण—यह बैल नहीं है क्यों
कि इसे सींग है । यहाँ यह इस शब्द द्वारा वर्णित आगे खड़े हुए प्राणी
अर्थात् पक्ष में सींग होना यह हेतु व्याप्त है, जो बैल नहीं है उस मैस का
विपक्ष बैल यही होगा, उस विपक्ष में भी सींग होना यह हेतु है, मैस आदि
सपक्ष—जो बैल नहीं हैं उस में भी यह हेतु (सींग होना) विद्यमान है, किन्तु
सपक्ष में ही समाविष्ट (जो बैल नहीं है ऐसे) गधे, घोड़े आदि में यह हेतु
नहीं है ।

[३५. अनैकानितिकभेदाः पश्चकदेशवर्तिनः]

पश्चत्रयैकदेशवृत्तिः यथा—अनित्या पृथिवी अस्मदादिवाण्डेन्द्रिय-
प्रत्यक्षत्वात् । पृथिव्या पश्चसुपायाम् अस्मदादिप्रत्यक्षत्वमस्ति, तद्गत-
परमाणुषु नास्ति । सपश्चरूपेऽनित्ये बठ्यटादौ अस्मदादिप्रत्यक्षत्वमस्ति
न सुखादौ । नित्यरूपे विपक्षे प्रवृत्तसाभावे अस्मदादिप्रत्यक्षत्वं विद्यते,
आलात्माकाशादिषु नास्ति । पश्चसपश्चैकदेशवृत्तिः विपक्षव्यापको यथा—
द्रव्याणि दिक्कालमनांसि अमूर्तत्वात् । पश्चरूपे दिक्काले अमूर्तत्वमस्ति,
मनसि नास्ति । सपक्षे आत्माकाशेषु विद्यते, द्रव्यरूपेषु घटादिषु अमूर्तत्वं
नास्ति । अद्रव्यरूपे प्रागभावप्रधंसाभावेतरेतराभावात्यन्ताभावे अभाव-
स्तुष्टये अमूर्तत्वं सर्वत्र व्यापम् । पश्चविपश्चैकदेशवृत्तिः सपश्चव्यापको
यथा—न द्रव्याणि दिक्कालमनांसि अमूर्तत्वात् । पश्चरूपे दिक्काले

पक्ष के एक भाग में रहनेवाले अनैकानितिक हेत्वाभास

तीनों पक्षों के (पक्ष सपक्ष तथा विपक्ष के) एक भाग में रहनेवाले
अनैकानितिक का उदाहरण—पृथ्वी अनित्य है क्यों कि वह हम जैसे लोगों के
बाह्य इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष जानी जाती है । यहां पृथ्वी इस पक्ष में हम जैसे
लोगों को प्रत्यक्ष ज्ञात होना यह हेतु है किन्तु इसी पक्ष में अन्तर्भूत पृथ्वी के
परमाणुओं में यह हेतु नहीं है । सपक्ष में जो अनित्य बठ्यट आदि हैं उन
में हमारे जैसे लोगों द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञात होना यह हेतु है किन्तु सपक्ष के ही
सुख आदि में यह हेतु नहीं है । विपक्ष में जो प्रवृत्तसाभाव आदि नित्य हैं
उन में यह हेतु अर्थात् हम जैसे लोगों द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञात होना विद्यमान है
किन्तु काल, आत्मा, आकाश आदि नित्य पदार्थों में यह हेतु नहीं है । पक्ष
और सपक्ष के एकभाग में तथा विपक्ष में सर्वत्र रहनेवाले अनैकानितिक का
उदाहरण—दिशा, काल और मन द्रव्य हैं क्यों कि वे अमूर्त हैं । यहां पक्ष में
सामिल दिशा और काल में अमूर्त होना यह हेतु है किन्तु मन में यह हेतु
नहीं है । आत्मा, आकाश आदि सपक्ष में यह हेतु (अमूर्त होना) है किन्तु
घट आदि जो द्रव्य है (अत एव सपक्ष है) उन में यह हेतु नहीं है ।
(विपक्ष में अर्थात्) जो द्रव्य नहीं हैं उन चार अभावों में — प्रागभाव,
प्रवृत्तसाभाव, इतरेतराभाव एवं अव्यन्ताभाव में — यह हेतु अर्थात् अमूर्त होना
सर्वत्र व्याप है । पक्ष और विपक्ष के एक भाग में तथा सपक्ष में सर्वत्र

अमूर्तत्वमस्ति, मनसि न अस्ति । विषयके द्रव्यरूपे आत्माकाशोऽमूर्तत्वमस्ति, घटपटादौ नास्ति । सप्तश्चे अद्रव्यरूपेषु अभावचतुष्टयेषु वस्तुत्वं सर्वत्र व्याप्तम् । सप्तश्च विषय व्याप्तकः पश्चेष्वैशाधृतिः यथा— न द्रव्याणि दिक्कालात्माकाशमनोस्मि आकाशविदोषगुणरहितत्वम् । सप्तश्चे अद्रव्यरूपे अभावचतुष्टये आकाशविदोषगुणरहितत्वं सर्वत्र व्याप्तम् । विषयके द्रव्यरूपेषु घटपटादिषु च शब्दगुणरहितत्वं सर्वत्र व्याप्तम् । पश्चीकृतेषु सर्वेषु दिक्कालात्ममनःसु आकाशविदोषगुणरहितत्वमस्ति, आकाशो सञ्चास्ति ॥

[३६. अकिञ्चित्करः]

सिद्धे सध्ये हेतुम् किञ्चित् करोनीति अकिञ्चित्करः । तैजसः प्रदीपः उणसपर्शीष्वास् पावकवल् ।

इन्द्रेवाले अनैकान्तिक का उदाहरण— दिशा, काल और मन द्रव्य नहीं हैं क्यों कि वे अमूर्त हैं । वहाँ पक्ष में शामिल दिशा और काल में अमूर्त होना वह हेतु है किन्तु मन में नहीं है । जो द्रव्य हैं उन में अर्थात् विषय में—बटपट आदि में यह हेतु नहीं है, आत्मा, आकाश आदि में यह अमूर्त होना विश्वासन् है । जो द्रव्य नहीं हैं ऐसे चार प्रकार के अभावों में अर्थात् सप्तश्च में अमूर्त होना यह हेतु सर्वत्र व्याप्त है । सप्तश्च और विषय में सर्वत्र तथा पक्ष के एक भाग में इन्द्रेवाले अनैकान्तिक का उदाहरण— दिशा, काल, आत्मा, आकाश, मन ये द्रव्य नहीं हैं क्यों कि वे आकाश के विशेष गुण से रहित हैं । यहाँ जो द्रव्य नहीं है ऐसे चार अभावों में अर्थात् सप्तश्च में हेतु अर्थात् आकाश के विशेष गुण से रहित होना सर्वत्र व्याप्त है । विषय में जो द्रव्य हैं उन बट पट आदि में भी यह हेतु अर्थात् शब्द गुण से रहित होना सर्वत्र व्याप्त है । पक्ष में शामिल दिशा, आत्मा, काल मन इन में यह हेतु है किन्तु आकाश में यह हेतु नहीं है ।

अकिञ्चित्कर हेत्वाधाम

जटी साध्य पहले ही सिद्ध हो वहाँ हेतु कुछ भी नहीं करता अतः उसे अकिञ्चित्कर कहते हैं । जैसे— दीपक तैज से बना है क्यों कि वह अभि के समान उण्णी स्वर्ण से बुकत है (वहाँ दीपक का तैजस होना पहले ही सिद्ध है अतः उस के लिए उण्णसपर्शीयुक्त होना आदि हेतु दर्थ है— उन्हें अकिञ्चित्कर कहता चाहिए) ।

[३७. अनध्यवसितः]

अनध्यवसितमेहास्तु - अद्विद्यमानसपश्चविषयः पश्चव्याप्तिको यथा-
सर्वं क्षणिकं सत्त्वात् । क्षणिकाश्चणिकयोः सपश्चविषयश्चयोः सर्वमित्यत्रैष
अन्तर्भावात् सत्त्वादित्यस्य हेतोः स तयोः प्रवृत्तिः । सर्वेषु आकाशबट-
पटादिषु पदार्थेषु सत्त्वादितीदं हेतुल्यं सर्वत्र वाप्तमस्ति । अविद्यमानस-
पश्चविषयः पश्चेकदेशवृत्तिः यथा - सर्वमनित्यं कार्यत्वात् । अत्रापि
सपश्चविषययोः अनित्यनित्ययोः सर्वमित्यत्रैष अभेददर्शनात् न कार्यत्वस्य
पृथक् प्रवृत्तिः । अत एव एके क्षणित् घटपटादी कार्यत्वमस्ति आत्माविषु
वास्ति । विद्यमानसपश्चविषयः पश्चव्याप्तिको यथा - अनित्यः शब्दः
आकाशविशेषगुणत्वात् । सपश्चविषयस्तर्येषु घटपटात्मकालेषु प्राग-
भावोऽनित्यः सपक्षे प्रावृत्तमाभावः विषये सर्वत्र आकाशविशेषगुणभावः
स्थीकृते शब्दे सर्वत्र आकाशविशेषणगुणत्वे व्याप्तं समस्ति । विद्यमानस-

अनध्यवसित हेत्वाभास

इस के प्रकार निम्नलिखित हैं । पक्ष में व्याप्त किन्तु सपक्ष तथा
विषय में रहित अनध्यवसित का उदाहरण - सब पदार्थ क्षणिक हैं क्यों
कि उन का अस्तित्व है । यहाँ जो क्षणिक हैं वे पदार्थ सपक्ष होंगे तथा जो
क्षणिक नहीं हैं वे विषय होंगे किन्तु इन दोनों का सब पदार्थ इस पक्ष में
ही अन्तर्भाव हो जाता है अतः अस्तित्व होना यह हेतु सपक्ष या विषय में
प्रवृत्त नहीं हो सकता । आकाश, घट, पट आदि जिनमें पदार्थ हैं उन सब
में अस्तित्व होना यह हेतु सर्वत्र व्याप्त है । जिस में सपक्ष और विषय नहीं हैं
तथा जो पक्ष के एक भाग में है ऐसे अनध्यवसित का उदाहरण - सब
पदार्थ अनित्य हैं क्यों कि वे कार्य हैं । यहाँ भी अनित्य पदार्थ सपक्ष होंगे
तथा नित्य पदार्थ विषय होंगे किन्तु इन दोनों का सब पदार्थ इस पक्ष में
ही अन्तर्भाव होने से कार्य होना यह हेतु अलग से सपक्ष या विषय में
प्रवृत्त नहीं हो सकता । यहाँ पक्ष में कहीं कहीं घट, पट आदि में कार्य
होना यह हेतु है, आत्मा आदि पदार्थों में यह हेतु नहीं है । पक्ष में व्याप्तका
तथा सपक्ष और विषय से युक्त अनध्यवसित का उदाहरण - शब्द अनित्य
है क्यों कि वह आकाश का विशेष गुण है । यहाँ घट, पट आदि सपक्ष हैं,

पश्चविषयः पश्चैकदेशचृत्तिः यथा - सब द्रष्टव्यनित्यं क्रियावत्त्वात् । **सपश्चविषयकरुणयोः प्रागभाषप्रध्वंसाभावयोः** सतोरपि तत्र क्रियावत्त्वादिति हेतोप्रचुत्तिः । **पश्चरपेषु घटपटादिषु क्रियावत्त्वमस्ति**, आकाशादिषु नास्ति । **अविद्यमानविषयः विद्यमानसंवक्षः** यक्षव्यापकं यथा - सर्वं कार्यं नित्यम् उत्पत्तिधर्मकत्वात् । **सर्वमित्यस्य विषयकाभावः** । **सपश्चस्य प्रध्वंसाभावस्य विद्यमानत्वेऽपि हेतोहत्पत्तिधर्मकत्वस्थाप्रवृत्तिः** । **सर्वमिति पक्षीकृते घटपटादी उत्पत्तिधर्मकत्वं व्याप्तमस्ति** । **अविद्यमानविषयः विद्यमानसंवक्षः** **पश्चैकदेशचृत्तिर्यथा - सर्वं कार्यं नित्यं साक्षयत्वात्** । **पूर्ववत् सर्वमित्यस्य विषयकाभावः** **सपश्चे प्रध्वंसाभावे सत्यपि साक्षयत्वाभावः**

आत्मा, काल आदि विषय है, इन दोनों में आकाश का विशेष गुण होना यह हेतु नहीं है । इसी प्रकार सपक्ष में शामिल प्रागभाव अनित्य होता है उस में तथा विषय में शामिल प्रध्वंसा एवं नित्य होता है उस में भी यह हेतु नहीं है । (पक्ष के रूप में) स्वीकृत शब्द में सर्वत्र आकाश का विशेष गुण होना यह हेतु व्याप्त है । सपक्ष और विषय के होते हुए पक्ष के एक भाग में रहनेवाले अनश्वयवसित का उदाहरण - सब द्रष्टव्य अनित्य हैं क्यों कि वे क्रिया से युक्त हैं । यही प्रागभाव यह सपक्ष है (क्यों कि वह अनित्य है) तथा द्रष्टव्यंसाभाव यह विषय है (क्यों कि वह नित्य है) किन्तु इन दोनों में क्रियायुक्त होना यह हेतु नहीं पाया जाता । यहाँ पक्ष में शामिल घट, पट आदि में क्रियायुक्त होना यह हेतु है परन्तु आकाश आदि में (वे द्रष्टव्य हैं तथापि) यह हेतु नहीं पाया जाता । जिस में विषय न हो, सपक्ष हो तथा जो पक्ष में व्यापक हो ऐसे अनश्वयवसित का उदाहरण - सब कार्यं नित्य हैं क्यों कि उत्पत्ति यह उन का धर्म है । यहाँ सब कार्यं यह पक्ष है अतः इस में विषय नहीं हो सकता । यहाँ प्रध्वंसाभाव यह सपक्ष है (क्यों कि वह नित्य है) तथापि उस में उत्पत्ति होना यह हेतु नहीं पाया जाता । पक्ष में शामिल सब कार्यों में - घट, पट आदि में उत्पत्ति होना यह हेतु व्याप्त है । जिस में विषय न हो, सपक्ष हो तथा जो पक्ष के एक भाग में विद्यमान हो ऐसे अनश्वयवसित का उदाहरण - सब कार्यं नित्य है क्यों कि वे अवयवसहित हैं । यहाँ पूर्वोक्त उदाहरण के समान ही सब कार्यं यह पक्ष

कार्यरूपे घटाश्री साध्यवत्वं विद्यते, कार्यरूपे प्रधंसाभावे नित्यस्ये
विद्यमानेऽपि साध्यवत्वं नास्ति ॥

[३८. कालात्ययापदिष्टः]

कालात्ययापदिष्टस्तु कथ्यते । पक्षे साध्यस्य बाधा प्रत्यक्षानुमाना-
गमलोकस्ववचनैः । तत्र प्रत्यक्षबाधा - अग्निः अनुष्णः द्रव्यत्वात् अलश्च ।
अनुमानबाधा - अनित्यः परमाणुः मूर्तत्वात् घटवत् इत्युपजीवकानुमाने
नित्यः परमाणुः अविभागित्वात् आत्मवत् इत्युपजीव्यानुमानेन बाध्यते ।
यत्रानुमानयोः उपजीव्योपजीवकभावे सति विरोधः तत्रोपजीव्यानुमानेन

होने से विपक्ष का अस्तित्वही नहीं हो सकता । सप्तम प्रधंसाभाव है किन्तु उस
में अवयवसहित होना यह हेतु नहीं है । पक्ष में शामिल कार्यों में घट, पट
आदि में अवयवसहित होना यह हेतु है किन्तु प्रधंसाभाव इस कार्य में नित्य
होने पर भी अवयवसहित होना यह हेतु नहीं पाया जाता ।

कालात्ययापदिष्ट हेत्वाभास

अब कालात्ययापदिष्ट हेत्वाभास का वर्णन करते हैं । (जिस का साध्य
बाधित हो उस हेतु को कालात्ययापदिष्ट हेत्वाभास कहते हैं यह ऊपर बता
तुके हैं) । पक्ष में साध्य के बाधित होने के पांच प्रकार हैं - प्रत्यक्ष से,
अनुमान से, आगम से, लोकरीति से तथा अपने ही कथन से । प्रत्यक्ष से
बाधित साध्य का उदाहरण है - अग्नि उष्ण नहीं है क्यों कि वह द्रव्य है
जैसे जल (यहाँ अग्नि का उष्ण न होना यह साध्य प्रत्यक्ष से बाधित है) ।
अनुमान से बाधित साध्य का उदाहरण - परमाणु अनित्य है क्यों कि वह
मूर्त है जैसे घट । यहाँ परमाणु के अनित्य होने का अनुमान उपजीवक है ।
परमाणु नित्य है क्यों कि वह अविभागी है जैसे आत्मा - इस उपजीव्य
अनुमान से उपर्युक्त उपजीवक अनुमान बाधित होता है । जहाँ दो अनुमानों
में एक उपजीवक तथा दूसरा उपजीव्य हो तथा उन में विरोध हो वहाँ
उपजीव्य अनुमान के द्वारा उपजीवक अनुमान बाधित होता है । जहाँ
(अनुमानों में उपजीव्य-उपजीवक संबंध न होते हुए) केवल विरोध हो वहाँ
उसे प्रकरणसमा जाति समझना चाहिए । विरोधी अनुमान से आक्षेप उप-
स्थित करना यह प्रकरणसमा जाति है (किन्तु यह जाति अर्थात् दूषण

उपजीवकानुमानं वाच्यते । यत्र केवलं विरोधः सत्र प्रत्यनुमानेन प्रत्यक्ष-
स्थानं प्रकरणसमा जातिरेव न तु वाच्या । यत्र केवलमुपजीडयोपजीवक-
भावः तत्रोपजीव्यानुमानं साधकमेव न तु वाधकम् । आगमवाच्या -
ग्रेत्यासुखग्रदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वात् अधर्मत्वत् । लोकवाच्या - नरविष्णा
शुचिः नरशरीरजल्वात् सततश्चीरवदिति । सत्त्वत्त्ववाच्या -माता मे वन्ध्या
पुरुषसंयोगेऽपि अग्रभूत्वात् प्रसिद्धवन्ध्याथदिति ॥

[३९. प्रकरणसमः]

प्रकरणसमो यथा - अनित्यः शब्दः पक्षसप्तश्चोरन्यतरत्वात्
सप्तश्वदित्युक्ते नित्यः शब्दः पक्षसप्तश्चयोरन्यतरत्वात् सप्तश्वदिति ।
एतद् अनैकान्तिकाव्यार्थान्तरम् । विपक्षेऽपि बृत्तिमस्त्रात् उभयत्र व्यभि-
है) वह वास्तविक वाच्या नहीं है । यहाँ दो अनुमानों में (विरोध न होते हुए)
एक उपजीव्य तथा दूसरा उपजीवक हो वहाँ उपजीव अनुमान (उपजीवक
अनुमान का) साधक ही होता है, साधक नहीं होता । आगम से वाचित
साध्य का उदाहरण -धर्म मृत्यु के बाद दुःख देता है क्यों कि वह पुरुष पर
अत्रिन है, जैसे अर्थम् (यहाँ मृत्यु के बाद धर्म दुःख देता है यह साध्य
आगम से वाचित है) । लोकरीति से वाचित साध्य का उदाहरण - पुरुष
का मल पवित्र है क्यों कि वह पुरुष के शरीर से निकलता है जैसे माता का
दूध (यहाँ मल का पवित्र होना यह साध्य लोकरीति से वाचित है) । अपने
ही वाक्य से वाचित साध्य का उदाहरण - मेरी माता बन्ध्या है क्यों कि
पुरुष के संयोग के बाद भी उसे गर्भ नहीं रहता, जैसे अन्य बन्ध्याएं (यहाँ
मेरी माता इस कथन से ही बन्ध्या होना यह साध्य वाचित है) ।

प्रकरणसम हेत्वाभास

इस का उदाहरण निम्नालिखित है - शब्द अनित्य है क्यों कि वह
पक्ष या सप्तश्च में से एक है । यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि शब्द
अनित्य है क्यों कि वह पक्ष या सप्तश्च में से एक है (तात्पर्य, यह हेतु पक्ष के
साध्य के लिए और उस के विहृत साध्य के लिए - दोनों प्रकरणों के लिए
समान है) । यह हेत्वाभास अनैकान्तिक से भिन्न नहीं है क्यों कि यह

चारित्वाच्च । किं च, पशुधर्मत्वं सपक्षे सत्यं विपक्षात् व्याचुतिः त्रैलक्ष्मयम् ।
तत्र हेतोः विपक्षात् व्याचुतिः निश्चिता चेत् विपक्षे त्रैलक्ष्याभावो निश्चित
यत्र । तदव्यावृत्तिनिश्चये स्वपक्षे त्रैलक्ष्याभावो निश्चितः स्वादिति न
कस्यापि हेतोः क्षयत्र त्रैलक्ष्यं जाप्तातीति । अथ पक्षसक्षयोरन्यतरत्वादिति
पक्षत्वादिति अस्य हेतोः उभयत्र त्रैलक्ष्यं जाप्तातीति इति चेत्र । तदस्वंभू
षात् । तथाहि । पक्षसपक्षयोरन्यतरत्वादिति पक्षत्वादित्यभिप्रायः
सपक्षत्वादिति च । आये पक्षत्वादित्यस्य हेतोः सपक्षे अभावात् सपक्षे
सरथाभावेन त्रैलक्ष्याभावः । द्वितीये सपक्षत्वादित्यस्य हेतोः पक्षे असरवेन
पक्षधर्मत्वाभावात् त्रैलक्ष्याभावः । तथापि श्रोतृणां बुद्ध्यरस्थं पृ५५
निरूपणं प्रकरणसमस्य ॥

विपक्ष में भी विद्यमान होता है तथा (सपक्ष और विपक्ष) दोनों में अनिय-
मित रूप से पाया जाता है (— व्यभिचारी है) । पक्ष का धर्म होना, सपक्ष
में होना तथा विपक्ष में न होना ये हेतु के तीन रूप (आवश्यक गुण) हैं ।
यदि विपक्ष में हेतु नहीं है यह निश्चित हो तो उस हेतु के विपक्ष में ये तीन
रूप नहीं होंगे यह निश्चित है । तथा यदि विपक्ष में हेतु का अभाव नहीं है
(विपक्ष में भी हेतु पाया जाता है) यह निश्चित हो तो स्वपक्ष में इन तीन रूपों
का अभाव निश्चित होता है । अतः किसी भी हेतु के तीनों रूप (पक्ष और
विपक्ष) दोनों में घटित नहीं होते । उपर्युक्त उदाहरण में पक्ष और सपक्ष में
से एक होना इस हेतु का लात्यर्थ पक्ष होना यह हो लो दोनों पक्षों में हेतु के
तीनों रूप संभव हैं यह कथन भी उचित नहीं कर्ये कि यह असंभव है ।
पक्ष और सपक्ष में से एक होना इस पक्ष का लात्यर्थ पक्ष होना
यह होगा अथवा सपक्ष होना यह होगा । पहले पक्ष में
पक्ष होना यह हेतु सपक्ष में नहीं हो सकता अतः उस के तीन
रूपों में सपक्ष में होना इस एक रूप की कमी होगी । इसी प्रकार सपक्ष
होना यह हेतु मानें तो कह पक्ष में न होने से पक्षधर्म होना इस रूप का
अभाव होगा और इस प्रकार भी तीन रूप नहीं हो सकेंगे । (इस प्रकार
प्रकरणसम का अनैकान्तिक से भिन्न अस्तित्व नहीं है) तथापि श्रोताओं के
आन के लिए यहाँ प्रकरणसम हेतुभास का अलग से वर्णन किया है ।

[४०. अन्वयदृष्टान्ताभासः]

दृष्टान्ताभासा अन्वये साध्यव्याघनोभयविकला आश्रयहीनाप्रदर्शित-
आत्मिविपरीतव्याख्यात्यः । अतिरेके साध्यव्याघनोभयव्यावृत्ता आश्रय-
हीनाप्रदर्शितव्यात्मिविपरीतव्याख्यात्यः । उदाहरणम् - नित्यः शब्दः
अमूर्तत्वात् यद् यद्मूर्त तत् तत्त्वात्मिविपरीतव्याख्यात्यः । शब्दः यह अनुकूले साध्यव्याघनोभयविकलः । अतिरेके साध्यव्याघनोभयविकलः । यथा खण्डप्रगत्युके आश्रयहीनः । आकाशविद्युके अप्रदर्शित-
व्याप्तिः । यजित्यं तद्मूर्त यथा व्योम इत्युके विपरीतव्याप्तिः ॥

अन्वयदृष्टान्ताभास

अन्वय-दृष्टान्त के आभास छह प्रकार के हैं - साध्यविकल, साधन-
विकल, उभयविकल, आश्रयहीन, अप्रदर्शितव्याप्ति तथा विपरीतव्याप्ति ।
व्यतिरेक-दृष्टान्त के आभास भी छह प्रकार के हैं - साध्यव्यावृत्त, साधना-
व्यावृत्त, उभयव्यावृत्त, आश्रयहीन, अप्रदर्शितव्याप्ति, तथा विपरीतव्याप्ति ।
अन्वयदृष्टान्ताभासों के उदाहरण इस प्रकार हैं - शब्द नित्य है क्यों कि
वह अमूर्त है, जो अमूर्त होना है वह नित्य होता है, जैसे इन्द्रियों से प्राप्त
सुख है इस अनुमान में दृष्टान्त साध्यविकल है (नित्य होना यह साध्य
इन्द्रियसुख इस दृष्टान्त में नहीं है) इसी अनुमान में परमाणु का उदाहरण
साधनविकल होगा (अमूर्त होना यह साधन परमाणु इस दृष्टान्त में नहीं
है) । घट का दृष्टान्त उभयविकल होगा (इस में नित्य होना यह साध्य
और अमूर्त होना यह साधन दोनों नहीं है) । आकाशपुण्य का दृष्टान्त
आश्रयहीन होगा (आकाशपुण्य का अस्तित्व ही नहीं है अतः उस में साध्य
या साधन नहीं हो सकते) । जो अमूर्त है वह नित्य होता है इस व्याप्ति
को न बतलाते हुए केवल) जैसे आकाश है वह कहा तो अप्रदर्शितव्याप्ति
दृष्टान्ताभास होगा । जो नित्य है वह अमूर्त होता है जैसे आकाश है ऐसा
कहा हो तो वह विपरीतव्याप्ति दृष्टान्ताभास होगा (यहाँ जो अमूर्त होता है
वह नित्य होता है ऐसी व्याप्ति बतलानी चाहिए क्यों कि नित्यत्व साध्य है,
जो नित्य होता है वह अमूर्त होता है यह इस के उलटी व्याप्ति है अतः यह
विपरीतव्याप्ति दृष्टान्ताभास है) ।

[४१. व्यतिरेकदृष्टान्ताभासः]

व्यतिरेके यत् न नित्यं तत् नामूर्ति यथा परमाणुरित्युके साध्याव्यावृत्तः। यथेन्द्रियसुखम् इत्युके साधनाव्यावृत्तः। यथा व्योमेत्युके उभयाव्यावृत्तः। यथा खण्डप्रमित्युके आश्रयहीनः। पटष्ठू इत्युके अग्रदर्शितव्याप्तिः। यज्ञामूर्ति तत् न नित्यं यथा घट इत्युके विपरीतपरिचकः॥

[४२. दृष्टान्ताभासानां व्याप्तिरैकलयम्]

तत्राभ्यये साध्यविकला व्यतिरेके साधनाव्यावृत्तात् व्याप्तिरहितानाथे। सेषां साध्यरहिते धर्मिणि साधनप्रदर्शकत्वाभावात्। तथा हि।

व्यतिरेक दृष्टान्ताभास

व्यतिरेक दृष्टान्ताभासों के उदाहरण इस प्रकार हैं—जो नित्य नहीं होता, वह अमूर्ति नहीं होता जैसे परमाणु इस अनुमान में दृष्टान्त साध्याव्यावृत्त है (नित्य होना इस साध्य से परमाणु यह दृष्टान्त व्यावृत्त नहीं है क्यों कि परमाणु नित्य होता है)। इसी अनुमान में इन्द्रियसुख का उदाहरण साधनाव्यावृत्त होगा (अमूर्ति होना इस साधन से इन्द्रियसुख व्यावृत्त नहीं है, सुख अमूर्ति ही होता है)। आकाश का दृष्टान्त उभाव्यावृत्त होगा (नित्य होना यह साध्य तथा अमूर्ति होना यह साधन दोनों से आकाश यह दृष्टान्त व्यावृत्त नहीं है, वह नित्य भी है और अमूर्ति भी)। आकाशपुण्य का दृष्टान्त आश्रयहीन होगा (इस का अस्तित्व ही न होने से साध्य या साधन का संबंध भी नहीं हो सकता)। बख्त का दृष्टान्त अग्रदर्शितव्याप्तिक होगा (इस में जो नित्य नहीं वह अमूर्ति नहीं इस व्याप्ति को न बतला कर केवल 'जैसे बख्त' इतना कहा गया है—व्याप्ति प्रदर्शित नहीं की गई है)। जो अमूर्ति नहीं होता वह नित्य नहीं होता जैसे घट—यह दृष्टान्त विपरीतव्याप्तिक होगा (जो व्याप्ति का वाक्य होना चाहिए उसके ठीक उल्लंग वाक्य यहीं प्रयुक्त किया है)।

दृष्टान्ताभासों में व्याप्ति की विकलता

उपर्युक्त दृष्टान्ताभासों में अन्वय में साध्यविकल दृष्टान्ताभास तथा व्यतिरेक में साधनाव्यावृत्त दृष्टान्ताभास ये दो ही व्याप्ति से रहित होते हैं—

साधनविकलसाध्यावृत्तयोः सपक्षस्त्वात् तत्र कविद्यप्रवृत्तस्थापि धूमा-
देव्यास्त्रिवैकल्याभावात्। सपक्षे सर्वव्याप्रवृत्तस्य विशद्वेत अनश्ववित-
तत्वेनैव वा व्याप्तिवैकल्यनिश्चयो नान्यथा। उभयविकले साध्यावृत्तम्
साधनव्यावृत्तिदर्शनात् व्याप्तिनिश्चयो न तद्वैकल्यम्। उभयव्यावृत्ते
आवृत्याप्तसाधनप्रतिषेः तथापि लघा। आश्रयहीने आवृत्याभावात्
आवृत्यिणोः साध्यसाधनयोरभ्यभावात् व्याप्तिनिश्चयो न तद्वैकल्यम्।
अपौ वचनदोषविति सर्वेऽपि प्रत्यपीदद्व ततो न व्याप्तिवैकल्याद-
बोधहेतु॥

अन्य दृष्टान्ताभास व्याप्ति से रहित नहीं होते। अन्य दृष्टान्ताभासों में धर्मी
साध्य से रहित होता है अतः उस में साधन बताने की संभावना नहीं
होती। इसी की स्पष्ट करते हैं। (अन्यथ में) साधनविकल तथा (चालिके
में) साध्याव्यावृत्त ये दृष्टान्ताभास सपक्ष होते हैं, और सपक्ष में कहीं कहीं
धूम आदि (हेतु) न भी हों तो भी उत्तरे से व्याप्ति का अभाव सिद्ध नहीं
होता। व्याप्ति के अभाव का निश्चय तत्र होता है जब हेतु सपक्ष में कहीं
भी न हो अवश्य विलङ्घ हो (विपक्ष में ही हो) अथवा अनाध्यवसित हो
(सपक्ष और विपक्ष दोनों में हो)। जो दृष्टान्त उभयविकल है (साधन-
विकल भी है और साध्यविकल भी है) उस में तो व्याप्ति का निश्चय ही
होगा — व्याप्ति का अभाव ज्ञात नहीं होगा — क्यों कि वहाँ साध्य के न
होने पर साधन का न होना ही देखा जाता है। इसी प्रकार उभयव्यावृत्त
(साधनव्यावृत्त होते हुए साध्याव्यावृत्त) दृष्टान्ताभास में भी व्याप्ति का
निश्चय ही होगा क्यों कि वहाँ जहाँ साध्य है वहाँ साधन है इस प्रकार
व्याप्ति ही ज्ञात होगी। आश्रयहीन दृष्टान्ताभास में आवृत्य के ही न होने से
उस में आधित साध्य और साधन दोनों का अभाव ज्ञात होगा, इस तरह
भी व्याप्ति का निश्चय ही होगा, व्याप्ति के अभाव का ज्ञात नहीं होगा।
अप्रदार्शितव्याप्तिक तथा विपरीत व्याप्तिक ये दो दृष्टान्ताभास तो वौक्य के दोष
हैं यह सभी मानते हैं अतः वे व्याप्ति के अभाव का निश्चय नहीं करते यह भी
स्पष्ट है (इन दो दृष्टान्ताभासों में व्याप्ति गलत नहीं होती, केवल उस को
प्रस्तुत न करना या उलटा प्रस्तुत करना यह दोष होता है)।

[४३. तर्कः]

ज्ञानिवलेन परस्यानिष्टायादन्तं तर्कः । स च आत्माश्रय इतरेतरा अथ अत्र काश्रयः ज्ञानवस्था ऋतिप्रसङ्ग इति उप्रकारः । स्वस्य स्वयमेवो-
भ्यादकं इत्युक्तं उत्पत्तिपक्षे आत्माश्रयः । माया कुतः उत्पद्यते स्वत
पवेत्यादि । इतरथं स्वयमेव ज्ञापकं इत्युक्तं ऋतिपक्षे आत्माश्रयः । ब्रह्म
केवल ज्ञायते स्वेत्येत्यादि । द्वयोः परस्परमुत्पादकत्वे उत्पत्तिपक्षे इतरे-
तराश्रयः । माया कुत उत्पद्यते अविद्यातः, अविद्या कुत उत्पद्यते मायातः
इत्यादि । द्वयोः परस्परं ज्ञापकत्वे ऋतिपक्षे इतरेतराश्रयः । आत्मा केवल
ज्ञायते ज्ञानेन, ज्ञानं केवल ज्ञायते आत्मवेत्यादि । ज्यात्यष्टुन्तानां परस्पर-
मुत्पादकत्वे उत्पत्तिपक्षे अत्रकाश्रयः । जीवः कस्माज्ञायते अविद्यातः,

तर्क

ज्ञानि के बल से प्रतिपक्षा के लिए अनिष्ट बात को सिद्ध करना तर्क कहलाता है । इस के पांच प्रकार हैं — आत्माश्रय, इतरेतराश्रय, चक्रकाश्रय, अनवस्था तथा अतिप्रसंग । (कोई पदार्थ) अपनी उत्पत्ति स्वयं करता है ऐसा कहने पर उत्पत्ति की दृष्टि से आत्माश्रय होता है, जैसे माया कहीं से उत्पन्न होती है (यह पूछने पर कहना कि) स्वयं ही उत्पन्न होती है । अपना ज्ञान स्वयं करता है यह कहने पर ज्ञान की दृष्टि से आत्माश्रय होता है, जैसे — ब्रह्म किस से जाना जाता है (यह पूछने पर कहना कि) स्वयं ही जाना जाता है । दो पदार्थ एक दूसरे के उत्पादक हैं ऐसा कहने पर उत्पत्ति की दृष्टि से इतरेतराश्रय होता है, जैसे — माया कहीं से उत्पन्न होती है (यह पूछने पर कहना कि) अविद्या से (उत्पन्न होती है) तथा अविद्या कहीं से उत्पन्न होती है (यह पूछने पर कहना कि) माया से (उत्पन्न होती है) । दो पदार्थ एक दूसरे का ज्ञान करते हैं यह कहने पर ज्ञान की दृष्टि से इतरेतराश्रय होता है, जैसे — आत्मा का ज्ञान किस से होता है (यह पूछने पर कहना कि) ज्ञान से (आत्मा जन्मा जाता है) तथा ज्ञान किस से जाना जाता है (यह पूछने पर कहना कि) आत्मा द्वारा (ज्ञान जाना जाता है) । तीव्र से ले कर आठ तक वस्तुएँ एक दूसरे की उत्पादक हैं ऐसा कहने पर उत्पत्ति की दृष्टि से अत्रकाश्रय होता है, जैसे — जीव किस से उत्पन्न

अविद्या कुनो जायते मायात्, माया कस्मात्जायते संस्कारात्, संस्कारः कस्मात्जायते जीवात्, जीवः कस्मात्जायते इत्यादि । इयाद्युक्तानां परस्परं ज्ञापकत्वे शुभिष्ठेष्व चक्रकाश्रयः । यद्वकः केन ज्ञायते धूमेन, धूमः केन ज्ञायते मेघेन, मेघः केन ज्ञायते अशनिना, अशनिः केन ज्ञायते पावकेत्यादि । उत्पादकज्ञापकप्रशश्वः अपरिविष्टा अनवस्था । सास्यं कस्मात्जायते वीजात्, वीजः कस्मात्जायते प्राकृतवस्थात्, तदपि कुतः प्राकृतवीजात् इत्यादि उत्पत्तिष्ठेष्व अनवस्था । ज्ञानं केन ज्ञायते अनुव्यवसायेन, सोऽपि केन ज्ञायते अपरानुव्यवसायेन, सोऽप्यपरेणेति ज्ञाति-

होता है (यह पूछने पर कहना कि) अविद्या से, अविद्या किस से उत्पन्न होती है (यह पूछने पर कहना कि) माया से, माया किस से उत्पन्न होती है (यह पूछने पर कहना कि) संस्कार से, संस्कार किस से उत्पन्न होता है (यह पूछने पर कहना कि) जीव से, फिर जीव किस से उत्पन्न होता है (तो उत्तर वही होगा — अविद्या से) । तीन से ले कर आठ तक बहुतुएँ एक दूसरे का ज्ञान कराती हैं ऐसा कहने पर ज्ञान की दृष्टि से चक्रकाश्रय होता है, जैसे — अग्नि कैसे जाना जाता है (तो उत्तर है) धुंए से, धुंआ कैसे जाना जाता है (तो उत्तर है) बादल से, बादल कैसे जाना जाता है (तो उत्तर है) विजली से, विजली कैसे जानी जाती है (तो फिर उत्तर होगा) अग्नि से । उत्पादक अथवा ज्ञान कराने वाले के बारे में प्रश्न सुनाय ही न होना यह अनवस्था होती है, जैसे — फसल कहाँ से उत्पन्न होती है (तो उत्तर है) बीज से, बीज कहाँ से उत्पन्न होता है (तो उत्तर है) उस के पहले की फसल से, वह (फसल) कहाँ से उत्पन्न हुई थी (तो उत्तर होगा) उस के पहले के बीज से — इस प्रकार उत्तरिं की दृष्टि से अनवस्था होती है । ज्ञान कैसे जाना जाता है (तो उत्तर है) अनुव्यवसाय से (ज्ञान को जाननेवाले ज्ञान से), वह (अनुव्यवसाय) कैसे जाना जाता है (तो उत्तर है) दूसरे अनुव्यवसाय से (ज्ञान को जाननेवाले ज्ञान को जाननेवाले ज्ञान से) वह (दूसरा अनुव्यवसाय) भी तीसरे (अनुव्यवसाय) से (जाना जाता है) इस प्रकार ज्ञान की दृष्टि से अनवस्था होती है । जो व्याप्ति और व्यापक प्रसिद्ध हैं उन में व्याप्ति का स्वीकार करने पर व्यापक का

पक्षे अनवस्था । प्रसिद्धव्याख्यवद्यत्तिक्योः मध्ये व्याप्ताङ्गीकारे व्यापका-
ङ्गीकारप्रसञ्जनमतिप्रसंगः । मायावादिभिः प्रह्लादवर्णस्य भान्तिविषयस्य च
प्रमातुरवेदत्वाङ्गीकारे प्रह्लादवर्णमसत् प्रमातुरवेदत्वाद् रज्जुसर्पवत्,
रज्जुसर्पादि सदृशं प्रमातुरवेदत्वाद् प्रह्लादवर्णविन्द्यादि ॥

[४४. तर्कदोषः]

मूलशैथिल्ये मिथोविरोधः इष्टापादनं विपर्ययेऽपर्यवसानमिति तर्क-
दोषाभ्यत्वाद् । तत्र तर्कस्य मूलभूतव्याप्तेऽर्थमित्यादे मूलशैथिल्यम् ।
अनिष्टापादकव्याप्तेः आपाद्यानिष्टस्य च विरोधो मिथोविरोधः । आपाद्या-
निष्टव्यम् परस्येष्टु इष्टापादनम् । व्याप्त्या परस्यानिष्टमापाद्य तद्-
विपर्यये पर्यवसानाकरणं विपर्ययेऽपर्यवसानम् ॥

भी स्वीकार करना पड़ेगा यह कथन अतिप्रसंग होता है, जैसे —
मायावादी यह स्वीकार करते हैं कि ब्रह्म का स्वरूप प्रमाता द्वारा जाना नहीं जा
सकता तथा भ्रम का विश्व भी प्रमाता द्वारा जाना नहीं जा सकता, इस पर
यह कहना कि ब्रह्म का स्वरूप प्रमाता द्वारा नहीं जाना जाता अतः वह रस्सी
में प्रतीत होनेवाले सर्प के समान असत हैं, अथवा रस्सी में प्रतीत होनेवाले
सर्प आदि सत हैं क्यों कि वे भी ब्रह्म के स्वरूप के समान ही प्रमाता द्वारा
जाने नहीं जाते (यह अतिप्रसंग कहलाता है) ।

तर्क के दोष

तर्क के चार दोष होते हैं — मूलशैथिल्य, मिथः विरोध, इष्टापादन
तथा विपर्यय में अपर्यवसान । तर्क की मूलभूत व्याप्ति गलत होना यह मूल
में शिथिलता नाम का पहला दोष है । (प्रतिपक्षी के लिए) अनिष्ट वात
को सिद्ध करनेवाली व्याप्ति में तथा (उस व्याप्ति से) सिद्ध होनेवाली अनिष्ट
वात में (परस्पर) विरोध होना यह मिथः विरोध नाम का दूसरा दोष है ।
सिद्ध किया जानेवाला अनिष्ट गुण यदि प्रतिपक्षी को इष्ट ही हो तो वह
इष्टापादन नाम का तीसरा दोष होता है । व्याप्ति के द्वारा प्रतिपक्षी के लिए
अनिष्ट वात को बतला कर किर उस की विरुद्ध वात को पूरा न करना यह
विपर्यय में अपर्यवसान नाम का चौथा दोष होता है ।

[४५. छलम्]

साधनाद् दूषणाद् यस्मात् न स्यात् पक्षस्य निश्चयः ।
 तथोरत्यतरतया स्तौ तदभासः प्रकीर्त्यस्ते ॥ ५ ॥
 छलाद्यरतदामासः तदविज्ञानाद् अते न च ।
 वर्जनीद्भावले सैपां रथवाक्यपरवाक्ययोः ॥ ६ ॥
 ततस्तेऽपि निरायस्ते वाटासां प्रतिबुद्धये ।
 आपायाथन्तरं वाक्यविद्यातः छलमुच्यते ॥ ७ ॥
 तच्च वाक्यछलं सामान्यहलमुपचारछलमिति त्रिविधम् ॥

[४६. वाक्यछलम्]

अनेकवाचके शब्दे प्रयुषते क्षजुवादिना ।

क्षजुवादिर रूपाद्यपरव्य प्रतिबैधी हे वाक्यछलम् ॥ ८ ॥

उदाहरणम्—आङ्गोऽयं नवकार्यलाभात् इति समझसोऽवधीत् । तत्र
छलवादी प्रत्याख्यत कुतोऽस्य नव कार्यला इति । प्रस्त्रयक्षवलसव्यनिवृत्य-

छल

जिस साधन से व दूषण से दो पक्षों में एक का निश्चय न हो वह
साधनामास व दूषणामास कहलाता है । छल इत्यादि ये साधनामास व
दूषणामास हैं, उनको जाने विना अपने वाक्यों से उन्हें दूर रखना और
प्रतिबादी के वाक्यों में उन्हें पहचानना संभव नहीं है । वहाँ अज्ञानी शिक्ष्यों
को समझाने के लिए उन का भी वर्णन करते हैं ।

(वक्ता के इष्ट अर्थ को छोड़ कर) दूसरे ही अर्थ की कल्पना कर
के बात करना यह छल कहलाता है । इस के तीन प्रकार हैं— वाक्यछल,
सामान्यहल तथा उपचारछल ।

वाक्यछल

सरल भावना से युक्त वादी इत्या अनेक अर्थों के वाचक किसी शब्द
का प्रयोग किये जाने पर उस के मन में विद्यक्षित अर्थ (को छोड़ कर उस)
से भिन्न अर्थ (की कल्पना कर के उस) का निवेद फरना वाक्यछल है ।
उदाहरण—किसी समझदार ने कहा कि इस व्यक्ति का कम्बल नव है अतः

वक्तुः अभिप्रेतम् । छलवादी तु जब संख्याविकल्पकम्बलसम्बन्धत्व-
मात्रोप्य असेवयेत् न्यषेष्ठीत् तुनोऽस्य नव कम्बला इति । तसेवं पुच्छेत् ।
अनेकवाचकशब्दादिभं विशेषं कुतो व्यज्ञातीः त्वमिति । न तुतमित् ।
जस्यालैस्यालैश्याद्यकोवे अस्य यद्यद्यस्य एतावत्तुर्याः संभाव्यते ।
तन्मध्ये कन्ममर्थम् अविवक्तीः त्वमिति वक्तारं पुच्छेत् । एत्यात् विषयित्
तजिष्ठाय तमभ्यनुजानीयात् तदुपरि दूषणी वा दूषात् । नो चेदभिप्रता-
परिज्ञानेन नि प्रहः प्रसन्नयते ॥

[४७. सामान्यचलुलम्]

हेतुत्वकारणत्वाभ्यां विकल्पं प्रतिषेधनम् ।

वाक्ये संभाव्यमानायै सामान्य छलमुच्यते ॥२॥

ब्राह्मणश्चतुर्वैदादिः इति समझतः प्रथमीदद्दृ । तज छलवादी प्रत्यक्षा-

यह श्रीशासन प्रतीत होता है । वहाँ छल का प्रयोग करनेवाला आक्षेप करता है कि इस के पास नी कम्बल कहाँ से हो सकते हैं (एकही कम्बल है) । वहाँ पहले बोलनेवाले की मन में नवकम्बलत्व का अर्थ नये कम्बल से युक्त होना यह है । छलवादी ने नौ संख्या से युक्त कम्बलों से युक्त होने की कल्पना कर के और उसे असंभव बनाकर उस का निषेध किया । ऐसे छलवादी को इस प्रकार प्रश्न करे कि अनेक अर्थों के बावजूद इस (नव) शब्द का यह विशिष्ट अर्थ (नो) तुमने कैसे जाना । इस का कोई साधन नहीं है । अतः अनेक अर्थों के बावजूद यह का प्रथोग करने पर इस शब्द के इतने अर्थ हो सकते हैं इन में से तुम्हें कौनसा अर्थ विशिष्ट है ऐसा ब्रह्मा की पुछना चाहिए, फिर द्विमान व्यक्ति उस का निश्चय कर के उसे स्वीकार करे अथवा उस में दूषण बताये । नहीं तो अभिप्रेत अर्थ को न समझने का दोष प्राप्त होता है ।

सामान्य छल

वाक्य में जहाँ संभावना का अर्थ व्यक्त करना हो वहाँ उस में हेतु अथवा कारण होने की कल्पना कर के निषेध करना सामान्य छल कहलाता है । ऐसे-किसी समझदार ने कहा कि ब्राह्मण चार वेदों को जानता है । वहाँ छल का प्रयोग करनेवाला आक्षेप करता है कि ब्राह्मण होना चार वेदों प्र.प्र. ४

तिष्ठिष्टु । ब्राह्मणत्वे चतुर्बेंद्राभिश्चत्वे हेतुर्ज भवति अनधीतेनानेकान्तता
कारणं न भवति अनधीतेऽपि तत्कारणत्वप्रसङ्गादिति । सोऽप्यभिप्रेता-
परिज्ञानेन निगृहीतः स्यादिति । ब्रह्मणे चतुर्बेंद्राभिश्चत्वस्यभावनस्योपत-
त्वात् यथात्र क्षेत्रे प्रत्यक्षं संपनीयत्वं इति ॥

[४८. उपचारच्छलम्]

उपचारेण वक्त्रा यदभिषेयनिरुपणे ।

प्रधानत्वनिषेधे तदुपचारच्छलं भवेत् ॥ १० ॥

वादी गङ्गायां ग्रामः प्रतिबसतीत्यवादीत् । तत्र छलवादी प्रत्यक्षोचत् ॥
गङ्गा नाम जलप्रवाहः, जलप्रवाहे प्रामस्य क्वस्थानासम्भवात् तद-
युक्तमवादीस्थमिति । सोऽप्यभिप्रेतापरिज्ञानेन निगृहीतः स्यात् ॥

को जानने का हेतु नहीं है क्यों कि जो पढ़ा नहीं है उस से इस का अने-
कात है (जो पढ़ा नहीं है वह ब्राह्मण होने पर भी वेदों को नहीं जानता) ;
तथा ब्राह्मण होना चार वेदों को जानके का कारण भी नहीं है, यदि होता
तो जो पढ़ा नहीं है उस के विषय में भी वह वेदों को जानने का कारण
होता । ऐसा छलवादी अभिप्रेत अर्थ को न समझने के दोष से दूषित होता
है क्यों कि इस वाक्य में ब्राह्मण के चार वेदों के जानकार होने की सेभावना
व्यक्त की है और यह इस जगह प्रत्यक्षही देखा जाता है (अतः देवज्ञान की
संभावना के मुख्य अर्थ को छोड़ कर उस के हेतु कथबा कारण की कल्पना
कर निषेध करना व्यर्थ है – छल है) ।

उपचारछल

बहुता द्वारा विषय का वर्णन उपचार से किये जाने पर प्रधान अर्थ के
निषेध पर जोर देना यह उपचारछल कहलाता है । उदाहरणार्थ – वादी के
कहा कि गंगा पर गाँव बसा है । वहाँ छलवादी ने कहा कि गंगा तो जल
का प्रवाह है, जल के प्रवाह पर गाँव नहीं बस सकता अतः आपने अयोध्या
वाल कही । ऐसा छलवादी अभिप्रेत अर्थ को न समझने के दोष से दूषित
होता है क्यों कि वहाँ ‘ देगा पर ’ इस शब्द का प्रयोग उपचार से ‘ मंगल ’

अधिकरणनिरूपणं सामीप्यादिव्याचारिकादोः इति गङ्गाशाखेन समीपस्थोप-
भृतितत्वात् ॥

[४९. जातयः]

उक्ते हेतौ विषेण साध्याणादनवाक्यतः ।

जातिः प्रतिविधिः प्रोक्ता विशातिध्यतुरुचरा ॥ ११ ॥

साधर्म्य—वैधर्म्य—उत्कर्ष—अपकर्ष—बर्ण्य—अवर्ण्य—विकल्प—असिद्धादि—प्राप्ति—अप्राप्ति—प्रसङ्ग—प्रतिदृष्टान्त—अनुत्पत्ति—संशय—प्रकरण—अहेतु—अर्थापत्ति—अविशेष—उपपत्ति—उपलब्धिः—अनुपलब्धिः—नित्य—अनित्य—कार्यसमा जातयः ॥

[५०. साधर्म्यवैधर्म्यसमे]

तत्र स्थापनाहेतौ प्रयुक्ते साधर्म्येण प्रत्यवस्थानं साधर्म्यसमा जातिः । वैधर्म्येण प्रत्यवस्थानं वैधर्म्यसमा जातिः । तथोः उदाहरणम् । अनित्यः शब्दः कुतकत्वात् घटविद्युक्ते जातिवाचाह । घटसाधर्म्यात् के समीप । इस अर्थ में हुआ है । अधिकरण का प्रयोग औपचारिक सामीप्य के अर्थ में होता है ऐसा नियम है ।

जातियाँ

हेतु के कहने के बाद विषेण से समानता बतलानेवाले वाक्य से दिया हुआ उत्तर जानि कहलाता है । जातियाँ चौरीस हैं— साधर्म्यसमा, वैधर्म्यसमा, उत्कर्षसमा, अपकर्षसमा बर्ण्यसमा, अवर्ण्यसमा, विकल्पसमा, असिद्धादिसमा, प्राप्तिसमा, अप्राप्तिसमा, प्रसङ्गसमा, प्रतिदृष्टान्तसमा, अनुत्पत्तिसमा, संशयसमा, प्रकरणसमा, अहेतुसमा, अर्थापत्तिसमा, अविशेषसमा, उपपत्तिसमा, उपलब्धिसमा, अनुपलब्धिसमा, नित्यसमा, अनित्यसमा तथा कार्यसमा (इन का अब क्रमशः वर्णन करेंगे) ।

साधर्म्यसमा तथा वैधर्म्यसमा जाति

(किसी साध्य को) स्थापित करनेवाले हेतु का प्रयोग करने पर उस की समानता से कोई आक्षेप उपस्थित करना यह साधर्म्यसमा जाति होती है तथा उस से भिजता बतला कर कोई आक्षेप उपस्थित करना यह वैधर्म्यसमा जाति है । इन के उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं । शब्द अनित्य है क्यों कि

कृतकत्वात् शब्दे अनित्यत्वे प्रसाध्यते चेत् आकाशसाध्यर्थात् अमूर्तत्वात् नित्यत्वमपि प्रसाध्यते । इति प्रत्यवस्थामें साध्यर्थसमा जातिः । आकाशं वैधर्म्यात् कृतकत्वात् शब्दे अविनदत्वे प्रसाध्यते चेत् घटवैधर्म्यात् अमूर्त-
त्वात् नित्यत्वमपि प्रसाध्यत इति प्रत्यवस्थामें वैधर्म्यसमा जातिः ॥

[५१. उत्कर्षपक्षसमे]

द्वयान्ते द्वयानित्यर्थस्य द्वार्णान्ते योजनमुकर्षसमा जातिः । तदनिष्टुर्धर्मनिवृत्ती पक्षस्य साध्यर्थमनिवृत्तिः अपकर्षसमा जातिः । तथोदाहरणम् । अनित्यः शब्दः कृतकत्वात् घटवदित्युक्ते घटे तावद-

वह कृतक है जैसे घट, इस अनुमान के प्रयोग करनेपर जातिवादी कहता है—
घट के समान कृतक होने से शब्द को अनित्य सिद्ध किया जाय तो आकाश
के समान अमूर्त होने से शब्द नित्य भी सिद्ध किया जा सकता है । इस प्रकार
के आक्षेप को साधर्म्यसमा जाति कहते हैं । यदि आकाश से भिन्न अर्थात्
कृतक होने से शब्द को अनित्य सिद्ध किया जाय तो घट से भिन्न अर्थात्
अमूर्त होने से शब्द को नित्य भी सिद्ध किया जा सकता है । ऐसे आक्षेप
को वैधर्म्यसमा जाति कहते हैं । (ये दोनों आक्षेप जाति अर्थात् द्वृठे दूषण
हैं—वास्तविक दूषण नहीं है क्यों कि इस में अनुमान की मूलभूत व्याप्ति—जो
कृतक होता है वह अनित्य होता है—को गलत सिद्ध नहीं किया है, केवल
विरोधी उदाहरण द्वृढ़ने की कोशिश की गई है, इस में शब्द को अमूर्त
कहा है वह भी ठीक नहीं है) ।

उत्कर्षसमा तथा अपकर्षसमा जाति

द्वार्णा में कोई अनिष्ट धर्म (साध्य के प्रतिकूल गुण) देखा गया हो
तो उसे दाष्ठन्त में (साध्य में) जोड़ देना यह उत्कर्षसमा जाति होती है ।
द्वार्णा से अनिष्ट धर्म के हठाने पर पक्ष से साध्य गुणधर्म हटेगा ऐसा कहना
अपकर्षसमा जाति होती है । इन दोनों के उदाहरण इस प्रकार है । शब्द
अनित्य है क्यों कि वह कृतक है जैसे घट इस अनुमान के प्रत्यक्षुत करने पर
यह कहना कि घट में अनित्यता के साथ अश्रावणता (सुना न जाना) की
व्याप्ति है ऐसा देखा गया है, यदि घट का अनित्यत्व यह व्याप्ति शब्द में
स्वीकार किया जाता है तो उसका व्यापक अश्रावणत्व भी स्वीकार किया जाना

नित्यमध्यावणत्वेन व्याप्तं हृष्टं तदनित्यत्वं व्याप्तं शब्देऽङ्गीक्रियते तर्हि
तद्व्यापकमध्यावणत्वमप्यङ्गीक्रियेत् इत्युक्ते उत्कर्षसमा जातिः । शब्दे
व्यापकमध्यावणत्वं नेष्ठते चेत् व्याप्तमनित्यत्वमपि नेष्ठव्यमित्युक्ते अप-
कर्षसमा जातिः । अत्राव्यावणत्वमुपाधिगति शातव्यम् । साधनाव्यापकः
साध्यव्यापकः उपाधिगति तस्य लक्षणम् ॥

[५२. वण्डीवर्णसमे]

साध्यस्थ यथा हेतुसाध्यत्वं तथा दृष्टान्तस्यापि हेतुसाध्यत्वेन
अधित्यमित्युक्ते वर्णसमा जातिः । दृष्टान्तवत् साध्यस्वाप्यहेतुसाध्यत्वं
स्यादित्युक्ते अवर्णसमा जातिः ॥

चात्रिएः—यह उत्कर्षसमा जाति है । इसी अनुमान में व्यापक अश्रावणत्वं शब्द
में स्वीकार नहीं किया जा सकता (क्यों कि शब्द श्रावण है—मुना आता है)
ली उस का व्याप्त अनित्यत्व भी शब्द में मनो मानना चाहिए यह कहना
अपकर्षसमा जाति है । यहाँ अश्रावणत्व को उपाधि भमज्जना चाहिए । जो
साध्य में व्यापक हो किन्तु साधन में व्यापक न हो वह उपाधि है ऐसा उस
का अक्षण है । (उत्कर्षसमा तथा अपकर्षसमा थे जानियों अर्थात् छूठे दृष्ण
है क्यों कि इन में प्रस्तुत अनुमान की मूलभूत व्याप्ति को वो कृतक होता
है वह अनित्य होता है इस कथन को छोड़ कर दृष्टान्त के अश्रावणत्व इस
गुण पर जार दिया गया है तथा जो अश्रावण होता है वह अनित्य होता है
वह मलत व्याप्ति बनाई गई है । यह व्याप्ति ही मलत होने से उस पर
आधारित आक्षेप भी छूठे हैं) ।

वर्णसमा तथा अवर्णसमा जाति

जिस प्रकार साध्य है उसे सिद्ध किया जाना है उसी प्रकार दृष्टान्तं
भी हेतु से सिद्ध किया जाना चाहिए ऐसा कहमा वर्णसमा जाति है । जिस
प्रकार दृष्टान्त हेतु से सिद्ध नहीं किया जाता उसी प्रकार साध्य भी हेतु के
किना ही सिद्ध मानना चाहिए ऐसा कहना अवर्णसमा जाति है ।

[५३. विकल्पसमा]

द्वान्ते धर्मविकल्पप्रश्नेन दाष्टान्तिके धर्मान्तरापादने विकल्प-समा जातिः । अनित्यः शब्दः कृतकत्वात् घटवदित्युक्ते कृतकत्वादिशेषेऽपि किञ्चित्मूर्ते इत्यु यथा घटादि किञ्चिद्मूर्ते इत्यु यथा कृपादि लक्ष्यं कृतकत्वादिशेषेऽपि पटादिकमनित्यं शब्दादि नित्ये भवेदित्यादि विकल्प-समा जातिः ॥

[५४. असिद्धादिसमा]

हेतोः साध्यसद्भावाभावोभयधर्मविकल्पन्या असिद्धविहज्जानैक-नितकतापादनम् असिद्धादिसमा जातिः । अनित्यः शब्दः कृतकत्वात् घटवदित्युक्ते कृतकत्वादर्थं हेतुः साध्यसद्भावधर्मः अभावधर्म उभय-विकल्पसमा जाति

इष्टान्त में गुणधर्मों का विकल्प बताना कर दाष्टान्तिक (द्वान्ति पर आधारित साध्य) में दूसरे गुणधर्म की कल्पना करना विकल्पसमा जाति है । जैसे — शब्द अनित्य है क्यों कि वह कृतक है जैसे घट इस अनुग्रह में यह कहना कि समान रूप से कृतक होने पर भी कुछ प्रस्तुत मूर्त होती है जैसे घट तथा कुछ अमूर्त होती है जैसे रूप, उसी प्रकार समान रूप से कृतक होने पर भी वस्त्र आदि को अनित्य तथा शब्द आदि को नित्य माना जा सकता है (यहाँ इष्टान्त में पूर्तित तथा अमूर्तत्व का विकल्प बताना कर दाष्टान्तिक अर्थात् शब्द में नित्यत्व की कल्पना की गई है अतः यह विकल्पसमा जाति है) ।

असिद्धादिसमा जाति

हेतु साध्य में है अथवा उसका अभाव है अथवा दोनों हैं इस प्रकार विकल्प कर के हेतु को असिद्ध, विरुद्ध अथवा अनैकान्तिक बताना यह असिद्धादिसमा जाति होती है । उदाहरणार्थ—शब्द अनित्य है क्यों कि वह कृतक है जैसे घट इस अनुग्रह के प्रस्तुत करने पर यह कहना कि यहाँ कृतक होना इस हेतु का साध्य में अस्तित्व है, अभाव है, अथवा अस्तित्व तथा अभाव दोनों हैं, इन में पहला पक्ष स्वीकार करें (हेतु का साध्य में सद्भाव मानें) तो अभी साध्य का अस्तित्व ही सिद्ध नहीं है अतः उस के गुणधर्मरूप हेतु को भी असिद्ध

थर्मी वा । आद्ये अवापि साध्यसद्भावस्य असिद्धत्वात् तद्यमेष्य हेतोः असिद्धत्वं द्वितीये साध्यविपरीतस्य अमर्त्यात् विरुद्धत्वम् । तृतीये उभयधर्मत्वादनैकान्तिक इत्यादि ॥

[६५. अन्यतरासिद्धसमा]

एकान्तरानैकान्तादिविकल्पेन हेतोः अन्यतरासिद्धसमाद्यापादनम् अन्यतरासिद्धसमा जातिः । पूर्वज्योगे हतकलाप्यते हेतुः साध्यतः अनेकान्तः चा, आद्ये जैनानामसिद्धः द्वितीये अन्येशमसिद्धय अक्षणिकः क्षणिको चा, दी मरना होगा, यदि दूसरा यस स्थीकार करें (हेतु का साध्य में अभाव मानें) तो वह हेतु विरुद्ध होगा क्यों कि वह साध्य के विरुद्ध गुणवर्म होगा, तथा तीसरे पक्ष में दोनों (सद्भाव और अभाव) मानें तो वह हेतु अनेकान्तिक होगा (क्यों कि साध्य में उस का अस्तित्व या अभाव निश्चिन नहीं है) (यह असिद्धादिसमा जाति है, वास्तविक दूषण सही, क्यों कि इड में साध्य और हेतु की संबंध को गठत दर्श से प्रस्तुत किया है; प्रस्तुत उदाहरण में अनित्य होना यह साध्य है, इस में कृतक होना यह हेतु है या उस का अभाव है आदि प्रश्न निर्धक है, आखेप करनेवाले को यह बताना चाहिए कि जो कृतक होता है वह अनित्य होना है इस व्याप्ति में क्या दोष है, वह न बतला कर दूसरी सल्पनार्थ करने से कोई लाभ नहीं) ।

अन्यतरासिद्धसमा जाति

एकान्त, अनेकान्त आदि विकल्पों से हेतु को किसी एक पक्ष के लिए असिद्ध बताना यह अन्यतरासिद्धसमा जाति होती है । उदाहरणार्थी— पूर्वोक्त अनुमान में (शब्द अनित्य है क्यों कि वह कृतक है इस कथन में) यह कहना कि यही कृतक होना यह हेतु एकान्त से है या अनेकान्तसे है, यदि वह एकान्त से हो तो जैनों के लिए वह असिद्ध होगा (क्यों कि जैन एकान्त को नहीं मानते) तथा यदि वह अनेकान्त से हो तो वाकी सब मतों के लिए असिद्ध होगा (क्यों कि जैनेतर मत अनेकान्त को नहीं मानते) । इसी तरह यह हेतु अक्षणिक है या क्षणिक है, यदि अक्षणिक हो तो बौद्धों के लिए वह असिद्ध होगा (क्यों कि बौद्ध सब बस्तुओं को क्षणिक मानते हैं) तथा यदि क्षणिक हो तो अन्य सब मतों को अमान्य होगा (क्यों कि

आते वौद्वानामसिद्धः, द्वितीये अन्येषामसिद्धः । अश्रव्यात्मको वौद्वात्मको वा, अथे वैद्वतित्तामसिद्धः, द्वितीये अन्येषामसिद्धः । अप्रवृतिपरिणामम् प्रकृतिपरिणामो वा, अथे सांख्यात्मसिद्धः, द्वितीये अन्येषामसिद्धः इत्यादि ॥

[८६. ग्राह्यप्राप्तिसम्मे

हेतोः ग्राह्या प्रत्यवस्थानं प्राप्तिसमा जातिः । अपाप्त्या प्रत्यवस्थानम् अप्राप्तिसमा जातिः । अनित्यः शब्दः कृतकात्वाद् घटवदित्युक्ते अर्थं हेतुः

बैदेतर मत क्षणिकत्वाद् को नहीं मानते । वह हेतु बहारूप है या अश्रव्यारूप है, यदि अश्रव्यारूप दो तो वह वैद्वत्तित्तयों के लिए असिद्ध होगा (क्यों कि वे सभी वैद्वत्तयों का ब्रह्मरूप मानते हैं) तथा ब्रह्मरूप हो तो अन्य सब मतों को अपाप्त होगा । यह हेतु प्रकृति का परिणाम है या नहीं है, यदि यह प्रकृति का परिणाम नहीं है तो सांख्यों के लिए असिद्ध होगा तथा प्रकृति का परिणाम हो तो अन्य सब मतों के लिए असिद्ध होगा । (इस प्रकार का कथन वास्तविक दृष्टि में नहीं कर दृष्टिभाषण अर्थात् जानि है क्यों कि जो कृतक होता है वह अनित्य होता है इस मूलभूत व्यापि में कोई दार्शनिक से प्रकार नहीं होता; कृतक होना एकान्त से या अनेकान्त से है आदि प्रश्नों का प्रस्तुत अनुमान से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

प्राप्तिसमा व अप्राप्तिसमा जाति

हेतु के (भाष्य को) ग्राह होने की आपौत्र उपस्थित करना प्राप्तिसमा जाति है । तथा अग्राह होना की आपौत्र उपस्थित वरना अप्राप्तिसमा जाति है । उद्दाहरणार्थ — शब्द अनित्य है क्या एक वह घट जैसा कृतक है इस अनुमान का प्रयाग करने पर प्रश्न करना कि यहाँ हेतु भाव्य को ग्राह हो कर उसे सिद्ध करता है या ग्राह किये चिना ही सिद्ध करता है; यदि हेतु साध्य को ग्राह हो कर उसे सिद्ध करते तो वह असिद्ध होगा क्यों कि वह अभी साध्य का ग्राह होना है (जो माध्य में नहीं है वह हेतु असिद्ध होता है, यह हेतु अभी साध्य का ग्राह नहीं होआ है अतः असिद्ध है) जैसे साध्य का स्वरूप (साध्य का स्वरूप जिस तरह असिद्ध है उसी तरह यह हेतु भी असिद्ध होगा) क्यों कि वह अभी साध्य को ग्राह नहीं होआ है । अदि हेतु

प्राप्य साध्ये प्रसाधयत्यप्राप्य था। आदेऽसिद्धे हेतुः प्राप्यसाध्यत्वात् साध्यस्वरूपवत्। द्वितीये तौ साध्यसाध्यभावरहितौ मिथोऽप्राप्त्वात् स्वाध्यविनाध्यवदिति ॥

[५७. प्रसंगसमा]

प्रमाणादिप्रश्नानवस्थाने प्रसंगसमा जातिः। अनित्यः शब्दः कृतकृत्वात् घटवत् इत्युपसे शटे कृतकृत्वात् अनित्यत्वं केन सिद्धम्, प्रत्यक्षेण शून्यते ग्रन्थक्षक्षणापि प्राप्त्वार्थं केन, अन्येनेत्युक्ते तस्यापि चेनेत्यादि ॥

साध्य का प्राप्त किये किसी ही विद्व करना है ऐसा बहा जाय तो इस देश में और साध्य में साध्यसाधन का संवेदन नहा हो सकेगा क्यों कि वे दोनों सदृश वर्तन और किन्तु वर्तन के समान परम्परा अप्राप्त (अनेनद्व) हैं। (ये किन्तु वारतविक वर्तन न हो वर दुष्टाभास अर्थात् जाति हैं क्यों कि इन्हें हृषि और साध्य के स्वाभाविक संवेदन को न समझते हैं, अनाधिक प्रथम उपस्थित किये हैं; उन्होंने हृषि को बहा अस्ति होता है इस नियत संवेदन के वर्तन ही हृषि दृढ़ते पर अस्ति का अन्मात्र होता है, यहो हृषि अस्ति का प्रयत्न हो कर सिद्ध करता है या प्राप्त रुप विना सिद्ध करता है आदि इन्हें निरधारक हैं।)

प्रसंगसमा जाति

प्रमाण आदि के प्रदर्शों से अनुभवा प्रसंग उपस्थित करना (एक के बाट दूसरे प्रदर्शन का) उपस्थित करते जाना प्रसंगसमा जाति है। जैसे— इस अनित्य है कि वह कृतव त्रै जैसे धन इस अनुभव के प्रस्तुत करने पर यह पूछता कि वह कृतव त्रै वात अनित्य हैं यह किस प्रमाण से सिद्ध हुआ है; यह एक प्रमाण से सिद्ध है ऐसा उत्तर मिलने पर किस पूछता कि वह प्रपूर्व एमाणभूत कैसे है, इस पर दूसरे प्रमाण का उल्लेख करनेपर पिछे पूछता कि वह प्रमाणभूत कैसे है (इस प्रकार प्रश्नों का परम्परा से मूल विषय को टालना ही प्रसंगसमा जाति है)।

[५८. प्रतिष्ठान्तसमा]

प्रत्युदाहरणेन प्रत्यवस्थानं प्रतिष्ठान्तसमा जातिः । अनित्यः शब्दः
कुतकत्वात् घटवत् इत्युक्ते आकाशवद्मूर्तत्वात् नित्योऽपि स्थानिति ॥

[५९. उत्पत्तिसमा]

कारणविवरणया कार्यानुत्पत्तिप्रत्यवस्थानम् उत्पत्तिसमा जातिः ।
पूर्वप्रयोगे शब्दादिकार्यात्पत्तेः प्राक् तात्त्वादीनां के प्रति करणत्वं, तदा

प्रतिष्ठान्तसमा जाति

प्रतिकूल उदाहरण द्वारा उत्तर देना प्रतिष्ठान्तसमा जाति होती है ।
जैसे— शब्द अनित्य है क्यों कि वह कुतक है जैसे घट इस अनुमान के
विरोध में यह कहना कि शब्द आकाश के समान अनूर्त है अतः वह नित्य
भी सिद्ध होगा (यहाँ जो कुतक होता है वह अनित्य होता है इस व्याप्ति पर
आधारित हेतु के बारे में कुछ न कह कर केवल घट इस दृष्टान्त के प्रतिकूल
आकाश यह दृष्टान्त उपस्थित कर दिया है अतः यह उचित दृष्टिन नहीं है—
प्रतिष्ठान्तसमा जाति है) ।

उत्पत्तिसमा जाति

कारण के विवरण द्वारा यह आपत्ति उपस्थित करना कि कार्य की
उत्पत्ति ही नहीं हो सकती—उत्पत्तिसमा जाति होती है । उदाहरणार्थ— शब्द
अनित्य है क्यों कि वह कुत्रिम है इस पूर्वोक्त अनुमान के विरोध में यह
कहना कि शब्द इत्यादि कार्य के उत्पत्ति होने के पड़ते ताढ़, होठ इत्यादि
किस के साधन होते हैं (—वे शब्द के कारण हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता
क्यों कि) उस समय संबद्ध कार्य का (शब्द का) अभाव है (शब्द अभी
उत्पत्ति नहीं हुआ है) अतः वे ताढ़ आदि किसी के साधन नहीं हैं अतः
वे कारण भी नहीं हैं । कारण ही नहीं है तो शब्द यह कार्य किस से उत्पन्न
होगा (अर्थात् यह उत्पत्ति ही नहीं हो सकता) जिस से उसे अनित्य सिद्ध
किया जा सके (शब्द उत्पत्ति ही नहीं हुआ तो उसे अनित्य सिद्ध करना
भी संभव नहीं है) । (इस जाति का प्रयोग करनेवाला कहता है कि कारण
और कार्य दोनों एक ही समय होने चाहिये—ताढ़ आदि तभी कारण होने
जब शब्द हो—वह कारण और कार्य के क्रमशः होने को अस्तीकार करता

प्रतियोगिकार्यभावात्, न किञ्चित् प्रतीति तत्त्वादीनों कारण मरवाभावः ।
कारणामवे शब्दकर्त्ये कुत उत्पद्येत घोड़वित्यं स्पादिति ॥

[६०. संशयसमा]

भूयोदर्शनात् निश्चितव्यासेः साध्यमवैश्यपीपाधिप्रतिकूलतर्कदिना
पक्षे संदेहापादनं संशयसमा जातिः । उपाधिप्रतिकूलतर्कदिकम् असद्
दूषणं सद्दूषणोष्टपठितत्वात् अन्यतरपश्चनिर्णयाकारकत्वात् व्यातिपश्च-
धर्मवैकल्यानिश्चायकत्वात् पक्षे साध्यसंदेहापादकत्वात् जातित्वात्
साध्यर्थवत् । अथ प्रत्यनुमानप्रतिकूलतर्कयोः को ऐह इति चेद् एकस्मिन्
धर्मिणि साध्यविपरीतप्रसाधकं प्रत्यनुमानम्, तद्वर्मिणि धर्मन्तरे वा
लिङ्गव्यवसादवा प्रतिकूलतर्कः ॥

है; किन्तु कारण और कार्य का अभाव होना प्रत्यक्षसिद्ध है अतः इस आक्षेप
को जाति (दूषणाभास) कहते हैं, वास्तविक दूषण नहीं; जब शब्द प्रत्यक्ष
द्वारा जाना जाता है तब शब्द उत्पन्न नहीं हो सकता यह आक्षेप काल्पनिक
ही होगा, वास्तविक नहीं) ।

संशयसमा जाति

बारबार देखने से जिस की व्याति निश्चित हो चुकी है उस पक्ष में
भी समानता, भिन्नता, उपाधि, प्रतिकूल तर्क आदि के द्वारा सन्देह व्यक्त
करना यह संशयसमा जाति होती है । उपाधि, प्रतिकूलतर्क आदि इूँठे दूषण
हैं, वास्तविक दूषणों में इन का समावेश नहीं किया जाता, ये किसी एक
पक्ष का निर्णय नहीं कर सकते, व्याप्ति की गलती या पक्ष की धर्म होने स्थी
गलती का निश्चय इन से नहीं हो सकता, वे केवल पक्ष में साध्य के होने
के बारे में सन्देह व्यक्त करते हैं, अतः वे साध्यर्थसमा आदि के समान जाति
हैं (इूँठे दूषण हैं, वास्तविक दूषण नहीं है) । यहाँ प्रश्न होता है कि
प्रत्यनुमान और प्रतिकूलतर्क में क्या भेद है (क्यों कि प्रत्यनुमान से विरोध
करने को प्रकरणसमा जाति कहते हैं यह अगले परिच्छेद में बताया है) ।
उत्तर यह है कि एक ही धर्मी (धर्मयुक्त पक्ष) में साध्य के विवर वात को
सिद्ध करना चाहे वह प्रत्यनुमान होता है, उसी धर्मी में या किसी अन्य धर्मी में
विवर वात को सिद्ध करना चाहे वह प्रतिकूलतर्क होता है ।

[६१. प्रकरणसमा]

प्रत्यक्षुगानेन प्रत्यक्षस्थानं प्रकरणसमा जातिः । अनित्यः शब्दः
हत्यत्वाद् वर्तवदित्युभूते नित्यः शब्दः आवणत्वात् शब्दत्ववदिति ॥

[६२. अहेतुसमा]

त्रिकालेऽपि साधनासंभवेन प्रत्यक्षस्थानम् अहेतुसमा जातिः ।
पूर्वयोगे अर्थ हेतुः साध्यात् प्राकृतवर्ती उत्तरवाचमध्ये अभकाल-
प्रकरणसमा जाति

विग्रही असुमान का प्रयोग कर दत्तर देना यह प्रकरणसम जाति है ।
जैसे — इब्द अनित्य है क्यों कि वह वर्तव ज्ञमा कृतक है इस असुमान के
दत्तर में यह कहना कि इब्द नित्य है क्यों कि वह शब्दत्व के समान आवण
(हुनने योग्य) है । (वारी हारा उपम्भुत किये गए हेतु में दूषण वतलाना
यह अनिवारी का पहला काम है, वह संकरने हुए प्रतिकूल पक्ष का समर्थक
असाम अस्तुत वर्ता वाद की रूपि के विरुद्ध है अतः इसे जाति अर्थात्
इस दृष्टि कहा है ।

अहेतुसमा जाति

‘‘नी कालो मे हेतु से साध्य को) सिद्ध करमा असंभव है यह कह
कर / असुमान का विरोध करना यह अहेतुसमा जाति है । जैसे — प्रयोक्त-
कसमान में (शब्द कृतक है अतः अनित्य है इस कथन में) यह कहना कि
यह हेतु (शब्द का कृतक होना) आय के (शब्द के अनित्य होने के)
पहले के समय विद्यमान होता है, वाद के समय होता है या समान समय
में होता है; यदि हेतु साध्य के पहले हो गया हो तो उस समय
साध्य के न होने से हेतु किसे सिद्ध करेगा — अर्थात् हेतु से
प्रयोक्त करनेयोग्य साध्यही वर्त नहीं है; यदि हेतु साध्य के वाद होता
है तो वह साध्य हेतु के पहले ही रिछ है फिर हेतु के प्रयोग से क्या
लाभ; तथा यदि हेतु और साध्य समान समय में है तो उन में साध्यसंघब-
र्त्येभ नहीं हो सकता क्यों कि वे समकालीन हैं, जैसे गाय के दाहिने और
बाये सींग में साध्यसाध्यसंघन्त नहीं ही सकता (एक सींग दूसरे का कारण)

आधी वा। आथे प्राक्काले साध्याभावाद् हेतुः कस्य साधको अवैत्, त व कस्यापि। द्वितीये साध्यस्य प्रवेष चिह्नत्वात् किमनेन हेतुना। तृतीये तौ साध्यसाधनभावरहितौ समकालभावित्वात् सद्येतरगोचिकाणवदिति।

[६३. अर्थापत्तिसमा]

अर्थापत्त्या प्रत्यवस्थानम् अर्थापत्तिसमा जातिः। उदाहरणम्—अनित्यः शब्दः कृतकत्वाद् घटवदित्युक्ते संकेतव्ययहारात्यथानुपपत्तेः शब्दो नित्यः स्थादिति ॥

[६४. अविशेषसमा]

एतद्घर्षविशेषेण प्रतिकूलप्रसंगः अविशेषसमा जातिः। उदाहरणम्—अनित्यः शब्दः कृतकत्वात् घटवदित्यिति प्रसाध्येत तद्विं अनित्य-
नहीं हो सकता) क्यों कि वे दोनों समान समय में विद्यमान हैं। (इन आक्षेपों को जाति इसलिए कहा कि उन में कोई तथ्य नहीं है, हेतु साध्य से पहले है था वाद में इससे अनुमान के सही होने में कोई अन्तर नहीं पड़ता; कृतिका के उदय से रोहिणी के उदय का अनुमान सही है, यही हेतु साध्य से पहले विद्यमान है; बाद से वर्षी का अनुमान सहा होता है, यही हेतु साध्य के वाद मी विद्यमान है; पुरे से अभिके अनुमान में हेतु और साध्य दोनों एक ही समय में विद्यमान होते हैं)।

अर्थापत्तिसमा जाति

अर्थापत्ति का प्रयोग कर के उत्तर देना यह अर्थापत्तिसमा जाति है। जैसे—शब्द अनित्य है क्यों कि वह घट जैसा कृतक है इस अनुमान के उत्तर में यह कहना कि शब्द नित्य है क्यों कि ऐसा माने बिना संकेतों के व्यवहार की उपपत्ति नहीं लगती। (आगे परिच्छेद ६५ में आचार्य ने इस जाति को प्रकरणसमा जाति से अभिन्न बताया है)।

अविशेषसमा जाति

उसी गुणवर्म की समानता बतला कर विशेष का प्रसंग व्यक्त करना यह अविशेषसमा जाति है। जैसे—शब्द अनित्य है क्यों कि वह घट जैसा कृतक है ऐसा सिद्ध किया जाने पर यह कहना कि घट के समान सत् (विद्य-

मार्काण्डादिके सरबात् शटवदित्यादिके स्थादिति । क्यमेव प्रतिकूलतके इति लालड़ा ॥

[६५. उपपत्तिसमा]

उभयत्रैकहेतु उपपत्तिसमा प्रत्यवस्थानम् उपपत्तिसमा जातिः । अनित्यः शब्दः पश्चस्त्रश्चादोः अन्यतरश्चात् शटवदित्यः, नित्यः शब्दः पश्चस्त्रश्चादोः अन्यतरश्चात् सप्तश्चवदिति । नित्याभ्यः गन्धवस्थात्, अनित्याभ्यः गन्धवस्थात् इत्यादि ॥

[६६. उपलब्ध्यनुपलब्धिसमे]

सपक्षे हेतुरहितसाध्योपलब्ध्या प्रत्यवस्थानम् उपलब्धिसमा जातिः । अनित्यः शब्दः कृतकर्त्तव्याद् शटवदित्युक्ते प्रागभावे कृतकर्त्तव्यामान) हीने से आकाश आदि भी अनित्य सिद्ध होंगे । इसी को प्रतिकूलतके भी कहते हैं । (यह जाति अर्थात् झूठा दृष्टण है क्यों कि इस में शब्द अनित्य है इस साध्य के बारे में कुछ न कह कर आकाश अनित्य सिद्ध होगा यह प्रस्तुत विषय से असंबद्ध वात उठाई गई है, यह स्पष्टतः विषयान्तर है) ।

उपपत्तिसमा जाति

दोनों पक्षों में एक ही हेतु की उपपत्ति बतला कर उत्तर देना यह उपपत्तिसमा जाति होती है । ऐसे - शब्द अनित्य है क्यों कि वह पक्ष और सपक्ष में से किसी एक में विद्यमान है जैसे सपक्ष, शब्द नित्य है क्यों कि वह पक्ष और सपक्ष में से किसी एक में विद्यमान है जैसे सपक्ष । (दूसरा उदाहरण -) पृथ्वी नित्य है क्यों कि वह गन्ध से युक्त है, पृथ्वी अनित्य है क्यों कि वह गन्ध से युक्त है ।

उपलब्धिसमा तथा अनुपलब्धिसमा जातियाँ

सपक्ष में जहाँ साध्य पाया जाता है किमु हेतु नहीं पाया जाता ऐसा उदाहरण देकर वाक्यप उपस्थित करना । यह उपलब्धिसमा जाति होती है । ऐसे-शब्द अनित्य है क्यों कि वह शट जैसा कृतक है इस अनुमान के उत्तर में कहना कि प्रागभाव कृतक नहीं है मिर भी उस में अनित्यता पाई जाती है अतः कृतक होना अनित्य होने का बोधक कैसे होगा । (यह वास्तविक

भावेऽपि अनित्यत्वं उद्द्यते, कर्मेतद् गमकं एव दिति ॥ अनुपलब्धिरभावे
साध्ये अनुपलब्धेरप्यनुपलम्भेन प्रत्यवस्थानम् अनुपलब्धिसमा जातिः ।
उदाहरणम् — शब्द उदाहरणात् पूर्वं नास्ति अनुपलब्धेः इत्युक्ते
अनुपलब्धेरप्यनुपलम्भ एव इन्द्रियलिङ्गशब्दाभामनुपलब्धिसम्बन्धरहित-
त्वेन तद्यग्नायोग्यादिति ॥

[६७. नित्यानित्यसमे]

**पश्चस्यानित्यधर्मस्य नित्यत्वापादनेन प्रत्यवस्थानं नित्यसमा
जातिः । अनित्यः शब्दः कृतकत्वाद् प्रट्यक्षित्युक्ते शब्दे अनित्यत्वं सर्वं
दृष्ट्वा नहीं है क्यों कि इस में व्याप्ति के सही रूप को न समझते हुए आश्रित
किया है । वो कृतक होते हैं वे अनित्य होते हैं ऐसी व्याप्ति इस अनुभाव में
है किन्तु आश्रित करनेवाला कह रहा है कि जो अनित्य है वे सभी कृतक
होने चाहिए, यह ठीक नहीं है) । किसी वस्तु का अभाव सिद्ध करने के
लिए अनुपलब्धि (न पाया जाना) यह हेतु दिये जाने पर अनुपलब्धि की
भी अनुपलब्धि है यह कह कर उत्तर देना अनुपलब्धिसमा जाति होती है ।
जैसे—उच्चारण के पहले शब्द नहीं है क्यों कि वह ज्ञात नहीं होता ऐसा
कहने पर आश्रित करना कि यहाँ शब्द ज्ञात नहीं होता यह बात भी ज्ञात
नहीं हो सकती क्यों कि यह अनुलयाच्छि इन्द्रियप्रत्यक्ष से अवश्य अनुभाव से
अवश्य शब्द से (आगम से) भी ज्ञात नहीं हो सकती—अनुलयाच्छि का इन्द्रिय-
प्रत्यक्ष ज्ञाति से सम्बन्ध ही नहीं होता (यह जाति है — वास्तविक-
दृष्ट्वा नहीं है क्यों कि इस में किसी वस्तु के अभाव का ज्ञान
ही अस्वीकार किया गया है, वस्तु के अभाव का ज्ञान प्रत्यक्ष से ही होता
है यह बात आश्रितकर्ता भूल गया है । वस्तु के अभाव का अभाव है यह
कहने का तात्पर्य होगा कि वस्तु का अस्तित्व है और यह बात प्रत्यक्ष से ही
ज्ञात होती है) ।**

नित्यसमा तथा अनित्यसमा जाति

पश्च के अनित्य गुणधर्म को नित्य बतला कर उत्तर देना यह नित्यसमा
जाति होती है । उदाहरणः— शब्द अनित्य है क्यों कि वह कृतक है जैसे
धृत इस अनुभाव के प्रस्तुत करने पर यह कहना कि शब्द में अनित्यत्व सर्वदा

दृष्टिस कदाचिद् था । आथे शब्दस्यापि सर्वेदा सद्भावः । अर्पेत्तद्भावस्य
यन्मिस्तद्भावमन्तरेण असुपपत्तेः । द्विरीये लक्षा अविनवदर्भी न वदेत्
सर्वा नित्यं पवेति ॥ एकस्यानित्यत्वे सर्वत्वं अनित्यन्यत्वाद्वद्वद्
अनित्यत्वाभा जातिः । अकल्पन्तर्यामो लक्ष्यनित्ये लक्ष्यात् वद्वदिति ॥

[६८. कार्यसमा]

कार्यत्वादिहेतुमां संदिग्धानित्यत्वापादनं कार्यसमा जातिः ।

होता है या कभी कभी होता है, प्रथम पक्ष में (यदि शब्द में अनित्यत्व सर्वेदा
होता ही तो) शब्द का भी अस्तित्व सर्वेदा सिद्ध होगा क्यों कि गुणवर्म का
अस्तित्व उभी के अस्तित्व के बिना नहीं हो सकता (अतः यदि अनित्यत्व
यह गुण सर्वेदा रहेगा तो उस का घटक शब्द भी सर्वेदा रहेगा अर्थात् वह
नित्य सिद्ध होगा); दूसरे पक्ष में (यदि शब्द में अनित्यत्व कभी कभी होता
है तो) जब शब्द में अनित्यत्व यह गुणवर्म नहीं होगा तब वह नित्य ही
सिद्ध होगा (यह भी वास्तविक दूषण नहीं है; शब्द अनित्य है ऐसा वार्ता
ने कहा तभी यह गृहीत हो जाता है कि जिस शब्द का एक समय अस्तित्व
है — उसका दूसरे समय अभाव होगा, अतः उस में यह पूछना कि अनित्यत्व
सर्वेदा रहेगा या कभी कभी — निर्भक है)। एक वस्तु को अनित्य बतलाने
पर सभी को अनित्य बतलाना यह अनित्यसमा जाति होती है। जैसे —
पूर्वोक्त अनुमान में (शब्द अनित्य है यह कहने पर) कहना कि सभी वस्तुएँ
अनित्य हैं क्यों कि वे सत् हैं जैसे घट । (परि. ६८ में अचार्य ने बतलाया
है कि यह जाति अविशेषसमा जाति से भिन्न नहीं है)।

कार्यसमा जाति

कार्यत्व इत्यादि हेतुओं को संदिग्धानित्य बतलाना यह कार्यसमा
जाति होती है। जैसे पूर्वोक्त अनुमान में (शब्द अनित्य है क्यों कि वह
कृतक है जैसे घट) यह कहना कि शब्द का कृतक होना संदिग्ध है क्यों
कि तालु आदि शब्द के कारण हैं अथवा केवल व्यक्त करनेवाले हैं इस
विषय में वादियों में मतभेद है अतः (शब्द कृतक है या नहीं इस विषय
में) सन्देह होता है। (यह जाति है अर्थात् वास्तविक दूषण नहीं है क्यों-

प्राकृतनप्रयोगे शब्दे कुतकत्वं संदिग्धं तात्पादीनां कारणत्वं व्यञ्जकत्वं
वेति वादिविश्विष्टिपर्से: संदेहादिति । इति जातयः ॥

[६९. जातिसंख्याविचारः]

धर्मे साध्यस्य संभूतेः पृथग् नास्य निरूपणम् ।
प्रत्युदाहरणं चापि साधम्ये लब्धचुस्तिमत् ॥ १२ ॥
अर्थापश्चुपपत्ती चाभिन्ने प्रकरणादिह ।
अनित्यत्वसमाजातिरविशेषान्न भिद्यते ॥ १३ ॥
इति पञ्चापसारेणासिजाप्यत्ययेन च ।
जातयो विश्विष्टिस्ताः स्युः पुनरुक्तिं विदा पुनः ॥ १४ ॥

[७०. निग्रहस्थानानि]

वादिप्रतिवादिनोः अन्यतरस्य पराजयनिमित्तं निग्रहस्थानम् । प्रति
वादानि: प्रतिशान्तरं प्रतिशाविरोधः प्रतिशासंन्यासः हेत्वन्तरम् अथीन्तरं-
निरर्थकम् अविश्वातार्थम् अपार्थकम् अप्राप्तकालं हीनम् अधिकम् पुनरु
कि यहाँ प्रस्तुत हेतु में कोई स्पष्ट दोष न बतला कर केवल वादियों के
मतभेद पर आधारित संदेह को महत्व दिया है । इस प्रकार जातियों का
वर्णन पूरा हुआ ।

जातियों की संख्या

वर्णसमा जाति में साध्यसमा जाति का अन्तर्भूत होता है अतः उस
का वृथक् वर्णन नहीं करना चाहिए; प्रत्युदाहरण जाति का समावेश साधम्य-
समा जाति में होता है; अर्थापश्चिसमा तथा उपपत्तिसमा जातियों प्रकरणसमा
जाति से भिन्न नहीं हैं तथा अनित्यसमा जाति अविशेषसमा जाति से भिन्न
नहीं है । इस प्रकार पुनरुक्ति छोड़कर पाँच जातियों को कम करने से तथा
असिद्धादिसमा जाति का अधिक समावेश करने से जातियोंकी संख्या बीस
होती है ।

निग्रहस्थान

वादी और प्रतिवादी में से किसी एक के पराजय का जो कारण होता
है उसे निग्रहस्थान कहते हैं । प्रतिशाहानि से हेत्वाभास तक (जो नाम मूल
म.प्र.५

सम् अनुभावणम् अशान्तम् अप्रतिभा विक्षेपः मतानुष्ठा पर्युद्योज्यो-
पथर्थं निरनुयोज्यानुयोगः अपसिद्धान्तः हेत्वाभासाश्चेति इतिविश्वाति-
निग्रहस्थानानि ॥

[७१. प्रतिज्ञाहानिः]

उके द्वेती दूषणोदभावने प्रतिपक्षाभ्युपगमः प्रतिज्ञाहानिर्वाम निग्रह-
स्थानम् । सस्वोदाहरणम् अनित्यः शब्दः कृतकत्वाद् घटवदित्युके
प्रध्वंसाभावेन हेतोः अनेकान्तोदभावने नित्यो भवेदिति ॥

[७२. प्रतिज्ञान्तरम्]

सिद्धसाध्यत्वेन हेतोः अकिञ्चित्करत्वोदभावने पक्षात् साध्यविशेष-
योपादानं प्रतिज्ञान्तरं नाम निग्रहस्थानम् । उदाहरणम्-आर्य चैतन्यं
में गिनाये हैं वे) बाईस निग्रहस्थान होते हैं (इन का क्रमशः वर्णन अब
करेंगे) ।

प्रतिज्ञाहानि निग्रहस्थान

कहे हुए हेतु में दोष वतलाने पर प्रतिपक्ष को स्वीकार कर लेना वह
प्रतिज्ञाहानि नाम का निग्रहस्थान है । उस का उदाहरण है—शब्द अनित्य है
क्यों कि वह घट जैसा कृतक है इस अनुमान के प्रयोग में हेतु में प्रध्वंसाभाव
से अनेकान्त-दोष वतलाने पर (प्रध्वंसाभाव कृतक है किन्तु अनित्य नहीं
है अतः कृतकत्व यह हेतु प्रध्वंसाभाव इस नित्य विपक्ष में भी होने से
अवैकानिक है ऐसा कहने पर) यह कहना कि शब्द नित्य होना चाहिए ।

प्रतिज्ञान्तर निग्रहस्थान

साध्य के पहले ही सिद्ध होने के कारण हेतु को अकिञ्चित्कर वतलाये
जाने के बाद साध्य में किसी विशेषण का ग्रहण करना यह प्रतिज्ञान्तर नाम
का निग्रहस्थान है । उदाहरण—पहला (जन्मसमय का) चैतन्य
चैतन्यपूर्वक होता है (चैतन्यसे ही चैतन्य उत्पन्न होता है) अर्थों कि वह
चेतना का विवर्त है जैसे कि मध्यकालीन चेतना-विवर्त होता है इस
अनुमान के प्रयोग करने पर पहले (जन्मसमय के) चैतन्य के पहले
मातापिता का चैतन्य होता ही है यह स्वीकृत है अतः पहला

चैतन्यपूर्वक चिदविवर्तत्वात् मध्यचिदविवर्तवदित्युके आद्यचैतन्यस्य मातापितृचैतन्यपूर्वकान्वाहीकारात् निष्ठुभावात्मेत्त हेतोः अकिञ्चित्करल्लोद्भावने पश्चात् आद्यं चैतन्यम् एकसंतानचैतन्यपूर्वक चिदविवर्तत्वात् मध्यचिदविवर्तवदित्यादि ॥

[७३. प्रतिज्ञाविरोधः]

धर्मधर्मिविरोधः प्रतिज्ञाविरोधो नाम निग्रहस्थानम् । सर्वज्ञो न अकिञ्चिद् जानाति जिज्ञासारहितत्वात् सुपुसवदित्यादि । केचित् साध्यसाध्यनयोः विरोधं प्रतिज्ञाविरोधमाचक्षते, तत्पतेऽस्य विरुद्धहेत्वाभासत्वैनैव निग्रहत्वात् ॥

[७४. प्रतिज्ञासंन्यापः]

उके हेतौ दृषणोद्भावने स्वसाध्यपरित्यागः प्रतिज्ञासंन्यासो नाम चैतन्य चैतन्यपूर्वक होता है यह साध्य पहले ही सिद्ध है अतः यहाँ हेतु अकिञ्चित्कर (धर्म) है ऐसा कहने पर फिर यह कहना कि पहले (अन्मसमय के) चैतन्य के पहले एक ही सन्तान का चैतन्य होता है क्यों कि वह चैतन्य का विवर्त है जैसे कि मध्यकालीन चैतन्यविवर्त होता है (यहाँ पहली प्रतिज्ञा यह थी कि पहला चैतन्य चैतन्यपूर्वक होता है, बाद में इस प्रतिज्ञा की बदल कर यह स्वरूप दिया गया कि पहला चैतन्य तथा उस के पहले का चैतन्य एकही सन्तान के — एकही व्यक्तित्व के होने चाहिए अतः यह प्रतिज्ञान्तर निग्रहस्थान हुआ) ।

प्रतिज्ञाविरोध निग्रहस्थान

धर्म (गुण) और धर्मी (गुणवान्) में विरोध होना यह प्रतिज्ञाविरोध नाम का निग्रहस्थान है । जैसे—सर्वज्ञ कुछ नहीं जानता क्यों कि वह सोए हुए व्यक्ति के समान जिज्ञासारहित है (यहाँ सर्वज्ञ अर्थात् जो सब जानता है वह धर्मी है, उस का कुछ न जानना इस धर्म से स्पष्ट ही विरोध है अतः यह प्रतिज्ञाविरोध निग्रहस्थान हुआ) ।

प्रतिज्ञासंन्यास निग्रहस्थान

हेतु बतलानि पर दूषण दिलाने पर अपने साध्य को छोड़ देना यह प्रतिज्ञासंन्यास नाम का निग्रहस्थान है । जैसे—शब्द अनित्य है क्यों कि वह

निग्रहस्थानम् । अनित्यः शब्दः कुतकत्वाद् घटवदित्युके प्रधंसाभावेकः हेतुः अनेकान्तोदभावने नाहं शब्दमनित्यं लब्धीयीत्यादि ॥

[७५. हेत्वन्तरम्]

अविशेषे हेतौ व्यभिचारेण प्रतिषिद्धे पश्चाद् विशेषणोपादाने हेत्वन्तरं नाम निग्रहस्थानम् । उदाहरणम्—पूर्वप्रथोगे पूर्ववदनेकान्तोदभावने पश्चाद् अनित्यः शब्दः भावत्वे सति कुतकत्वाद् घटवदित्यादि ॥

[७६. अर्थान्तरम्]

प्रकृतप्रमेयानुपयोगित्वन्तरं नाम निग्रहस्थानम् । उदाहरणम्—

कुतक है जैसे घट इस अनुमान के प्रस्तुत करने पर हेतु में प्रधंसाभाव से अनेकान्त बतलाया गया (प्रधंसाभाव कुतक होने पर भी नित्य है अतः कुतकत्व यह हेतु नित्य और अनित्य दोनों पदार्थों में पाया जाता है—वह अनैकानिक है ऐसा कहा गया) तब में शब्द को अनित्य नहीं कहता ऐसा कहना (प्रतिज्ञासंन्यास होगा, शब्द अनित्य है यह बादी की प्रतिज्ञा थी उसे से वह मुकरता है यही प्रतिज्ञासंन्यास है) ।

हेत्वन्तर निग्रहस्थान

विशेषणरहित हेतु का प्रयोग करने पर (प्रतिवादी द्वारा) व्यभिचार—रोष दिलचारने पर (हेतु में) विशेषण का स्वीकार करना यह हेत्वन्तर नाम का निग्रहस्थान है । जैसे—उपर्युक्त अनुमान में (शब्द अनित्य है क्यों कि वह कुतक है जैसे घट) उपर्युक्त प्रकार से अनेकान्त—दोष बतलाने पर (प्रधंसाभाव कुतक है किन्तु नित्य है अतः कुतकत्व यह हेतु नित्य और अनित्य दोनों पदार्थों में पाया जाता है अतः वह अनैकानिक है) यह कहना कि शब्द अनित्य है क्यों कि वह मात्र है तथा कुतक है जैसे घट (यही मूल हेतु कुतकत्व में भावल के साथ होना यह विशेषण अधिक जोड़ा है अतः यह हेत्वन्तर निग्रहस्थान हुआ) ।

अर्थान्तर निग्रहस्थान

प्रस्तुत विषय के लिए निरुपयोगी बातें कहना यह अर्थान्तर नाम का निग्रहस्थान है जैसे—शब्द अनित्य है, क्यों कि वह कुतक है यह हेतु है, हेतु

अनित्यः शब्दः, कृतकत्वादिति हेतुः, हेतुश्च द्विनोत्तेस्तुनप्रत्यये उणादिकं परं तस्य लिङ्गसंज्ञानमत्तरं स्थात् व्युत्पत्तिः, हेतुः हेतु हेतवः इत्यादि ॥

[७७. निरर्थकम्]

अर्थरहितशब्दमात्रोच्चारणं निरर्थकं नाम निग्रहस्थानम् ।

उदाहरणम्— अनित्यः शब्दः अबहडमठपरत्वात् नयभजखगसदचलवदित्यादि ॥

[७८. अविज्ञातार्थकम्]

वादिना त्रिष्टुप्स्तमपि परिपत्रतिवादिभिः अविज्ञायमानम् अविज्ञातार्थकम् नाम निग्रहस्थानं चादिनः । प्रतिवादिनोऽप्येकम् ॥

शब्द हि धातु को उणादि तुम प्रत्यय लगाने से बना है, उस की व्युत्पत्ति लिङ्ग और संज्ञा के बाद होती है, (प्रथमा में उस के रूप हैं —) हेतुः हेतू हेतवः (यहाँ हेतु शब्द का व्याकरण बतलाना अव्यक्तिर है क्यों कि इस का शब्द के अनित्य होने से कोई संबंध नहीं है — साध्य के लिए यह निरूपयोगी है) ।

निरर्थक निग्रहस्थान

विना अर्थ के केवल उच्चनि का उच्चारण करना यह निरर्थक नाम का निग्रहस्थान है । जैसे—शब्द अनित्य है क्यों कि वह नयभजखगसदचल जैसा अबहडमठपरत है (यहाँ अबहडमठपरत तथा नयभजखगसदचल विना अर्थ के केवल उच्चनि है बातः यह निरर्थक निग्रहस्थान हुआ) ।

अविज्ञातार्थक निग्रहस्थान

वादी के तीन बार कहने पर भी जिस को सभा तथा प्रतिवादी न समझ सकें उसे वादी के लिए अविज्ञातार्थक नाम का निग्रहस्थान कहना चाहिये । इसी प्रकार प्रतिवादी के लिए भी निग्रहस्थान होगा (यदि उस को तीन बार कहने पर भी वादी और सभा उसे न समझ पाये) ।

[७९. अपार्थकम्]

समुदायार्थपरिज्ञानम् अपार्थकं नाम निग्रहस्थानम् । अग्निः कृष्णो
वायुत्वात् जलवत् ।

समुद्रः पीयते मेघैः अहमता जरातुरः ।

अग्नी गर्जन्ति धर्जन्त्या हरेरैरावतः प्रियः ॥ १५ ॥ इत्यादि ॥

[८०. अप्राप्तकालम्]

अवश्यविषयासदचन्नम् अप्राप्तकालं नाम निग्रहस्थानम् । घटवत्
कृतकल्पादनित्यः शब्दः इत्यादि ॥

अपार्थक निग्रहस्थान

(शब्दों के) समूह के अर्थ का ज्ञान न होना यह अपार्थक नाम का
निग्रहस्थान है । ऐसे – अग्नि काला है क्यों कि वह वायु है जैसे जल (यहाँ
अग्नि, कृष्ण, वायु और जल ये चारों शब्द सार्थ होने पर भी उन के समूह
को कोई अर्थ संगति नहीं हो सकता) । समुद्र मेघों द्वारा पिया जाता है, मैं
अब बुद्धिये से पीडित हूँ, ये बादल गरज रहे हैं, इन्द्र को पैरावत प्रिय है
(यही चारों वाक्यखण्ड सार्थ होने पर भी उन के समूह में अर्थ की कोई
संगति नहीं है अतः यह अपार्थक निग्रहस्थान हुआ) ।

अप्राप्तकाल निग्रहस्थान

(अनुमान वाक्यों के) अवश्यविषयों को उल्टापलट कर कहता यह
अप्राप्तकाल नाम का निग्रहस्थान है । जैसे – घट के समान कृतक
होने से अनित्य है शब्द (यही शब्द यह पक्ष-अन्त में, अनित्य
होना यह साध्य उस के पहले, कृतक होना यह हेतु उस के पहले तथा
घट, यह इष्टान्त-प्रारम्भ में कहा दी; अनुमान वाक्य की रीति के अनुसार
इन का श्रम ठीक उलटा अर्थात् पक्ष-साध्य-हेतु-इष्टान्त इस प्रकार होने हैं
चाहिए; अक्ष-श्रम-ठीक न होने से यह अप्राप्तकाल निग्रहस्थान हुआ) ।

[८१. हीनम्]

अन्यतमेन अवयवेन न्यूनं हीनं नाम निप्रहस्थानम्। अनित्यः
शब्दः कृतकात्मत्, यो या छालो रु सर्वोदयनित्यः, यथा धटः, कृतक-
आर्यं शब्दं इति ॥

[८२. अधिकम्]

द्वयादिहेतुहास्तभिकं नाम निप्रहस्थानम्। आकाशं बाह्येन्द्रिय-
प्राणशुणरहितं नित्यत्वात् निरवयवत्वात् स्पर्शरहितत्वात् कालघट्
आत्मघट् इत्यादि ॥

[८३. शेषाणि निप्रहस्थानानि]

शब्दार्थयोः पुनर्बैचनं पुनरुक्तं नाम निप्रहस्थानम् अन्यत्रानुवादात्।
एविद्वा परिज्ञातस्य वादिना त्रिरूपस्तस्तस्याप्रत्यक्षारणम् अनुभावं

हीन निप्रहस्थान

अनुमान का वाक्य किसी एक अवयव से न्यून हो तो वह हीन
नामक निप्रहस्थान होता है । जैसे—शब्द अनित्य है क्यों कि वह कृतक है,
जो जो कृतक होता है वह सभी अनित्य होता है, जैसे धट, और वह शब्द
कृतक है । (यहाँ अनुमान के वाक्य में अनित्य अवयव निमग्न—इस लिए
शब्द अनित्य है — का प्रयोग नहीं किया गया है अतः यह हीन निप्रहस्थान
हुआ) ।

अधिक निप्रहस्थान

दो या अधिक हेतुओं तथा दृष्टान्तों का प्रयोग करना यह अधिक
नाम का निप्रहस्थान है । जैसे—आकाश में बाध्य इन्द्रियों से प्राह्य शुण नहीं
है क्यों कि वह काल के समान और आत्मा के समान नित्य है, अवयव-
रहित है तथा स्पर्शरहित है (यहाँ नित्यत्व, निरवयवत्व, स्पर्शरहितत्व इन
तीन हेतुओं का तथा काल और आत्मा इन दो दृष्टान्तों का प्रयोग किया
गया है अतः यह अधिक निप्रहस्थान हुआ) ।

शेष निप्रहस्थान

किसी शब्द या अर्थ का द्वितीय प्रयोग करना यह पुनरुक्त नामक

नाम निप्रहस्थानम् । साधनप्रयोगे दूषणायरिक्तानं दूषणोद्भावने प्रतिष्ठापा-
प्रतिष्ठिः अप्रतिभा नाम निप्रहस्थानम् । व्यासंगाद् भीतेः अप्रतिभादेः वा
प्रारब्धकायाजिव्विद्वे विक्षेपे वाच निप्रहस्थानम् । स्वपद्मांकदोषभवित्त्वा
परपक्षे दोषमुद्भावयतो मतानुज्ञा नाम निप्रहस्थानम् । प्रापदोषोद्भावनं
पर्यनुयोजयोपेक्षणं नाम निप्रहस्थानम् । दोषदोषोद्भावनं निर-
नुयोज्यानुयोगो नाम निप्रहस्थानम् । स्वीकृतागमशिद्वद्वसाधनम् अप-
सिद्धान्तो नाम निप्रहस्थानम् । असिद्धाद्यो हेत्वाभासः नाम निप्रह-
स्थानानि ॥

[४४. निप्रहस्थानोपसंहारः]

लिङ्गकारककालादिस्वललनं निप्रहो भवेत् ।

तत्प्रतिक्षाभ्युपेतस्य नान्यस्य शुखवादिनः ॥ १६ ॥

निप्रहस्थान होता है, किन्तु (प्रतिवादी के कथन का खंडन करनेके लिए)
दुहराना यह निप्रहस्थान नहीं होता । जिसे सभा ने समझ लिया हो तथा
वादी ने तीनबार जिस का उच्चारण किया हो उसे न दुहरा सकना यह
अननुभाषण नामका निप्रहस्थान होता है । (प्रतिपक्षी द्वारा) किसी साधन
(हेतु) का प्रयोग किये जाने पर उस में दूषण न सूझना तथा (प्रतिपक्षी
द्वारा) दूषण दिये जाने पर उस का उत्तर न सूझना यह अप्रतिभा नामका
निप्रहस्थान होता है । (अन्य विषय में) रुचि होने से, (पराजय के) ढरसे
को उत्तर न सूझने से शुरू की हुई चर्चा को रोक देना यह विक्षेप नाम का
निप्रहस्थान होता है । अपने पक्ष में बताये गये दोष का उत्तर न देकर
प्रतिपक्ष में दोष बताना यह मतानुज्ञा नाम का निप्रहस्थान होता है ।
(प्रतिपक्ष में) प्राप हुए दोष को न बताना यह पर्यनुयोजयोपेक्षण नाम का
निप्रहस्थान होता है । निर्दोष कथन में दोष बताना यह निरनुयोज्यानुयोग
नाम का निप्रहस्थान होता है । अपने द्वारा मान्य आगम के विरुद्ध तत्व को
सिद्ध करना यह अपसिद्धान्त नाम का निप्रहस्थान होता है । असिद्ध इत्यादि
हेत्वाभास नाम के निप्रहस्थान है (जिस का विस्तार से वर्णन पहले ही
कुका है) ।

निप्रहस्थान चर्चा का समारोप

जिस ने दौसी प्रतिज्ञा की हो उस वादी के लिए लिंग, कारक, काल

तथा साधनदूषणानुपयोगिनों प्रतिभाशयकारिणों कलह-गालियदान
सहभाषण-बृथाप्रहसन-कपोलवादन-तलघार-शिरःकम्पन-ऊरुताडन
नर्तन-उत्पवन-आसफोटनादीनामपि निप्रहस्यानत्यम् ॥

[८५. छलादिप्रयोगनियमः]

स्वयं नैव प्रयोजकव्याः सभामध्ये छलादयः ।

परोक्तास्तु निराकर्त्यै वादिना ते प्रवत्सनः ॥ १७ ॥

यदा सदुत्तरं नैव प्रतिभासेत वादिनः ।

शासे पराजये नित्यं प्रदोक्तव्याभ्युलादयः ॥ १८ ॥

छलाद्युद्भावने शकः प्रतिवादी भवेद् यदि ।

वादी पराजितस्तेन तो चेत् साइर्यं तथोर्मिथेत् ॥ १९ ॥

[८६. वादः]

उकानि साधनदूषणानि । तैः किञ्चाणो वाद् उच्यते ।

आदि की गलती भी निप्रहस्यान होती है, मुखपूर्वक वाद करनेवाले अन्य वादी के लिए वह निप्रहस्यान नहीं होती। इसी प्रकार पक्ष के साधन या दूषण के लिए अनुपयोगी एवं प्रतिभा को कम करनेवाले जगड़े, गाली देना, साथ बोलना, फालतू हंसना, गाल बजाना, ताली बजाना, मिर हिलाना, आती पीटना, नाचना, उडना, चिल्लाना आदि को भी निप्रहस्यान समझता चाहिए।

छल आदि के प्रयोग के नियम

सभा में स्वयं छल आदि का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए किन्तु अतिवादी द्वारा उन का प्रयोग किये जाने पर वादी को प्रथमपूर्वक उन का निराकरण करना चाहिए। जब वादीको सही उत्तर सूझता ही न हो तथा पराजय का प्रसंग आया हो तब हमेशा छल आदि का प्रयोग करना चाहिए। अदि प्रतिवादी छल आदि को स्पष्ट बतला सके तो उस के द्वारा वादी पराजित होता है, अन्यथा दोनों में समानता रहती है।

वाद

अब तक साधन और दूषणों का वर्णन किया। अब उन से किये

विवादपदमुद्दिश्य वचोभिरुक्तयुक्तिभिः ।

अङ्गीकृतागमार्थनां वचने चादृ उच्यते ॥ २० ॥

वादस्थ स्वरूपसाधने लाभनुसार्यनं परपश्चूर्णं दृष्टणसमर्थनं
शब्ददोषवर्जनमिति कवयवाचः पञ्च । अपशब्दप्रयोगाभन्व्यदुरन्वया-
शिद्धापदानीति शब्ददोषाः पञ्च । तत्र वक्ष्यमाणभाषा खेडा ।

प्राहृतसंस्कृतमागधपिशाचमार्थं शौरसेनी च ।

पष्ठोऽत्र भूरिमेदो देशविशेषदपञ्चशः ॥ २१ ॥

प्रतिवादभिवाङ्मुख्या पर्वविद्ययुक्तयापाभिः अभिप्रेतार्थवादनं
वादः ।

वादं विधा विद्ययन्ति व्याख्यागोष्ठीविवादतः ।

गुरुविद्वज्जिग्येषुणां शिष्यशिष्यस्त्रवादिभिः ॥ २२ ॥

जानेवाले वाद का वर्णन करते हैं । विवाद के विषय को छेकर उचित युक्तियों के बावर्यों द्वारा अपने द्वारा स्वीकृत आगम (शास्त्र) के अर्थ का वर्णन करना यह वाद कहलाता है । वाद के पांच अवयव हैं — अपने पक्ष की सिद्धि करना, उसके साधनों का समर्थन करना, प्रतिपक्ष के दृष्टणं बतलाना, उन दृष्टणों का समर्थन करना तथा शब्द के दोषों से दूर रहना । शब्द के दोष पांच प्रकार के हैं — अपशब्द, अपप्रयोग (गलत प्रयोग), अनन्वय (असंबद्ध प्रयोग), दुरन्वय (जिसका संबन्ध समझना कठिन हो वह प्रयोग) तथा अप्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग । वाद में योली जानेवाली भाषाएँ छह प्रकार की हैं — प्राहृत, संस्कृत, मागध, पिशाच, शौरसेनी तथा छठवीं भाषा अपभंग, जिसके मिल मिल प्रदेशों के कारण बहुतसे प्रकार हुए हैं । इस प्रकार की युक्तिसंगत भाषाओं द्वारा प्रतिवादी की इच्छानुसार अपने संमत अर्थ को कहना यह वाद है । वाद के तीन प्रकार हैं — व्याख्यावाद, जो गुरु शिष्य के साथ करता है; गोष्ठीवाद, जो किंदान शिष्ट लोगों के साथ करता है; तथा विवादवाद, जो विजय की इच्छा करनेवाला वादी प्रतिवादी के साथ काला है — ये तीन प्रकार हैं ।

[८७. व्याख्यावादः]

तत्र व्याख्यावादे—

हुयति सदाग्रहं शिष्यो विचारे शास्त्रमेवरे ।

बुभुत्सुस्तस्यथाशास्त्रं त लक्षान्वित् दुराग्रहम् ॥ २३ ॥

सदाग्रहः प्रमाणेन प्रसिद्धार्थेवदाग्रहः ।

दुराग्रहो मनोशास्त्रा वाधितार्थेवदाग्रहः ॥ २४ ॥

सत्साधनेन पक्षस्य स्वकीयस्य समर्थनम् ।

सदृष्टपूर्णविपक्षस्य तिरस्कारो गुरुः कियर ॥ २५ ॥

सत्साधनदूषणे लीक्षे इत्युपते वक्ति-

व्याख्यानं पक्षधर्मक्ष सम्यक्साधनमुच्यते ।

तदैकरूपविभावसु स इव शक्तिवासु उपते ॥ २६ ॥

असिक्षाद्वयः साधनाभासाः । छलादयो दूषणाभासाः ।

व्याख्यावाद

व्याख्यावाद में शास्त्रसंबंधी विचार होता है, उस में शिष्य तत्त्वों का वास्तविक स्वरूप जानने की इच्छा करते हुए सत्य के विषय में आग्रह करें, दुराग्रह कभी न करें। प्रमाण से भिन्न होनेवाले विषय में इदं आग्रह होना यह सदाग्रह (सत्य का आग्रह अथवा योग्य आग्रह) है। मन के भ्रम के कारण ग्रन्थान्विस्तरविषय में इदं आग्रह होना यह दुराग्रह कहलाता है। उचित साधनों से अपने पक्ष का समर्थन करना तथा उचित दूषणों से प्रतिपक्ष का निषेध करना यह (व्याख्यावाद में) गुरु का कर्त्त्व होता है। उचित साधन तथा दूषण कैसे होते हैं यह पूछने पर कहते हैं व्याप्ति से युक्त पक्ष के धर्म को उचित साधन (हेतु) कहते हैं जिस का पहले विस्तार से वर्णन कर चुके हैं। तथा उचित साधन की कमी बतलाना वही उचित दूषण होता है। असिक्षा इत्यादि साधन (हेतु) के आभास हैं तथा छल आदि दूषण के आभास हैं (इन दोनों का पहले विस्तार से वर्णन हो चुका है)। अनुग्रह के योग्य शिष्य के साथ समझानेवाले गुरु अनुग्रह के लिए

अनुग्राहस्य शिष्यस्य वोधकैर्गुरुभिः सह ।
अनुग्रहात् उत्त्यन् स्तां जयपराजयौ ॥ २५ ॥

[८८. गोष्ठीवादः]

गोष्ठीवादे—असूयकत्वं शठताविचारो दुराग्रहः सूक्तिविमानं च ।

पुंसामी पञ्च भवन्ति दोषा तत्त्वार्थोधपतिवन्धनाय ॥ २६ ॥
सुजनैः किमजानदभिः किं जानदभिरसूयकैः ।
भावयं विशिष्टगोष्ठीपु जानदभिरनसूयकैः ॥ २७ ॥
मूर्खैरपक्षोधेस्तु सहालापश्चतुर्कलः ।
याचार्यो व्यथो मनस्तापः ताडनं दुष्प्रवादनम् ॥ २८ ॥
तस्यात् समे अनेभाव्य शास्त्रयाथात्मवेदिभिः ।
प्रामाणिकैः प्रवादेषु कृताभ्यासैः कृपालुभिः ॥ २९ ॥
गोष्ठीर्थां सहस्राधम्नैरेच उत्तप्तस्य समर्पीतम् ।
सद्बूषणैर्विषयस्य तिरस्कारस्तथोर्भवः ॥ ३० ॥

यह व्याख्यावाद करते हैं इसलिए इस में विजय अथवा पराजय का प्रश्न ही नहीं होता ।

गोष्ठीवाद

गोष्ठीवाद में पुरुषों के लिए तत्त्व का अर्थ समझने में आधा ढालनेवाले पांच दोष इस प्रकार होते हैं—मत्सर, दुष्टता, अविचार, दुराग्रह तथा अच्छे व्यवहारों की अवहेलना । न जाननेवाले सज्जनों से अथवा जाननेवाले मत्सरी लोगों से क्या लाभ ? विशिष्ट गोष्ठी में भाग लेनेवाले लोग जाननेवाले किन्तु मत्सर न करनेवाले होने चाहें । अबूर्धी समझवाले मूर्खोंसे बातचीत के चार फल ग्रास होते हैं—शब्द खन्न होना, मन को कष्ट होना, मारपीट होना अथवा निदा होना । अतः गोष्ठी के सदस्य शास्त्रों का वास्तविक रूप जाननेवाले, समानशील, प्रामाणिक, दयालु तथा वादविदाद का अनुभव रखनेवाले होने चाहिए । गोष्ठी में उचित साधनों से ही अपने पक्ष का समर्थन करना चाहिए तथा उचित दूषणों से ही प्रतिपक्ष का निषेच करना चाहिए । गोष्ठीवाद और व्याख्यावाद में तत्त्व का इन दृढ़ होना यही उद्देश होता है अतः अपप्रयोग

गोष्ठीज्ञानयोरत्र—

व्याख्यावादे च गोष्ठां च तत्त्वज्ञानहठार्थयोः ।
अपश्योगदुश्चादपौनशक्त्यं न कृषणम् ॥ ३३ ॥
विशिष्टः क्षियमाणायां कथायां विदुषां सद्वै ।
तत्त्वचृतिहठार्थत्वात् न सत्ता अयपराजयैः ॥ ३४ ॥

[८९. विवादवादः]

विवादवादे-यथोरेव समं विच्छ यथोरेव समं श्रुतम् ।

तथोरेव विवादः स्यात् न तु पुष्टिपुष्टयोः ॥ ३५ ॥
नैवारोहेत् तुलां जातु गरिष्ठो लघुना सह ।
लघुरस्तिमायाति गरिष्ठोऽथो वजेत् यतः ॥ ३६ ॥ इत्येके ।
असमेभापि द्वेषेन सतां वादो यशस्करः ।
गुणाः किं न सुवर्णस्य व्यज्यन्ते निकायोऽले ॥ ३७ ॥
परप्रबर्णपद्वितेन चेतसा व्यपेश्याऽपैर्भरेण वा नृपाः ।
वादं रणं वासुरभूतयो जनाः कर्तुं यतन्ते न तु धर्मवृत्तयः ॥ ३८ ॥

(अनुमान का गलत प्रयोग), गलत शब्दों का प्रयोग अथवा उल्लङ्घि ये दृष्टि नहीं होते । गोष्ठी-चर्चा विशिष्ट विद्वानों में तत्त्वज्ञान को ढाँकने के लिए कीजानी है अतः इस में अथ अथवा पराजय का प्रश्न ही नहीं होता है ।

विवादवाद

विवादवाद में जिनका धन समान हो तथा जिनका अध्ययन समान हो उन्हीं में विवाद होता है, सबल तथा दुर्बल में विवाद नहीं हो सकता । गरिष्ठ (भारी अथवा श्रेष्ठ) व्यक्ति को लघु (हल्के अथवा नीच) व्यक्ति से तुलना नहीं करनी आहिए क्यों कि ऐसी तुलना में हल्का व्यक्ति ऊपर जाता है तथा भारी व्यक्ति नीचे जाता है ऐसा कुछ लोग कहते हैं (जिस सरह तराजू में एक ओर हल्की और दूसरी ओर भारी चीज हो तो हल्की चीज का पलड़ा ऊपर जाता है और भारी चीज का पलड़ा नीचे जाता है उसी तरह श्रेष्ठ और नीच व्यक्ति में विवाद हो तो श्रेष्ठ व्यक्ति की अधिगति और नीच व्यक्ति की उन्नति होती है) । जो समान नहीं है किन्तु अभिमान कर रहा है उस के साथ संपुरुष वाद करें तो वह कीति बदानेवाला होता है ।

यशोवादाय दुर्जनं तत्त्वविष्लवकारिणा ।
सतोऽपि दुर्बता वादी वादे कुर्यात् विभिः सदा ॥ ३९ ॥
न रात्रैः नापि चैकाम्ते दीप्तरात्रिसमाचौत् ।
विवादं मूर्खसम्भावां परितो मूर्खमूपतेः ॥ ४० ॥

दुराग्रहो मूर्खता ।

प्रतिज्ञा तु न कर्तव्या वादे युज्ञे च धीमता ।
फलभेदं सतामाद् सत्यासात्प्रव्यवस्थितिम् ॥ ४१ ॥
द्रुतं विलम्बितं क्लिष्टम् अव्यक्तमनुनासिकम् ।
अप्रसिद्धपदं वादे न वैयत् शाब्दवित् सदा ॥ ४२ ॥
दूमं एव विवादः स्वाद् यदि युक्तः सदुक्तिभिः ।
अथ धृष्टिप्रयटाभिः तत्र वाच्यमा वयम् ॥ ४३ ॥

सोने के गुण क्या कसैदी के पथर पर प्रकट नहीं होते ? (यद्यपि सोना और पथर परस्पर समान नहीं हैं तथापि उन के संवर्ष से सोने के गुण स्पष्ट होते हैं उसी प्रकार विद्वान् व्यक्ति अभिमानी अल्पज्ञ के साथ वाद करे तो उस की विद्वता की कीर्ति बढ़ती है) । केवल दूसरों से संवर्ष करने के आपह से अथवा गर्व से जो विद्वान् या राजा विवाद या युद्ध करते हैं वे अमुरों (राक्षसों) जैसी वृत्ति के हैं, धर्म के अनुकूल वृत्ति के नहीं । (प्रतिपक्षी की) कीर्ति नष्ट करने का जिस ने निश्चय किया है तथा जो तत्त्वोंका विष्लव करता है (सारिक क्षर्ची में गडबडी फैलाना ही जिस का उद्देश है, कोई तत्त्व सिद्ध करना जिसे इष्ट नहीं) उस से भी वादी तीन सहयोगियों के साथ वाद करे । रात्रि में, एकाम्त में, तथा बिना किसी साक्षी के विवाद न करे (क्यों कि ऐसे वाद में विजय का लाभ नहीं मिलता); जहाँ सभासद् मूर्ख हों अथवा राजा मूर्ख हो वहाँ वाद न करे, यहाँ मूर्खता का लाल्य दुराग्रह से है (यदि सभासद् या राजा दुराग्रही हो तो वे पक्षपात करेंगी अतः ऐसी सभा में वाद न करे) । वाद में तथा युद्ध में बुद्धिमान व्यक्ति प्रतिज्ञा न करे (शर्त न लगाये) सत्पुरुषों के लिए (वाद या युद्ध का) फल ही सत्य और असत्य का निर्णय बतलाता है । शाब्द को जाननेवाला वादी वाद में बहुत जलदी, बहुत धीरे, बहुत कठिन, अस्पष्ट, नाक में अथवा अप्रसिद्ध शब्द न बोले । यदि उचित वाक्यों से युक्त वाद हो तो हम बोलेंगे ही, किन्तु लाठी या धन्धकों से वाद होना हो तो वहाँ हम चुप हो रहते हैं (ऐसी योग्य वादी की वृत्ति होनी चाहिए) ।

[१०. चत्वारि वादाङ्गानि ।]

मात्सर्येण विवादः स्यात् चतुरङ्गश्चतुर्विंश्चः ।

प्रतिज्ञातार्थसिद्धन्ततस्यात् लोकविवादवत् ॥ ४७ ॥

अङ्गानि चत्वारि भवन्ति वादे सैम्ये यथा भूमिपतीवरणाम् ।

सभापतिः सम्यजनः प्रतिवादी वादी च सर्वे स्वशुणीहेताः ॥ ४८ ॥

[११. सभापतिः]

तत्र सभापतेः लक्षणम् ।

समझासः कृपालुच्च सर्वसिद्धान्ततस्यवित् ।

अधर्यितार्थसंग्राही वाधितार्थविहायकः ॥ ४९ ॥

आङ्गावान् धार्मिको वाता विद्वद्गोष्ठीयिः सुधीः ।

नियन्तान्यायवृत्तीनां राजा स स्यात् सभापतिः ॥ ५० ॥

आदिशन् वादयेद् वादे वादिनं प्रतिवादिना ।

न स्वयं विवदेत् ताभ्यां धर्मतत्त्वविचारकः ॥ ५१ ॥

वाद के चार अंग

(वादी और प्रतिवादी के) मरमर से जो विवाद होता है वह चार अकार का तथा चार अंगों से संपन्न होता है । लोगों के विवाद के समान यह विवाद भी प्रतिज्ञा किये हुए अर्थ की सिद्धि हीने तक चलता है । राजाओं के सैम्य में जिस तरह चार अंग (हाथी, घोड़े, रथ और पदाति) होते हैं उसी तरह वाद में चार अंग होते हैं । अपने शुणी से युक्त वे सब अंग इस प्रकार हैं ~ सभापति, सम्यजन, प्रतिवादी तथा वादी ।

सभापति

उन (चार अंगों) में सभापति का लक्षण इस प्रकार है । वह राजा सभापति हीना चाहिए जो समझदार, दयालु, सब सिद्धान्तों के तत्त्वों को जाननेवाला, अबोधित अर्थ का संभद्र कर के वाधित अर्थ को छोड़नेवाला, आङ्गा देने में समर्थ, धार्मिक, दानशील, विद्वानों की चर्चा जिसे प्रिय है ऐसा, बुद्धिमान् , व अन्याय के वरताव को निर्वित करनेवाला हो । सभापति वादी को आदेश देते हुए प्रतिवादी से वाद कराये । वर्ष के तत्त्वों का विचार

सभापतिर्विद् वादे साधनं दूषणं यदि ।
को विवादात् व्रटेत् तेज कुतस्यस्तत्त्वनिश्चयः ॥ ४९ ॥
जानम्भुभयसिद्धान्ती गुणदोषी तयोर्मती ।
राजा सभ्यैविश्वायैव देयः उज्जयपराजयौ ॥ ५० ॥

[९२. सभ्याः]

सभ्यानां लक्षणमुच्यते ।
अपश्चधातिनः प्राक्षाः स्वयमुद्ग्रहणे श्वमाः ।
सर्वसिद्धान्तसाराङ्गाः सभ्या दुर्बिक्ष्यवारकाः ॥ ५१ ॥

उक्तं च ।

अपश्चधातिनः प्राक्षाः सिद्धान्तद्वयवेदिनः ।
असद्वादसिद्धेद्वारः प्राश्निकाः प्रग्रहा इव ॥ ५२ ॥

(प्रमेयकमलसार्विण दृ. ११६)

करते हुए वह सबथं उन से विवाद भ करे । यदि सभापति ही वाद में साधन था दूषण बताये तो उस से विवाद कैसे होगा तथा तत्त्व का निष्ठय कहड़े में होगा (तात्पर्य — सभापति का कार्य निर्णय देना है, सबथं वाद करना नहीं) । दोनों पक्षों के सिद्धान्तों को, उन के गुणदोषों को तथा विचारों को जानते हुए राजा सभासदों से विचार करके ही जय अथवा पराजय का निर्णय दे ।

सभासद

अब सभासदों का लक्षण बताती है । जो पक्षपाली नहीं है, बुद्धिमान हैं, सबथं तत्त्व को समझ सकते हैं, सभी सिद्धान्तों के लाभपूर्व को जानते हैं तथा गलत बच्चनों को रोक सकते हैं वे सभासद होते हैं । कहा भी है — पक्षपात न करनेवाले, बुद्धिमान, दोनों सिद्धान्तों को जाननेवाले, तथा गलत बच्चनों को रोकनेवाले प्राश्निक (सभासद) प्रग्रह के (लगाम के) समान होते हैं (दोनों पक्षों को जियांचित कर उचित मार्ग पर बनाये रखते हैं) । सभासद सात, पाँच या सीन होमि चाहिए, वे दोनों भतों के दिशों को जाननेवाले हो, समझदार हों तथा जो चीजें छोड़ने योग्य हैं उन से (अपश्च आदि से) दूर रहनेवाले हों । कहा भी है — जिन्हों ने कई वाद देखे

प्राश्निकैः सत्तमिभव्यमथवा पञ्चभिलिभिः ।

मतद्वयचिशेषज्ञैः वर्ज्यभीससमञ्जसैः ॥ ५३ ॥

तथा चोकम् ।

दृष्टव्यैः द्वुतज्येष्ठैः त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ।

माध्यस्थ्यादिगुणैपैतैः भवितव्यं परीक्षकैः ॥ ५४ ॥

अलाभे पैतेनापि पर्याप्तम् ।

नार्थसंविधिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणः ।

न वृष्टदोषा मध्यस्था न व्याध्यार्ता न दूषिताः ॥ ५५ ॥

वादिनौ स्पर्धयेद् बुलो सभैः सारेतरेक्षिभिः ।

राजा च विनियन्तव्यौ तत्सानिर्थं पूर्थान्यथा ॥ ५६ ॥

आज्ञाग्रामीर्यशात्त्वविवेकनिधिभर्तुकाम् ।

सभामानिविशेषेयादनिशं बहुमायिकाम् ॥ ५७ ॥

अज्ञाततरव्यवेतोभिः दुराग्रहमलीमसैः ।

युद्धभेद भवेत् गोष्ठां दण्डावण्ड काचाकचि ॥ ५८ ॥

हैं, जिन का अध्ययन बड़ा चढ़ा है, तथा जो तटस्थता आदि गुणों से युक्त है ऐसे तीन या पाँच परीक्षक (सभासद) होने चाहिए । यदि (ऐसे अधिक परीक्षक) न मिलें तो एक भी काफी होता है । सभासद (वादी अथवा प्रतिवादी से) उन के मामलों में संबंधित (कर्जदार या सहूकार) न हों, वे उन के रिश्तेदार न हों, मित्र न हों तथा शाश्वत भी न हों, वे दोष देखनेवाले, ऐग से दुखी या अन्य दोष से दूषित न हों, तटस्थ हों । (अनुमान का) सार तथा निस्तार होना जाननेवाले सभासदों से घिरा हुआ राजा वादी तथा प्रतिवादी में वाद कराये, राजा उन्हें नियन्त्रित भी करे (स्वैर बताव न करने दे) अन्यथा उस का समीप होना व्यर्थ होगा । ऐसी सभा में जाना चाहिए जिस का स्वामी (राजा) आज्ञा देनेवाला, गम्भीर, उदार, व विवेकशील हो । ऐसी सभा में कभी न जाये जिस में बहुतसे नेता हों (यदि बहुतसे नेता होते हैं तो उन में आपस में न पठने पर वाद में विज्ञ आते हैं) । जिन के मन में तत्त्वों का ज्ञान नहीं है, जो दुराग्रह से मछिन हैं ऐसे लोगों के साथ चर्चा करने में छप्पे मार कर तथा केश घसीट कर लडाई ही होती अ.ग.६

उक्ते च ।

राजा विष्णवाथको यज्र सभ्याश्वासमधुतयः ।

तत्र वादं न कुर्वित सर्वक्षोऽपि यदि स्वयम् ॥ ५७ ॥

[९३. पक्षपातनिन्दा]

अथथार्थं ब्रुवता सभ्यसमाप्तीनो निन्दा निष्पत्ते ।

युक्तायुक्तमतिक्रम्य पक्षपाताद्वदेद् यदि ।

व्रह्मचन्द्रादधिकं दुःखं नरकेषु समश्नुते ॥ ६० ॥

व्रह्मचन्द्रानां च ये लोका ये च श्रीबालव्रातिनाम् ।

मित्रदुहां कृतचन्द्रानां ते ते स्युक्तेवतोऽत्यथ ॥ ६१ ॥

पक्षपाताद् वदेद् योऽपि गुणदोषातिलक्ष्मात् ।

सोऽपि व्रह्मविदातेन यद्दुःखं तदभजत्यस्ते ॥ ६२ ॥

अपि च । अपूज्या यज्र पूज्यन्ते पूज्यानामघमानना ।

तत्र दैवकृतो दण्डः सद्यः पतति दारणः ॥ ६३ ॥

है (वास्तविक विचारविमर्शी नहीं हो सकता) । कहा भी है – जहाँ राजा, माडबड़ी पैदा करता हो तथा सभासद् समान भाव न रखते हों (पक्षपाती हों) वहाँ वादी स्थर्यं सर्वज्ञ भी ही तो वाद न करे (क्यों कि ऐसे वाद के पक्षपात से निर्णय होता है, वादी के ज्ञान का कोई उपयोग नहीं होता) ।

पक्षपात की निन्दा

आसत्य बोलनेवाले सभासद् तथा सभापति की निन्दा इस प्रकार की जाती है । यदि (सभापति या सभासद्) योग्य और अयोग्य को छोड़ कर पक्षपात से बोलता है तो वह ब्राह्मण की हत्या करनेवाले से भी अधिक दुःख चरक में प्राप्त करता है । असत्य बोलनेवाले को वही गति प्राप्त होती है जो ब्राह्मण की हत्या करनेवालों को, खी तथा बच्चों की हत्या करनेवालों को तथा मिश्रों की हत्या करनेवाले कुतश्च लोगों को प्राप्त होती है । सुण और दोष को छोड़ कर जो भी पक्षपात से बोलता है वह कोई भी हो, उसे वही दुःख प्राप्त होता है जो ब्राह्मण की हत्या करनेवाले को मिलता है । और भी कहा है – जहाँ पूज्य लोगों का अपमान होता है और अपूज्य लोगों का आदर होता है वहाँ तत्काल दैवकृत दण्ड का आधार होता है । जहाँ जहाँ विद्वानों

विद्वयोगैरविद्वांसो यत्र यत्र प्रपूजितः ।
 तत्र सद्यः सतां सूत्युः अर्थहनिः ग्रजायते ॥ ६४ ॥
 व्याधिः पीडा मनोग्लानिरनाकृष्टिभैर्यं ततः ।
 पक्षपातं चिना तत्त्वज्ञानिनं मानयेद् भृशम् ॥ ६५ ॥
 राज्ये सप्ताङ्गसंपत्तिरायुःसौख्याभिवर्धनम् ।
 सुवृष्टिः सुफलं क्षेममारोग्यं तत्प्रपूजनात् ॥ ६६ ॥
 यो दद्यादाथयात्रादिं तत्त्वयाथात्मवेदिने ।
 त भुक्त्वा याति निर्वाणमन्वेष्यो भवसंततिः ॥ ६७ ॥
 कुत पतत् । अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाधयः ।
 इश्वरियवृहि यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वचः ॥ ६८ ॥
 इत्युक्तत्वात् ॥

(इष्टोपदेश श्लो. २३)

[१४. वादिप्रतिवादिनौ]

वादिलक्षणसुच्यते ।
 विदितस्वपरैतिह्यः कवितापत्तिपत्तिमान् ज्ञानी वाग्मी ।
 अनुयुक्ते प्रतिवक्ता कृतपक्षपरिव्रहो वादी ॥ ६९ ॥

के साथ अविद्वानों का भी आदर हो वहां तत्काल सञ्जनों की सूत्यु तथा धन की हानि होती है, तथा रेण, दुःख, मन की उदासी, अनाकृष्टि और भय होता है। इस लिए पक्षपात न करते हुए तत्त्वज्ञानी का बहुत सम्मान करना चाहिए। तत्त्वज्ञानी के आदर से राज्य में सतों ऊंगों की प्राप्ति होती है, आयु और सुख बढ़ता है, अच्छी वर्षी होती है तथा कल अच्छा मिलता है, सर्वत्र कुशल तथा आरोग्य रहता है। तत्त्वों के वास्तविक ज्ञान को जो आश्रय, अन आदि देता है वह उपभोग प्राप्त कर अन्त में निर्वाण प्राप्त करता है, दूसरे लोग संसार की परंपरा में ही अमणि करते रहते हैं। ऐसा क्यों कहते हैं? कहा भी है— अज्ञान की उपासना से अज्ञान प्राप्त होता है तथा ज्ञानी के आश्रय से ज्ञान मिलता है, यह वचन सुप्रसिद्ध है कि जिस के पास जो हो वही वह दे सकता है।

वादी और प्रतिवादी

अब वादी का लक्षण कहते हैं— अपने तथा दूसरे (प्रतिपक्षी) के

प्रतिवादिलक्षणसुन्नयते ।
 शास्त्रो स्वपरपथः कविताप्रतिपक्षमान् ।
 अनुय दूरस्त्रो वादे प्रतिवादी प्रशस्तवाक् ॥ ७० ॥
 इति चतुरङ्गानि ॥

[९५. चतुर्विधे वादे तात्त्विकवादः]

इदानी चातुर्विध्यसुच्यते ।
 तात्त्विकः प्रातिभूष्य नियतार्थः परार्थनः ।
 यथाशास्त्रं प्रवृत्तोऽयं विवादः स्थान्वितुर्विधः ॥ ७१ ॥
 तत्र तात्त्विक उच्यते ।
 यत्रैता न प्रयुज्यन्ते निष्फलाइलजातयः ।
 उक्ता अपि न दोषाय स वादस्तात्त्विको भवेत् ॥ ७२ ॥
 यावन्तो दूषणाभासास्ते शास्त्रे छलजातयः ।
 से चात्मपरतत्त्वस्य सिद्ध्यसिद्ध्योरहेतवः ॥ ७३ ॥

वृत्तान्त को जाननेवाला, कविता को समझनेवाला, सहनशील, बोलने में निपुण, प्रश्न किये जाने पर उत्तर देनेवाला तथा किसी पक्ष का जिसने स्वीकार किया है वह वादी होता है । अब प्रतिवादी का लक्षण कहते हैं — सहनशील, अपने तथा दूसरे (प्रतिपक्षी) के पक्ष को जाननेवाला, कविता को समझनेवाला, प्रश्नसमीय वचनों का प्रयोग करनेवाला तथा वाद में (वादी के कथन को) दुहरा कर उस में दोष बतानेवाला प्रतिवादी होता है । इस प्रकार (वाद के) चार अंगों का वर्णन पूरा हुआ ।

तात्त्विक वाद

अब (वाद के) चार प्रकारों का वर्णन करते हैं । शास्त्र के अनुसार होनेवाला यह विवाद चार प्रकार का होता है — तात्त्विक, प्रातिभ, नियतार्थ संधा परार्थन । उन में तात्त्विक वाद का वर्णन इस प्रकार है । जिस में छल, जाति इत्यादि निष्फल बातों का प्रयोग नहीं किया जाता तथा करने पर भी जहाँ वे (प्रतिपक्षी के लिए) दोष के कारण नहीं होते उस वाद को तात्त्विक वाद कहते हैं । शास्त्र में जितने छूठे दूषण हैं वे छल, जाति आदि अपने सत्त्व को सिद्ध करने को लिए या प्रतिपक्षी के सत्त्व को असिद्ध बताने के

तात्त्विकवादे अथपराजयब्यक्ष्यस्था कश्यते ।

वादिना साधने प्रोक्ते दोषमुद्भाव्य साधनम् ।
स्वपक्षे प्रतिवादी चेत् वृत्ते वादी निष्ठुते ॥ ७५ ॥
तद्देहती दोषमुद्भाव्य स्वपक्षे साधनं पुनः ।
वर्कु नेशः प्रवादी स्थाल् यदा साम्यं तयोर्भवेत् ॥ ७६ ॥
वादुष्टते साधने दोषो नेश्यते उत्तम् प्रयुज्यते ।
परेण वादिनोक्तारे प्रतिवादी निष्ठुते ॥ ७७ ॥
तदुद्धरणसमर्थ्यभावे साम्यं तयोर्भवेत् ॥

[९६. प्रातिभावादः]

प्रातिभ उच्यते ।

स्यात् पद्यवश्यभावामां मिश्रमिश्राविभेदतः ।
नियतेभास्त्रवदीलां प्रातिभोऽभेदकवर्तमानः ॥ ८४ ॥

लिए कमण नहीं हो सकते । अब तात्त्विक वाद में जय और पराजय की व्यवस्था बतलाते हैं । वादी द्वारा (अपने पक्ष की सिद्धि के लिए) हेतु बताये जाने पर प्रतिवादी उस में दोष बता कर अपने पक्ष में हेतु बताये तो वादी पराजित होता है । यदि वादी द्वारा बताये गये हेतु में दोष बताने के बाद प्रतिवादी अपने पक्ष में हेतु न बता सके तो दोनों में समानता होती है । वादी द्वारा बताये गये हेतु में दोष न दिखाई दे और प्रतिवादी इस दूषण बताये तथा वादी उस इस्तें दूषण का उत्तर दे दे तो प्रतिवादी पराजित होता है । यदि वादी उस इस्तें दूषण का उत्तर न दे सके तो उन दोनों में समानता होती है ।

प्रातिभ वाद

अब प्रातिभ वाद का वर्णन करते हैं । पद्य, गद्य, माषा, मिश्र, अमिश्र, अस्तर आदि के नियमों से अनेक प्रकार का प्रातिभ वाद होता है । वचनों की विशिष्ट रचना यह इस का स्वरूप है और यह वक्ता के अन्यास से संभव होता है । असः तत्त्व का निर्णय करनेवालों के लिए उस की कुछभी उपयोगिता नहीं है । (अस्तुतः इसे वाद न कह कर काव्यप्रतिभा की स्पृही कहना चाहिए; एक वादों ही अक्षरों का प्रयोग कर लोक लिखना, लक्ष

वचोगुणफिदीषोऽयं वक्तुरभ्याससंभवी ।
तत्त्वनिर्णयकर्तृणां न तस्यैषोपदोगिता ॥ ७८ ॥

[९७. नियतार्थवादः]

नियतार्थ उच्चते ।

हेतुदृष्टान्तदोषेषु प्रतिक्षातैकदोषतः ।
नियतार्थः प्रतिक्षातकक्षायां भङ्गवाहनम् ॥ ७९ ॥
प्रातिभे नियतार्थे था जयः स्याभियमोक्तिः ।
नियमस्य विद्यातेज भङ्गे थादिग्रवादिभोः ॥ ८० ॥

[९८. परार्थनवादः]

परार्थन उच्चते ।

प्रतिवाचानुलोक्येन भूपसभ्यार्थेन था ।
परार्थमो भवेद् वादः परस्येव्यानुष्ठानतः ॥ ८१ ॥

विषय का पब में वर्णन करना, लालित विषय का गथ में वर्णन करना, दो भाषाओं के मिश्रण से रचना करना आदि प्रकारों की स्वर्धाएं राजसभाओं में प्रायः होती थीं ।

नियतार्थ वाद

अब नियतार्थ वाद का वर्णन करते हैं । हेतु अथवा दृष्टान्त के दोषों में किसी एक दोष (को बतलाने) की प्रतिज्ञा करने पर उस प्रतिज्ञा की परिधि में (प्रतिपक्षी की बात को) निरस्त करना यह नियतार्थ वाद है (प्रतिपक्षी का हेतु असिद्ध बतला कर मैं उसे पराजित करूँगा अथवा विश्वद्व बतला कर पराजित करूँगा इस प्रकार नियम कर के उसी के अनुसार प्रतिपक्षी को उत्तर देना यह नियतार्थ वाद का स्वरूप है) । प्रातिभ वाद में साथा नियतार्थ वाद में नियम के अनुसार बोलने पर वादी-प्रतिवादी का विजय होता है तथा नियम तोड़ने पर पराजय होता है ।

परार्थन वाद

अब परार्थन वाद का वर्णन करते हैं । प्रतिवादी के अनुसार जो स्वीकार करने से अथवा राजा या किसी सभासद के निवेदन पर जो वाद

परार्थं तात्त्विकस्थेव स्यातां जयपराजयौ ।
कथाया अवसानोऽपि जयाजयसमाप्तिः ॥ ८२ ॥

[९९. पत्रलक्षणम्]

इदानीं पत्रावलम्बनविविधः । पत्रलक्षणमुच्यते ।
मात्सर्थेण विवादस्य दूसौ वादिप्रवादिनोः ।
पत्रावलम्बनं तत्र भवेत्तात्त्वयत्र कुञ्चित् ॥ ८३ ॥
तस्मतप्रसिद्धाङ्गं गृह्णार्थं गृदस्तत्त्वकम् ।
स्वेषुप्रसाधकं वाक्यं निर्दीर्घं पत्रमुक्तम् ॥ ८४ ॥
प्रसिद्धावयवं गृह्णपदप्रायं सुशब्दकम् ।
स्वेषुप्रसाधकं वाक्यं निर्दीर्घं पत्रमुक्तम् ॥ ८५ ॥
उत्तमं च । प्रसिद्धावयवं वाक्यं स्वेषुस्यार्थस्य साधकम् ।
साधुगृहपदप्रायं पत्रमाहुरनाकुलम् ॥ ८६ ॥ (पत्ररीत्या पृ. १)

होता है उसे परार्थन कहते हैं क्यों कि वह दूसरे को इच्छा के समाने से होता है । परार्थन वाद में जय-पराजय के नियम तात्त्विक वाद के समान होते हैं तथा जय अथवा पराजय में समान होने पर कथा (उस चर्चा) का अन्त होता है ।

पत्र का लक्षण

अब पत्र के सम्बन्ध में विचार करें । पत्र का लक्षण इस प्रकार है— वादी तथा प्रतिवादी में मासर से युक्त (प्रतिपक्षी पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से सहित) विवाद हो वहाँ पत्र का आश्रय लिया जाता है, अन्यत्र कहीं भी नहीं । वह वाक्य निर्दीर्घ तथा उत्तम पत्र होता है जो उस उस मत में (पत्र का प्रयोग करनेवाले वादी के मत में) प्रसिद्ध अंगों से युक्त हो, जिस का अर्थ तथा तात्पर्य गूढ हो तथा जो अपने इष्ट तत्त्व को सिद्ध करता हो । जिस में प्रसिद्ध (अपने मत की रीति के अनुसार) अवयव हों, जिस के शब्द-अच्छे किन्तु प्रायः गूढ हो तथा जो अपने इष्ट तत्त्व को सिद्ध करता हो । उस वाक्य को निर्दीर्घ पत्र कहते हैं । कहा भी है—प्रसिद्ध अवयवों से युक्त, अपने इष्ट अर्थ को सिद्ध करनेवाला तथा अच्छे किन्तु प्रायः गूढ शब्दों से बना हुआ वाक्य निर्दीर्घ पत्र होता है ।

[१००. पत्रस्थ अङ्गानि]

पञ्चावयवाद् यौगश्चतुरो मीषासिराद्य संख्यात्तीय ।

जैनो ही स च बौद्धस्वेके देतुं निरुपयति ॥ ८७ ॥

अपि च जैनमते

चित्रायदन्तराणीयमरैकान्तात्मकत्वतः ।

यदित्थे च तदित्थे स यथा किञ्चिदिति चयः ॥ ८८ ॥

(पञ्चावयवाृ १०)

पत्र के अंग

पत्र (में वर्णित अनुमान वाक्य के पाच अवयव होने चाहिएं ऐसा नैयायिक कहने हैं, मीमांसक चार, सौल्य तीन, जैन दो तथा बौद्ध केवल छेतु इस एक ही अवयव को आवश्यक समझते हैं । कहीं कहीं जैन मत में भी (यहाँ की एक पर्किं का अर्थ नीचे देखिए) जो ऐसा नहीं है वह ऐसा नहीं होता जैसे अमुक ये तीन अवयव होते हैं (उदाहरणार्थ-जो चूमकुक नहीं है वह अग्नियुक्त नहीं होता जैसे सरोवर । और यह वैसा है ऐसा कहने पर चार अवयव होते हैं (उदा०-आँर यह पर्किं चूमयुक्त है) । इसलिए वह ऐसा है ऐसा कहने पर पाच अवयव होते हैं (उदा०-इसीलिए यह पर्किं अग्नियुक्त है) ऐसा वर्णन भी पाया जाता है ।

(चित्रात् आदि पर्किं का स्थृणीकरण-यहाँ के तीन शब्दों का स्थृणीकरण विद्यानन्द स्वामी के कथनानुसार इस प्रकार है-चित्र अर्थात् एक, अनेक, भेर, अभेर, निय, अनिय आदि विविधताओं को अतिरिक्त अर्थात् व्याप्त करता है वह चित्रात् अर्थात् अनेकान्तात्मक है; यदन्त का अर्थ विश्व है क्यों कि सर्वनामों की गणका में विश्व शब्द के बाद यद् शब्द आता है, यद् जिसके बाद में आता है वह यदन्त अर्थात् विश्व शब्द है; राणीय अर्थात् कहने योग्य क्यों कि रा धातु का अर्थ शब्द करना यह होता है; यदन्तराणीय अर्थात् यदन्त इस शब्द द्वारा कहने योग्य अर्थात् विश्व; यदन्तराणीयम् चित्रात् अर्थात् विश्व अनेकान्तात्मक है; आरेका अर्थात् संशय, अरेकान्त अर्थात् प्रयेष क्यों कि न्याय-दर्शन के प्रथम सूत्र में वर्णित सोलह पदार्थों में प्रमेय के बाद संशय शब्द

तथा चेदमिति ग्रोके नात्वारोऽवयवा मताः ।

तस्मात् तथेति निर्देश पञ्च पत्रस्य कस्यचित् ॥ ८९ ॥ (जार्युक)

इति निर्देशोऽप्यस्ति ॥

[१०१. पत्रस्वरूपम्]

आयन्ते वा पदान्वस्मिन् परेभ्यो विजिणीषुणा ।

कुतश्चिदिति पञ्च स्थालीके शास्त्रे च रुद्धितः ॥ ९० ॥ (पत्रगीता पृ. १)

मुख्यं पदान्वयं वाक्यं किप्यामारोप्यते लिपेः ।

पञ्चस्थत्वाच्च तस् पत्रम् उपचारोपचारतः ॥ ९१ ॥

तस् पत्रेण कीरक्षेण भवितव्यगित्युक्ते वक्ति ।

सौवर्णी राजते ताङ्गे भूर्जपत्रमधारम् ।

स्वेषुप्रस्ताथकं पत्रं राजद्वारे शुभावहम् ॥ ९२ ॥

का उल्लेख है; अरिकान्तात्मकत्व अर्थात् प्रमेपात्मकत्व अर्थात् प्रमेयत्व; अरिकान्तात्मकत्वतः अर्थात् प्रमेयत्व के कारण; इस प्रकार पूरे वाक्य की तात्पर्य हुआ—यदमत्तराणीयम् (विश्व) चिन्नात् (अनेकान्तात्मक है) अरिकान्तात्मकत्वतः (व्याख्या के बहु विश्व प्रमेय है, सब प्रमेय अनेकान्तात्मक होते हैं अतः विश्व अनेकान्तात्मक है । ।

पत्र का स्वरूप

विजय की इच्छा रखनेवाला (वादी) प्रतिवादी से अपने पदों (शब्दों) की इस में किसी तरह रक्षा करता है (गूढ़ शब्दों का प्रयोग कर के प्रतिवादी रो अपने वाक्य की रक्षा करता है) इस लिए इसे (इस गूढ़ वाक्य को) लोगों के व्यवहार में तथा शास्त्र चर्चा में रुद्धि के कारण पत्र कहते हैं (प = पद तथा त्र = ग्रन्थक अतः पत्र = पदों का रक्षक ऐसा यही शब्द-छेद किया है) । मुख्यतः वाक्य शब्दों से बनता है, लिपि में वाक्य होने का आरोप किया जाता है (वाक्य के शब्द लिपि में अंकित किये जाने पर व्यवहार से उन लिपि चिह्नों को भी वाक्य कहा जाता है) तथा ये लिपि-चिह्न पत्र पर अंकित होते हैं अतः उपचार के भी उपचार से उस पत्र को भी वाक्य कहते हैं (और इस तरह वादी द्वारा प्रयुक्त गूढ़ वाक्य को पत्र पह सज्जा मिलती है) । वह पत्र कैसा होता चाहिये यह पुछने पर उत्तर

श्रीतालं खरतालं वा पत्रं स्वेष्टार्थसाधकम् ।

वितस्तिहस्तमात्रं वा राजद्वारे शुभावहम् ॥ ९३ ॥

[१०२. पत्रविचारे जयपराजयौ]

शातपत्रार्थको विद्वान् पत्रस्थमनुमानकम् ।

अनूद्य दूषणे शूद्याक्षान्यदर्थान्तरोक्तिः ॥ ९४ ॥

अङ्गीकृतं वस्तु विद्वाय विद्वान् भीते प्रसंगान्तरमर्थमाह ।

तदास्य शुल्वा वचनोपरोर्धं स्वपक्षसिद्धाविलोपे यत्तेत ॥ ९५ ॥

पत्रार्थं न विजाताति यदि संपूर्णलतां परः ।

सोऽपि सम्यग् वदेत् स्वार्थं ततो दूषणभूषणे ॥ ९६ ॥

असंबोधेताप्रसिद्धिर्हैः पत्रः र्थदेवनम् ।

प्रवादिनो न जायेत ताष्ठता न पराजयः ॥ ९७ ॥

देते हैं । अपने इष्ट तत्त्व को सिद्ध करनेवाला शुभसूचक पत्र सोने का, चांदी का, तबि का अथवा भूजैष्टका हो सकता है, उसे राजसमा के द्वार पर (प्रस्तुत किया जाता है) । राजसमा के द्वार पर शुभसूचक पत्र अपने इष्ट अर्थ को सिद्ध करनेवाला होना चाहिये, वह श्रीताल अथवा खरताल शूक्ष का भी हो सकता है, वह एक बालिक्त या एक हाथ लम्बा होना चाहिये ।

पत्र के विषय में जय और पराजय की व्यवस्था

पत्र के अर्थ को जान कर (प्रतिपक्षी) विद्वान् पत्र में वर्णित अनुमान को दुहराएं तथा उस में दोष चताये, अन्य चर्चा न करे क्यों कि वह (दूसरे विषय की चर्चा करना) विषयान्तर होगा । (पत्र में) ली हुई बात को छोड़ कर (प्रतिपक्षी) विद्वान् (पराजय के) डर से विषयान्तर करके कोई वाक्य कहे तो उस के बोलने को रोक कर दूसरा (पत्र का प्रयोग करनेवाला बादी) अपने पक्ष को सिद्ध करने का प्रयत्न करे । पुछने पर सी यदि प्रतिपक्षी पत्र के अर्थ को न समझ लो बादी अपने अर्थ को योग्य रीति से बतलाये, उस के बाद दोष और गुणों की चर्चा की जाय । संकेतरहित (वे शब्द जिन का विशिष्ट अर्थ में प्रयोग कर्त्तव्य है) अथवा अप्रसिद्ध (वे शब्द जिन का प्रयोग प्राक् नहीं होता) शब्दों के कारण प्रतिपक्षी पत्र के अर्थ को न समझ सके तो उन्ने से ही उस का पराजय नहीं होता ।

[१०३. वादजल्यौ]

साधनं दूषणं चाहि सम्यगोव प्रयुज्यते ।

पक्षवैपक्षयोर्यस्मिन् स वादः परिकीर्तिः ॥ ११ ॥

पस्मिन् विचारे पक्षविषयोर्यथाक्रमप् सम्यक्साधनदूषणे एव प्रयुज्यते स विचारो वाद इति परिकीर्त्यते । उक्तो वादः । इदानीं जल्य उक्त्यते ।

सम्यगोव तद्वाने तदाभासोऽपि युज्यते ।

पक्षवैपक्षयोर्यत्र स जल्यः परिभाष्यते ॥ १२ ॥

यत्र विचारे पक्षविषयोर्यथाक्रमं सम्यगोव साधनदूषणे प्रयुज्यते, तथोरपरिक्षाने साधनदूषणाभासावपि प्रयुज्यते स विचारो जल्य इति परिभाष्यते ॥

[१०४. कथाचतुर्थक्रम्]

उक्तो जल्यः । इदानीं तथोः वित्तण्डे उच्यते ।

विषयस्त्रापनाहीनौ वादजल्यौ प्रकीर्तितौ ।

वित्तण्डे इति शास्त्रेषु न्यायमार्गेषु सद्बुधैः ॥ १०४ ॥

वाद और जल्य

जिस में पक्ष में और विपक्ष में योग्य साधनों और योग्य दूषणों का ही प्रयोग किया जाता है उसे वाद कहते हैं। अर्थात् जिस विवारक्रिमर्शी में अपने पक्ष में योग्य साधनों का ही प्रयोग किया जाता है तथा प्रतिपक्ष में योग्य दूषण ही दिये जाते हैं उसे वाद कहा जाता है। इस प्रकार वाद का वर्णन हुआ। जल्य का वर्णन करते हैं। जिस में पक्ष और विपक्ष में योग्य साधनों और योग्य दूषणों का ही प्रयोग किया जाता है किन्तु उन योग्य साधन-दूषणों का ज्ञान न होने पर साधनाभास तथा दूषणाभास का भी प्रयोग होता है उसे जल्य कहते हैं। अर्थात् जिस विचारक्रिमर्शी में अपने पक्ष में योग्य साधनों का ही प्रयोग किया जाता है किन्तु योग्य साधन न सूझने पर साधनाभास का भी प्रयोग किया जाता है तथा प्रतिपक्ष में योग्य दूषण ही दिये जाते हैं किन्तु योग्य दूषण न सूझने पर दूषणाभास भी प्रयुक्त किये जाते हैं उसे जल्य कहा जाता है।

कथा के चार प्रकार

अपर जल्य का वर्णन किया । अब उन दोनों (वाद और जल्य) की

वादः प्रतिपक्षस्थापनाहीनो यदि तद् वादवितण्डा । जल्योऽपि विपक्ष-
स्थापनाहीनश्चेत् जल्यवितण्डा स्यादिति न्यायमार्गेषु सद्बुधैः उद्योग-
करादिभिः चतुर्वाक्यान्तर्भावाः कथाः परिकीर्तिसाः । तत्र

बीतरागकथे वादवितण्डे निर्णयान्तर्भावाः ।

विजिगीषुकथे जल्यवितण्डे तदभावतः ॥ १०५ ॥

वादवादवितण्डे बीतरागकथे अवश्यतः । गुरुशिष्यैः विशिष्टविद्वदभिक्षु-
श्रेयोऽर्थिभिः तत्त्वव्युत्पत्तुभिः अमत्सरैरन्यतरपक्षनिर्णयपर्यन्तं क्रियमाण-
त्वात् । जल्यजल्यवितण्डे विजिगीषुकथे स्याताम् । वादिप्रतिवादिलभा-
पतिग्राहिकाङ्गत्वात् । लाभपूजार्थातिक्रमैः समत्सरैः तत्त्वव्याप्तिसंर-

वितण्डाओं का वर्णन करते हैं । जिस वाद और जल्य में प्रतिपक्ष की स्थापना
नहीं की जाती उन्हें अच्छे विद्वान् न्याय-मार्ग के शास्त्रों में वितण्डा कहते
हैं । अर्थात् वाद में यदि प्रतिपक्ष की स्थापना न हो तो वह वादवितण्डा
होती है तथा जल्य में प्रतिपक्ष की स्थापना न हो तो वह जल्यवितण्डा
होती है ऐसा न्याय के मार्ग में अच्छे विद्वानों ने — उद्योगकर आदि ने कहा
है, इस प्रकार कथा के चार प्रकार होते हैं (वाद, वादवितण्डा, जल्य तथा
जल्यवितण्डा) । इन में वाद तथा वादवितण्डा (तत्त्व के) निर्णय होने तक
की जाती है अतः ये बीतराम कथाएँ हैं तथा जल्य और जल्यवितण्डाएँ उस
का अभाव है (तत्त्व का निर्णय मुख्य न हो कर वादी का जय अथवा
पराजय मुख्य है, वादी का जय होते ही वह समाप्त होती है) अतः ये
कथाएँ विजिगीषु कथाएँ हैं । वाद तथा वादवितण्डा ये बीतराम कथाएँ हैं
क्यों कि ये गुरुशिष्यों में अथवा उन विशिष्ट विद्वानों में होती हैं जो कल्याण
के इच्छुक, तत्त्व ज्ञाने के लिए उत्सुक तथा मत्सर से दूर होते हैं, ये
कथाएँ एक पक्ष के निर्णय होने तक की जाती हैं (इन में किसी की हारं
या जीत का प्रश्न नहीं होता, कौनसा तत्त्व सत्य है यह निर्णय होता है) ।
जल्य और जल्यवितण्डा ये विजिगीषु कथाएँ हैं, इनमें वादी, प्रतिवादी, समा-
पति तथा ग्राहिक (परीक्षक सभासद) ये चारों ओंग होते हैं, लाभ, आदर-
तथा कीर्ति की इच्छा रखनेवाले मत्सरी वादी (अपने पक्ष के) तत्त्ववर्णन के
रक्षण के लिए ये कथाएँ करते हैं तथा प्रतिवादी के पराजय तक ही ये कथाएँ

अणार्थिभिः प्रतिवादिस्तरुमसावधयर्यन्तं निर्वापनात्माव । तदि अस्तिद्वय-
गच्छिमो विषयित् कथाचलुष्टयम् अच्चीकथत् ॥

[१०५. कथात्रितयम्]

तथा प्रमाणतर्कसाधनोपालभः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चवयवोपपन्नः
पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः (न्यायसूत्र १-२-१) छलज्ञानिनिप्रहस्यान
साधनोपालभः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चवयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो
ज्ञात्यः । जल्प पक्ष प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा । तत्त्वज्ञानार्थं वादः ।
सत्त्वज्ञानसंरक्षणार्थं जल्पवितण्डे वीजप्रयोहसंरक्षणार्थं कण्ठिकशास्त्रा-
वरणवत् । तथा हि । जल्पवितण्डे विभिन्नीषुविषये तत्त्वज्ञानसंरक्षणार्थे-

की जाती हैं । इस प्रकार किसी श्रेष्ठ विद्वान् ने कथा के चार प्रकारों का
चर्णन किया है ।

कथा के तीन प्रकार

जिस में प्रमाण और तर्क के द्वारा साधन और दूषण उपस्थित किये जाते
हैं, जो सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं होता, पाँच अवयवों से संपन्न होता है तथा
पक्ष और प्रतिपक्ष को स्वीकार करके किया जाता है उसे वाद कहते हैं ।
जिस में छल, जाति, तथा निप्रहस्यानो द्वारा भी साधन और दूषण दिये
जाते हैं, जो सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं होता, पाँच अवयवों से संपन्न होता
है, तथा पक्ष और प्रतिपक्ष को स्वीकार करके किया जाता है उसे जल्प
कहते हैं । जल्प में ही यदि प्रतिपक्ष की स्थापना न की जाय तो उसे
वितण्डा कहते हैं । वाद तत्त्व के ज्ञान के लिए होता है । जिस प्रकार बीज
से निकले हुए अंकुर के रक्षण के लिए कौटोभरी बाढ़ लगाई जाती है उसी
सरद तत्त्वज्ञान के संरक्षण के लिए जल्प और वितण्डा होते हैं । जल्प और
वितण्डा विजय की इच्छा से किये जाते हैं, क्यों कि वे तत्त्वज्ञान के संरक्षण
के लिए होते हैं, चार अर्गों से (वादी, प्रतिवादी, समापति तथा समाख्यों
से) संपन्न होते हैं, साम, सकार तथा कीर्ति के इच्छुक लोगों द्वारा किये
जाते हैं, मरसरी वादियों द्वारा किये जाते हैं, प्रतिवादी की गळती होते ही
समाप्त किये जाते हैं, छल इत्यादि से सहित होते हैं, इस सब के उदाहरण
की रूप में श्रीहर्ष की कथा (जल्प और वितण्डा) समझनी चाहिए ।

त्वात् चतुरङ्गत्वात् लाभपूजार्थातिकार्यः प्रवृत्तत्वात् समस्तरैः कृतत्वात् प्रतिवादि भूलितमात्रपर्यवसानत्वात् उलादिरहितत्वात् श्रीद्वर्षकथावस् । तथा वादस्तत्वाध्यवसायसंरक्षणरहितादिमान् चतुरङ्गादिरहितत्वात् श्रीद्वर्षकथावस् इति पूर्वपूर्वप्रसाध्यत्वे इतरे पञ्च हेतुत्वेन व्रष्टव्याः । तदसकलहेतुसमर्थनार्थं च वादस्तत्वाध्यवसायसंरक्षणरहितादिमान् अधिजिगीयुषिष्यत्वात् श्रीद्वर्षकथावत् इत्यपरः कश्चित् तार्किकः कथावर्यः प्रत्यतिष्ठिपत् तदेवत् सर्वं क्रमेण विचार्यसि ॥

[१०६. वादलक्षणखण्डनम्]

तत्र प्राचीनपक्षे साधने दूषणं चापि सम्भगेष ग्रयुज्यते इति वादलक्षणम् असमझसम् । वादिना पश्चेद्दत्तद्वान्तदोषवर्जितसत्साधनोऽन्यासे प्रतिवादिनः सदृशूणोदभावनासंभवात् । प्रतिवादिनाव्याप्तिपक्ष-

(इस के प्रतिकूल) वाद में तत्त्व के निश्चय का संरक्षण आदि उपर्युक्त बातें नहीं होतीं, क्यों कि चार अंगों से संभग होना आदि उपर्युक्त बातें उस में नहीं होतीं, इस के उदाहरण के रूप में श्रीहर्ष की कथा (वाद) समझनी चाहिए । इन उपर्युक्त (तत्त्व का भरकक होना आदि पाँच) बातों में पहली साध्य हो तो वाद की उस की साधक हेतु होती है ऐसा समझना चाहिए । इन सभी हेतुओं का समर्थन इस प्रकार होता है — वाद में तत्त्व के निश्चय का संरक्षण आदि बातें नहीं होतीं क्यों कि वह विजय की इच्छा से नहीं किया जाता उदाहरणार्थं — श्रीहर्ष की कथा (वाद) । इस प्रकार किसी दूसरे तार्किक (तर्कशास्त्रज्ञ विद्वान्) ने तीन कथाओं की स्थापना की है । अब इन सब बातों का क्रमशः विचार करेंगे ।

वाद के लक्षण का खण्डन

उपर्युक्त वाद—लक्षण में पहले पक्ष से यह कहा है कि वाद में साधन और दृष्टण उचित हों तो ही उस का प्रयोग किया जाता है—यह कथन सुसंगत नहीं है । जब यादी ऐसे उचित साधन (हेतु) का प्रयोग करे जिस में पक्ष, साध्य या दृष्टण का कोई दोष न हो तो प्रतिवादी उस हेतु में उचित दृष्टण नहीं बतला सकता । यदि प्रतिवादी कोई ऐसा उचित दृष्टण बतलाता है जिस से हेतु की व्याप्ति में था पक्ष का वर्ष होने से गठती निष्पत्ति

धर्मसाक्षेत्रिकल्यनिभायकसदूषणोदभावने स्थापनाहेतोः सत्साधनत्वाद्योगाच्च । कथं द्वयोः सम्यक्त्वे जाग्रटीति । यदि यथोक्तसत्साधनोपन्यासेऽपि सदूषणोदभावने दोभवीति तर्हि न किञ्चित् सत्साधने स्थादिति न कस्यापि स्वपञ्चसिद्धिः । सदूषणस्यापि सत्साधनपूर्वकत्वात् तदभावे तस्याच्यभावः स्थादिति सर्वं विश्वलघुते । तस्मादेकविषयसाधनदूषणद्वे केवल आभासेन भवितव्यम् । ननु वादे सत्साधनदूषणोपन्यास इत्यमिप्रायनियमो न वस्तुनियम इति चेन्न । स्थायनाहेतोः सत्साधनत्वमित्यथेप्रतिवादिनः सदूषणोदभावनाभिप्रायायोगात् । इवहेतौ सदूषणोदभावनमित्यथेवादिनः सत्साधनश्रेयोगभिप्रायायोगात्तच । ननु तदभावे वादिप्रतिवादिनोः सत्साधनदूषणप्रयोगोदभावनाभिप्रायो न जाग्रटीति इति

होती हो तो (उस का अर्थ यह है कि) (बादी द्वारा अपने पक्ष की) स्थापना के लिए दिया गया हेतु उचित साधन नहीं हो सकता । दोनों (साधन और दूषण) उचित कैसे हो सकते हैं । यदि ऊपर कहे हुए मकार से उचित साधन का प्रयोग करने पर भी उचित दूषण बतलाया जा सकता हो तो कोई भी साधन उचित नहीं होगा अतः कोई भी अपने पक्ष को सिद्ध नहीं कर सकेगा । उचित दूषण भी तभी संभव है अब उचित साधन ही, यदि उचित साधन का अभाव हो तो उचित दूषण का भी अभाव होवा अतः सब गडबडी हो जायगी । इस लिए एक ही विषय में जो साधन और दूषण प्रयुक्त होते हैं उन में एक आभास ही चाहिए (या तो साधन गलत होगा या दूषण गलत होगा) । यहाँ प्रतिपक्षी कहते हैं कि बाद में उचित साधन और दूषण ही प्रयुक्त किये जाने का (बादी और प्रतिवादीका) अभिप्राय होता जाहिए यह हमारा नियम है, वस्तुनः (उचित ही साधन और दूषण होंगे ऐसा) नियम नहीं है, किन्तु यह कहना ठीक नहीं है । यदि पूल पक्ष की स्थापना करनेवाला हेतु उचित साधन है ऐसा निश्चय होता है तो प्रतिवादी के मन में उचित दूषण बतलाने का अभिप्राय नहीं हो सकता । यदि बादी को यह निश्चय हो कि उस के हेतु में उचित दूषण बतलाया जा सकता है तो उस का अभिप्राय उचित साधन प्रस्तुत करने का नहीं हो सकता । ऐसा न हो तो बादी का अभिप्राय उचित साधन प्रस्तुत करने का नहीं हो सकेगा तथा प्रतिवादी का अभिप्राय उचित दूषण अतलाने

चेन्न। उक्तप्रमेये सत्साधनसद्भावे सदूषणसद्भावे सत्साधनभावः इति प्राणीय शिक्षाकाले निश्चितत्वात्। ततो नाभिप्राय-नियमोऽपि। त वस्तुतिथम् शति स्वयमेव प्रत्यपीपदत् अन्नास्माकं न ग्रयासः। तस्मात् वाइलक्षण्यमयुक्तं परस्य ॥

[१०७. जल्पलक्षणखण्डनम्]

जल्पे तदाभासोऽपि युज्यते इति अयुक्तम्। जल्पस्य चतुरङ्गत्वेन सभामध्ये कियमाणत्वात् तत्र तदाभासप्रयोगमिषेवार्। अतः रुद्धिति चेत् 'स्वर्यं नैवाभिधेयानि छलादीनि सभान्तरे' इत्यभिहितत्वात्। अथ 'एकान्तेन तदा प्राप्ते प्रयोज्यानि पराजये' इत्यभिधानात् तत्प्रयोगो

का नहीं हो सकेगा यह कथन भी ठीक नहीं। अमुक विषय में उचित साधन संबन्ध हो तो उचित दूषण नहीं हो सकता तथा उचित दूषण संबन्ध हो तो उचित साधन नहीं हो सकता यह तो (वे वादी और प्रतिवादी) अध्ययन के समय ही निश्चित कर लेते हैं। अतः (वादी और प्रतिवादी का) अभिप्राय उचित प्रयोग का ही होगा यह नियम भी नहीं हो सकता। वस्तुतः उचित ही प्रयोग होता है ऐसा नियम नहीं है यह आपने स्वर्यं कहा है अतः इसे सिद्ध करने का प्रयास करने की हमें जरूरत नहीं है। अतः (वाद में उचित साधन और उचित दूषण ही प्रयुक्त होते हैं यह) प्रतिपक्षी द्वारा कहा हुआ वाद का लक्षण अयोग्य है।

जल्प के लक्षण का खण्डन

जल्प में साधन और दूषण के आभास का भी प्रयोग होता है यह कथन उचित नहीं। जल्प चार वंगों से (सभापति, सभासद, वादी तथा प्रतिवादी से) संपत्त होता है तथा सभा में किया जाता है अतः जल्प में साधनाभास तथा दूषणाभास के प्रयोग का निषेव है। वह किस प्रकार है इस प्रश्न का उत्तर है कि 'स्वर्यं सभा में छल इत्यादि का उपयोग कभी नहीं करना चाहिये' ऐसा कहा गया है। यहाँ शंका होती है कि 'जहाँ पराजय निश्चित प्रतीत हो वहाँ छल आदि साधनाभास-दूषणाभासों का प्रयोग करना चाहिये' इस कथन से छल आदि के उपयोग का विचार भी मिलता है किन्तु यह कथन उचित नहीं। ऐसे छल आदि का प्रयोग करने

विद्यीयत इसि बोध । तदुद्ग्रावने पराजयस्यावद्यभावित्वेन तत्प्रयोग-प्रयोगात् । ननु अनुद्ग्रावने साम्यं भविष्यतीति किया प्रयुज्यत इसि बोध । सत्साधनदूषणापरिकालात् लक्षाभासप्रयोगोद्ग्रावस्य च वादेऽपि समानत्वात् । इत्थमिद्यापकं जल्पस्य लक्षणम् । किं च 'वर्जनोद्ग्रावने चेतों स्वचाक्यपरवाक्ययोः' इत्थमिद्यामात् तद्वर्जनस्येच विद्यान् च तत्प्रयोगस्य । ननु परवाक्ये तदुद्ग्रावनान्यथानुपपत्तेः जल्पे तत्प्रयोगोऽस्तीति बोध । सत्साधनदूषणापरिकालात् तत्प्रयोगस्य वादेऽप्यविदोषात् ॥

[१०८. वादजल्पयोः अभेदः]

तस्मात् सम्भूत्यनुभवन्त्वात् पत्रस्य भिक्षते जल्पः । तद-

पर अब प्रतिशादी उस का दृष्टित ल्यख्य स्पष्ट करता है तब पराजय निश्चित होता है अतः छल आदि के प्रयोग का विद्यान ठीक नहीं है । यदि प्रतिशादी दोष ने बता सके तो वादी-प्रतिशादी में समानता सिद्ध होगी इस इच्छा से छल आदि का प्रयोग किया जाता है यह कथन भी उचित नहीं । उचित साधन तथा दूषण न सूझने पर साधनाभास तथा दूषणाभास का प्रयोग करना तथा उन्हें बतलाना वाद में भी समान रूपसे पाया जाता है । अतः यह जल्प का लक्षण अतिव्यापक है (उस में वाद का भी समावेश हो जाता है) । 'अपने बाक्यों में छल आदि को टालना चाहिए तथा दूसरे के बाक्यों में इन दोषों को पहचान कर प्रकट करना चाहिए ' इस कथन से भी छल आदि को टालने का ही विधान मिलता है — उन के प्रयोग करने का नहीं । यदि प्रतिपक्षी के बाक्य में छल आदि न हों तो उन्हें पहचानना संभव नहीं; किन्तु जल्प में प्रतिपक्षी के बाक्य में ये दोष पहचानने का विधान है, अतः जल्प में इन का प्रयोग भी होता है यह कथन भी उचित नहीं । उचित साधन और दूषण न सूझने पर साधनाभास-दूषणाभासों का प्रयोग समान रूप से वाद में भी पाया जाता है (अतः इसी कारण से वाद से जल्प को भिन्न बतलाना संभव नहीं है) ।

वाद और जल्प में भेद नहीं है

उपर्युक्त प्रकार से जल्प में भी उचित साधनों और उचित दूषणों का ही प्रयोग होता है अतः वह वादसे भिन्न नहीं है। इसी तरह वादनितण्डा भी जल्प-प्र.प. २

वितण्डाणि वादवितण्डातो न अिद्यते । ततो वादो जल्य इत्यनर्थान्तरम् । तद्वितण्डेऽपि तथा । ततो एव कथाया वीतरागविजिगीषु विषयविभागो नास्त्येक । तथा च प्रयोगः । कथा वीतरागविजिगीषु विषयविभागरहिता ग्रमाणवाक्यसाधनोपालभत्वात् प्रसिद्धविचारवत् । अयमसिद्धो हेतुविति ग्रमाणवाक्यसाधनोपालभत्वात् सत्साधनदूषणोपेतत्वात् चेत्न । वीतो विचारः ग्रमाणवाक्यसाधनोपालभत्वात् ग्रसिद्धविचारवदिति ततु सिद्धेः । तथा जल्यो वीतरागवित्तुवित्त्वाच्च ग्रसिद्धविचारवदिति ततु ग्रसिद्धेः । तथा जल्यो वीतरागवित्त्वाच्च वादवत् । अपि च वादो विजिगीषु कथा वश्वप्रतिपक्षपरिग्रहत्वात् विग्रहस्थानवत्त्वाच्च वादवत् । अपि च वादो विजिगीषु कथा विग्रहस्थानवत्त्वात् विग्रहस्थानवत्त्वात् । अथ

वितण्डाते भिन्न नहीं है । अतः वाद और जल्यमें कोई अन्तर नहीं है तथा उन्हें की वितण्डाओं में भी अन्तर नहीं है । इसीलिए वीतराग कथा तथा विजिगीषु कथा इस प्रकार कथा के विषयों का विभाजनहीं ठीक नहीं है । इसी की अनुमान प्रधीयम के रूप में बतलाते हैं । सर्वत्र प्रसिद्ध विचारविमर्श के समान ग्रमाणवाक्य में भी ग्रमाणवाक्य ही साधन और दूषण होते हैं । अतः कथा में वीतराग कथा तथा विजिगीषु कथा इस प्रकार विषयों का विभाजन नहीं हो सकता यह हेतु (ग्रमाणवाक्य ही साधन और दूषण होना) असिद्ध है यह कथन ठीक नहीं क्यों कि उक्त विचार (कथा) प्रसिद्ध विचारविमर्श के समान ही उचित साधनों और उचित दूषणों से युक्त होता है तथा वह वस्तु के विषय में होता है अतः उस में साधन और दूषण ग्रमाणवाक्य ही हो सकते हैं इस प्रकार उक्त हेतु सिद्ध होता है । इसी प्रकार (वूसण अनुमानप्रधीयम हो सकता है —) जल्य भी वाद के समान वीतराग कथा है क्यों कि वह सिद्धान्त से अविरोधी वस्तु के विषय में होता है, पक्ष और प्रतिपक्ष स्वीकार करके किया जाता है तथा निग्रहस्थानों से युक्त होता है । इसी प्रकार वाद भी जल्य के समान विजिगीषु कथा है क्यों कि वह पक्ष और प्रतिपक्ष स्वीकार कर के किया जाता है, निग्रहस्थानों से युक्त होता है तथा सिद्धान्त से अविरोधी वस्तु के विषय में होता है । वाद निग्रहस्थानों से युक्त होता है यह कथन असिद्ध है यह कहना ठीक नहीं क्यों कि वाद भी जल्य के समान विचार की समाप्ति तक किया जाता है अतः वह निग्रहस्थानों से युक्त होता ही है । वाद और

वादस्य निग्रहस्थानशब्दमें सिद्धमिति चेत्तु । आदो निग्रहस्थानशब्दम्
परिलमानिमद्विचारत्वात् जल्यवद्विति । कथाया अविशेषेण
वीतरागविजिगीषुविवयत्वे 'वीतरागकथे वादवितण्डे निर्णयान्ततः ।
विजिगीषुकथे जल्यवितण्डे तद्भावतः' इत्यर्थं कथाविभागो न जावटीति ॥

[१०९. वादस्य प्रमाणसाधनत्वम्]

अप्रेतनाशपादपक्षे वादः प्रमाणतर्कसाधनोपालभः इत्यत्र प्रमाणं
ज्ञानं न प्रत्यक्षम् । विप्रतिपद्मं प्रति तस्य साधनदूषणयोः असमर्थत्वात् ।
आगमोऽपि तं प्रति तस्यापि तादृशत्वात् । अपि तु अनुमानमेव । तदप्यु-

जल्य दोनों तत्र समाप्त किये जाते हैं जब विचारविमर्श में एक पक्ष का जय
और दूसरी का पराजय होता है, पराजय के कारण को ही निग्रहस्थान कहते
हैं, अतः वाद और जल्य दोनों में निग्रहस्थान होते हैं । कथा में वीतराग तथा
विजिगीषु इस प्रकार का विषयों का विशिष्ट विभाजन नहीं होता इस लिए
‘वाद तथा वादवितण्डा वीतराग कथाएँ हैं क्यों कि वे निर्णय होनेतक की
जाती हैं तथा जल्य और जल्यवितण्डा वे विजिगीषु कथाएँ हैं क्यों कि उन में
निर्णय का अभाव होता है’ वह कथा का विभाजन उचित सिद्ध मही होता ।

वाद का साधन प्रमाण है यह कथन उचित नहीं

पूर्वोक्त नैवायिकों के कथन में वाद को प्रमाण और तर्क इन साधन-
दूषणों से संयन्त्र बताया है । यहां प्रमाण शब्द से प्रत्यक्ष प्रमाण का लापत्ति
नहीं ही सकता क्यों कि विवाद करनेवाले के लिए प्रत्यक्ष-प्रमाण साधन या
दूषण में समर्थ नहीं है (प्रत्यक्ष से ज्ञात वस्तु के विषय में वाद नहीं होता) ।
इसी प्रकार प्रमाण शब्द से आगम प्रमाण का तात्पर्य भी नहीं हो सकता
क्यों कि इस विषय में उस की भी वही स्थिति है (प्रतिवादी के लिए
आगम हारा कोई बात सिद्ध करना संभव नहीं क्यों कि उसे आगम
मान्य नहीं नहीं है) । अर्थात् प्रमाण शब्द से अनुमान का ही तात्पर्य समझना
चाहिए । वह अनुमान भी ऐसा होना चाहिये जिस की व्याप्ति दोनों (आदी
व प्रतिवादी) के लिए प्रमाण से सिद्ध हो तथा जो पक्षवर्भव से युक्त हो ।
अन्यथा वह अनुमान अपने पक्ष की सिद्धि या प्रतिपक्ष के दूषण में समर्थ

भयप्रमाणप्रसिद्धव्याप्तिकं परधर्मत्वविशिष्टम् अहीकर्तव्यम् । अन्यथास्क स्वपरपश्चसाधनदृषणसामर्थ्यायिगात् ॥

[१२०. वादस्य तर्कसाधनत्वम्]

तर्कोऽपि व्याप्तिवलमवलस्य परस्य अनिष्टापादनम् । स चोभय-
प्रमाणप्रसिद्धव्याप्तिकः अन्यतरप्रमाणप्रसिद्धव्याप्तिको वा । प्रथमपञ्चैऽसौ
प्रमाणमेव उभयप्रमाणप्रसिद्धव्याप्तिकत्वात् अनुमानवत् । बीतोऽसौ
तर्को न अवति उभयप्रमाणप्रसिद्धव्याप्तिकत्वात् तद्विति च । द्वितीय-
पञ्चे वादिप्रमाणप्रसिद्धव्याप्तिकः प्रतिवादिप्रमाणप्रसिद्धव्याप्तिको वा ।
तत्र प्राचीनपक्षे विप्रतिपक्षे प्रतिवादिनं श्रिति तस्य स्वपरपश्चसाधन-
दृषणगोः सामर्थ्यानुपर्याप्तिः तप्रमाणप्रसिद्धव्याप्तिपूर्वकत्वाभावात् । अन्यथा

नहीं हो सकेगा । (अतः वाद का साधन प्रमाण है यह कथन उचित नहीं । दोनों की मान्य व्याप्ति पर आधारित अनुमान प्रमाण ही वाद का साधन होता है ।)

क्या वाद का साधन तर्क होता है ?

(वाद का साधन तर्क होता है यह उपर्युक्त लक्षण में कहा है किन्तु)
तर्क का अर्थ है व्याप्ति के बल से प्रतिपक्षी के लिए अनिष्ट बात को सिद्ध-
करना । उस तर्क की व्याप्ति या तो (वादी और प्रतिवादी) दोनों के लिए
प्रमाण-प्रसिद्ध (प्रमाणरूप में मान्य) होगी अथवा दो में से एक के लिए
प्रमाणप्रसिद्ध (अभा दूसरे के लिए अमान्य) होगी । यहले पक्ष के अनुसार
यदि तर्क की व्याप्ति (वादी-प्रतिवादी दोनों के लिए प्रमाणरूप में मान्य हो तो
यह तर्क भी धूम (से अग्नि के) अनुमान के समान प्रमाण ही होगा (अतः
प्रमाण से भिन्न रूप में उस का उल्लेख करना च्यर्थ होगा) । यह कथन
तर्क नहीं होगा (-प्रमाण ही होगा) क्यों कि यह धूम (से अग्नि के) अनुमान
के समान ही दोनों (वादी-प्रतिवादी) के लिए मान्य व्याप्ति पर आधारित है ।
इसी पक्ष में (दोनों में किसी एक को वह व्याप्ति मान्य हो तो) या तो
उस तर्क की व्याप्ति वादी के लिए प्रमाणप्रसिद्ध होगी अथवा प्रतिवादी के
लिए प्रमाणसिद्ध होगी । इन में से पहले पक्ष में जो विवाद कर रहा है उस
प्रतिवादी के प्रति यह तर्क अपने पक्ष को सिद्ध करने में या प्रतिपक्ष को

सर्वेषामपि स्वप्रमाणप्रसिद्धया स्त्रेषु निष्टुसाधनशूद्यणप्रसंगात् । पराचीन-
पक्षेऽपि प्रतिवादिप्रमाणप्रसिद्धयाप्तिकात् तर्कात् कथं वादी स्वपक्षं
प्रतिष्ठापयेत्, प्रतिपक्षं च निराकुर्यात् । वादिनं प्रति तर्कस्य मूलभूत-
व्याप्तेभावात् । अथ प्रमाणप्रसिद्धयाप्तिकात् तर्कात् परस्य प्रकृत-
दानि: अप्रकृतस्वीकारश्च विधीयत इति चेत् तर्हि तर्कात् विषयशोपालम्ब
एव स्यात्, न स्वपक्षसाधनम् । ननु प्रमाणात् साधनं तर्कादुपालम्बं हति
व्याप्तस्यात् व्याप्त्यात् तत् तथेवेति चेत् ताहे प्रमाणादुपालम्बाभावः
असञ्ज्ञते । अस्तिथात् चेत् । असिद्धाद्युद्भावते प्रमाणोपम्यासदर्शनात् ।

दूषित सिद्ध करने में समर्थ नहीं हो सकता क्यों कि उसकी व्याप्ति (केवल वादी को मान्य है) प्रतिवादी के लिए प्रमाणसिद्ध नहीं है । अन्यथा (यदि केवल वादी की मान्यता से ही उस के पक्ष की सिद्ध हो जाय तो) सभी वादी केवल अपने पक्ष के प्रमाणमूल मानने से ही अपने इष्ट पक्ष की सिद्ध करेंगे तथा अनिष्ट (प्रतिपक्ष) को दूषित सिद्ध करेंगे । दूसरे पक्ष में भी जिस तर्क की व्याप्ति केवल प्रतिवादी को मान्य है (वादी को मान्य नहीं) उस से वादी अपने पक्ष को सिद्ध कैसे करेगा तथा प्रतिपक्ष का निरकरण कैसे करेगा । उस तर्क की मूलभूत व्याप्ति ही वादी को मान्य नहीं है (अतः वह उस से अपना पक्ष सिद्ध नहीं कर सकता) । जिस तर्क की व्याप्ति प्रतिपक्षी को मान्य है उस से प्रतिपक्षी को इष्ट तत्त्व का खण्डन करना तथा उसे अनिष्ट हो उस तत्त्व को स्वीकार करना यह तर्क का कार्य है । यह कहना भी उचित नहीं क्यों कि ऐसा कहने पर तर्क से सिर्फ़ प्रतिपक्ष में दोष बतलाना ही संभव होगा, अपने पक्ष को सिद्ध करना संभव नहीं होगा (जब कि लक्षण-सूत्र के अनुसार तर्क का उपयोग प्रतिपक्षखण्डन तथा स्वपक्ष समर्थन इन दोनों में होना चाहिए) । (मूल सूत्र में प्रमाण-तर्क-साधनोपालम्बं शब्द है इस में) प्रमाण से (स्वपक्ष का) साधन तथा तर्क से (प्रतिपक्ष का) दूषण होता है इस प्रकार क्रमशः व्याख्या करने से यही बात ठीक है ऐसा कहें तो उस का परिणाम यह होगा कि प्रमाण से (प्रतिपक्ष में) दूषण बतलाना संभव नहीं होगा । यह मान्य है ऐसा कहना सी संभव नहीं क्यों कि असिद्ध वादि (हेतुवाभासी के दोष) बतलाने में प्रमाणों का प्रयोग (देखा ही जाता

न तु प्रमाणात् साधनसुपालभम्भ तर्कादुपालभम् एवेति चेष्टा । प्रमाण-
तर्कसाधनोपालभम् इत्यत्र तथाविधिभागनियामकत्वाभावात् । तदयुक्तं
विशेषणम् ॥

[१११. बादस्य सिद्धान्ताविरुद्धत्वम्]

सिद्धान्ताविरुद्ध इत्यत्रापि बादस्य विचारत्वेन वादिप्रतिवादिनोः
सम्भानत्वात् कस्य सिद्धान्ताविरुद्धः स्यात् । न तावद् वादिसिद्धान्ता-
विरुद्धः, प्रतिवादिसिद्धान्तोपमालभय वादिसिद्धान्तविरुद्धत्वात् । न प्रति-
वादिसिद्धान्ताविरुद्धोऽपि, बाद्युपन्यासस्य प्रतिवादिसिद्धान्तविरुद्धत्वात् ।
तात्कुभयसिद्धान्ताविरुद्धः । वादिप्रतिवादिनोः परस्परविरुद्धार्थोपम्यास-
दर्शनात् । ततो न कस्यरपि सिद्धान्ताविरुद्धः स्यात् । तस्मादेतद् विशेष-
णमप्ययुक्तम् ॥

है । प्रमाण से (स्वपक्ष का) साधन हथा (प्रतिपक्ष का) दृष्टण दोनों होते
हैं और तर्क से केवल (प्रतिपक्ष का) दृष्टण होता है यह कहमा भी ठीक
नहीं क्यों कि प्रमाणतर्कसाधनोपालभ इस शब्द में इस प्रकार का विभाजन
करने का कोई नियमित कारण नहीं है । अतः (बाद के लक्षण में) यह
विशेषण उचित नहीं है ।

बाद सिद्धान्त से अविरोधी होता है ?

(उपर्युक्त लक्षण में बाद को) सिद्धान्त से अविरोधी कहा है यही भी
(विचारणीय है कि) बाद में विचारविमर्श होता है अतः वह बादी और
प्रतिवादी दोनों के लिए समान है किर उसे किस के सिद्धान्त से अविरोधी
कहा जाय ? वह बादी के सिद्धान्त से अविरोधी नहीं हो सकता क्यों कि
प्रतिवादी जब अपने सिद्धान्त का वर्णन करता है तो वह बादी के सिद्धान्त
के विरुद्ध होता ही है । इसी तरह बाद प्रतिवादी के सिद्धान्त से अविरोधी
भी नहीं हो सकता क्यों कि बादी का वर्णन प्रतिवादी के सिद्धान्त के विरुद्ध
होता ही है । बाद (बादी और प्रतिवादी इन) दोनों के सिद्धान्ती से
अविरोधी होता है यह कहमा भी सम्भव नहीं क्यों कि वे बादी और प्रतिवादी
परस्पर विरुद्ध अर्थ का वर्णन करते देखे जाते हैं । अतः बाद किसी के भी
सिद्धान्त से अविरोधी नहीं होता । अतः यह विशेषण भी योग्य नहीं है ।

[११२. वादस्य पञ्चावयवत्वम्]

पञ्चावयवोपपन्न इत्यत्र पञ्चभिरवयवैः उपपन्नो निष्पन्न इति वक्तव्यम् । न च सेषां भ्रते पृथिव्यपुतेजोवागुपरमाणुद्यणुकादिव्यतिरेकेण अन्ये अवयवाः सन्ति, न च वादस्तैरुपपन्नः । तस्य पार्थिवाशब्दवित्वा-मात्रात् विवितिपन्नार्थविचाररूपत्वाच्च व्यतिरेके पटष्टल् । अथ प्रतिशादेत्-द्वाहरणोपनयनिगमनाम्यवयवाः तैरुपपन्नो वाद् इति चेत्र । प्रतिशादीनां वाक्यस्वेन शब्दरूपत्वात्, शब्दस्य च तन्मते आकाशगुणत्वैन अवयवरूपता-भवतात् । तथा हि । न प्रतिशादिवाक्यानि अवयवाः शब्दत्वात् वीणावाद-नवत्, स्पशादिरहितत्वात् गुणत्वात् अमूर्तत्वात् रूपादित्वत् । न वाक्योऽप्यवयवैः उपपन्नः अवयववित्वात् अद्रव्यत्वात् अमूर्तत्वात् स्पशादिरहित-त्वात् रूपादित्वत् । किं च । प्रतिशादिवाक्यानाम्यवयवरूपत्वाङ्गीकारे सेषां रूपादिगम्यं चैकाण्यत्मस्याक्षयवित्वं प्रसन्न्यते । तथा हि । प्रतिशादिवाक्यानि

वाद के पांच अवयव

वाद को पञ्चावयवोपपन्न कहा है । यहाँ पांच अवयवों से उपपन्न अर्थात् निर्मित होना यह अर्थ कहना चाहिए किन्तु उन के मत में (न्याय-दर्शन में) पृथ्वी, जल, तेज तथा वायु के परमाणुओं और द्वयणुकों आदि से भिन्न कोई दूसरे अवयव नहीं माने गये हैं तथा वाद इन (परमाणु आदि अवयवों) से निर्मित नहीं होता । वाद पृथ्वी आदि से निर्मित अवयवी नहीं है, वह विचादप्रस्त विषय के बारे में विचार के रूप का होता है, अतः वह कहाँ आदि के समान अवयवों से निष्पन्न नहीं होता । प्रतिशा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन ये पांच अवयव हैं उन से वाद निष्पन्न होता है । यह कहना भी ठीक नहीं क्यों कि प्रतिशा आदि वाक्य होते हैं, वे शब्दों से निर्मित हैं तथा न्याय मत में शब्द को आकाश का गुण माना है अतः उनमें अवयवों का रूप नहीं हो सकता । इसी को अनुमान के रूप में प्रस्तुत करते हैं—प्रतिशा आदि वाक्य अवयव नहीं हो सकते क्यों कि वे वीणावादन आदि के समान शब्द हैं तथा रूप आदि के समान स्पशादि रहित हैं तथा गुण हैं एवं अमूर्त हैं । वाद भी अवयवों से निष्पन्न नहीं होता, वह अवयवी नहीं है, द्रव्य नहीं है; मूर्त नहीं है तथा स्पशादि से रहित है अतः रूप

रुपादिमन्ति अवयविवाद् तस्त्वादिवत् । वादेऽनुभवगमित्वान् वादस्यै
उपपन्नत्वात् पठादिवदिति । तस्मात् तेषाम् अवयवरूपता नाशीकर्तव्या ।
तथा च न वादः पञ्चावयवोपपन्नः स्थात् ॥

[११३. वादानुमानयोर्भेदः]

किं च । प्रतिवादिभिर्वाक्यैरनुमानमेवोपपद्यते, न वादः । अथ
अनुमानमेव वाद इति चेत्त । अनुमानप्रमाणस्य आदृश्यपदेशाभावात् । ततु
परार्थानुमानस्यैव वादृश्यपदेश इति चेत्त । ग्रन्थस्थानुमानानां परार्थानु-
मानत्वेऽपि आदृश्यपदेशाभावात् । अथ आत्मविभुत्ववादः शब्दनित्यत्व-
वादः इति ग्रन्थस्थानुमानानां वादृश्यपदेशोऽस्तीति चेत्त । वादिप्रति-

आदि के समान वह भी अवयवों से निर्मित नहीं है । प्रतिज्ञा आदि वाक्यों
को अवयव मानें तो वे रूप आदि से युक्त सिद्ध होंगे तथा उन से निर्मित
(वाद) को अवयवी मानना होगा । जैसे १ के —प्रतिज्ञा आदि के वाक्य अव-
यव हैं अतः तनु आदि के समान वे भी रूप आदि से युक्त होंगे । वाद
अवयवों से निर्मित है अतः वक्त्वा आदि के समान वह भी अवयवी शब्द सिद्ध
होगा । अतः उन प्रतिज्ञा आदि वाक्यों को अवयव नहीं मानना चाहिए ।
अतः वाद पाँच अवयवों से निष्पत्त नहीं होता ।

वाद और अनुमान में भेद

दूसरी बात यह है कि प्रतिज्ञा आदि वाक्यों से अनुमान प्रस्तुत किया
जाता है — वाद नहीं । अनुमान ही वाद है यह कहना ठीक नहीं क्यों कि
अनुमान प्रमाण को वाद यह नाम भी दिया जाता । परार्थ-अनुमान को ही
वाद यह नाम दिया जाता है यह कहना भी ठीक नहीं क्यों कि प्रथमों में
लिखे हुए अनुमान परार्थ अनुमान होते हुए भी उन्हें वाद नहीं कहा जाता ।
प्रथमों में लिखित अनुमानों को भी आत्मविभुत्ववाद, शब्दानित्यत्ववाद इस
प्रकार वाद यह नाम दिया जाता है यह कहना भी ठीक नहीं क्यों कि
(न्यायदर्शन के लक्षणानुसार) वादी और प्रतिवादी पक्ष और प्रतिपक्ष का
स्वीकार कर के जो विचार करते हैं उसे ही वाद कहा जाता है । दूसरी
बात यह है कि अनुमान अवयवों से बनता है इस कथन में भी पहले कहा

चादिभ्यां पश्चप्रतिपश्चपरिग्रहेण किममाणस्य विचारस्त्रैष चादिपदेशात् ।
किं च । अनुमानस्यापि अवयवैष्टपयवत्वाङ्कारे प्राकृतनाशेषद्वौषः
प्रसञ्जते ॥

[११४. प्रकारान्तरेण पञ्चावयवविचारः]

ननु पश्चसाधनं प्रतिपश्चसाधनतृप्यग्ं साधनसमर्थं दूषणसमर्थं
शब्दद्वौषवर्त्तनमिति अवयवाः पञ्च तैषपयलो बाद इति चेत । पश्चसाधना-
शीलां वाक्यत्वेन शब्दरूपत्वात् प्राकृतनाशेषद्वौषानतिवृत्तेः । किं च ।
यदिना सत्साधनोपन्थासे प्रतिवादिनः सददूषणोद्घावनासंभवेन तृष्णी-
भावे अथवा प्रतिवाद्युद्भावितासददूषणपरिहारेण प्रतिवादिनः तृष्णी-
भावेऽपि पञ्चकस्यानुपरत्तेः कथं तदुषपयत्वं बादस्य । अथवा प्रतिवादिना
सददूषणोद्घावने बादिनः साधनसमर्थसामाधेन प्रतिवादिना स्वप्ने

हुआ संपूर्ण दोष (कि प्रतिज्ञा आदि बाक्य होने से अवयव नहीं हो सकते)
प्राप्त होता है (अतः अनुमान अथवा बाद अवयवों से उपपत्त होता है यह
कथन ठीक नहीं है) ।

भिन्न प्रकार से पांच अवयवों का विचार

अपने पक्ष को सिद्ध करना, प्रतिपक्ष की सिद्धि में दूषण बतलाना,
(अपने) साधन का समर्थन करना, (प्रतिपक्ष के) दूषण का समर्थन करना
तथा शब्द के दोषों को टालना ये पांच अवयव हैं, इन से बाद संपुक्त होता
है यह कथन भी ठीक नहीं । पक्ष का साधन आदि ये पांच अवयव भी
बाक्यही हैं अतः शब्दों से बने हैं अतः पूर्वोक्त सभी दोष यहाँ भी दूर नहीं
होता (इन वाक्यों को भी अवयव नहीं कहा जा सकता) । दूसरी बात यह
है कि जब बादी उचित साधन प्रस्तुत करता है तथा प्रतिवादी उचित दूषण
बतलाना संभव न होने से चुप रहता है, अथवा प्रतिवादी द्वारा बताये गये
झूठे दूषण को दूर करने पर जब प्रतिवादी चुप रहता है तब भी (उस बाद से)
ये पांच अवयव नहीं हो सकते (केवल पश्चसाधन यह एकही अवयव होगा अथवा
पश्चसाधन, प्रतिपक्ष दूषण तथा दूषण गतिहार ये तीन ही अवयव होंगे) अतः
बाद पांच अवयवों से संपुक्त कैसे होगा । अथवा प्रतिवादी के उचित दूषण
बतलाने पर जब बादी अपने पक्ष का समर्थन नहीं कर पात्ते तथा प्रतिवादी

स त्साधनोपन्यासे वादिनः प्रतिपक्षसाधनदूषणसमर्थनयोः अभावेनापि
पञ्चकस्यानुपपत्तेः अव्यापकलं लक्षणास्य । तस्मात् पञ्चावयवोपपत्त
इत्येतदपि विशेषणमयुक्तं परस्य ॥

[११५. वादस्य पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहत्वम्]

पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वाद इत्यपि असम्भवजसम् । कदाचित् स्वस्यापि
नित्यानित्यादिपक्षप्रतिपक्षपरिग्रहस्य विद्यमानत्वेऽपि तस्य वादत्वाभा-
वात् । अथ वादिप्रतिवादिनोः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वाद इति चेत् । सीयत-
सार्थयोः वौग्नेश्वरनितिनोः सर्वेत्रा पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहस्य विद्यमानेऽपि
वादत्वाभावात् । अथ पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहेण विश्वारो वाद इति चेत् ।
स्वस्यैकस्य तत्सम्भावेऽपि वादत्वाभावात् । अथ वादिप्रतिवादिनोः पक्ष-
प्रतिपक्षपरिग्रहेण क्रियमानो हितातो वाद इति चेत् । उल्लिखण्डनो-

अब अपने पक्ष में उचित साथन प्रस्तुत करता है तब वादी उस प्रतिपक्ष के
साधन में दोष नहीं बल्ला सकता तथा उस का समर्थन भी नहीं कर सकता
तब भी इन (स्वपक्षसमर्थन तथा प्रतिपक्षदूषण एवं दूषणसमर्थन) अवयवों
के अभाव में पांच अवयव पूरे नहीं हो सकते अतः इस प्रकार भी वाद का
यह लक्षण अव्यापक ही रहेगा । इसलिए पञ्चावयवोपपत्त यह प्रतिपक्षीद्वारा
दिया हुआ वाद का विशेषण भी अयोग्य है ।

वाद में पक्षप्रतिपक्ष का स्वीकार

पक्ष और प्रतिपक्ष के स्वीकार करने से वाद होता है यह कहना भी
उचित नहीं । किसी किसी समय (एक व्यक्ति) स्वयं ही नित्य-अनित्य जैसे
पक्ष और प्रतिपक्ष का स्वीकार करता है किन्तु वह वाद नहीं होता । वादी
और प्रतिवादी का पक्ष और प्रतिपक्ष स्वीकार करना यह वाद कहताता है
यह कथन भी ठीक नहीं । बौद्ध और सौम्य, तथा नैयायिक और वेदान्ती
इन में पक्ष और प्रतिपक्ष का स्वीकार सदा ही बना रहता है किन्तु उसे
वाद नहीं कहते । पक्ष और प्रतिपक्ष के स्वीकार से किये गये विचार को वाद
कहते हैं यह कथन भी उचित नहीं क्यों कि ऐसा विचार एक व्यक्ति स्वयं
भी कर सकता है । वादी और प्रतिवादी द्वारा पक्ष और प्रतिपक्ष स्वीकार
कर के किये गये विचार को वाद कहते हैं यह कहना भी ठीक नहीं क्यों-

रत्नसङ्गार्थेऽपि शादद्यपदेशाभावात् । अथ पश्चप्रतिपश्चपरिग्रहण साधनाधनं हृषयोऽप्याहेन च वार्तिप्रतिवादिनोः विचारो वाद इति चेत् । हृषय सूत्रे तथाहिष्ठिहेऽप्याभ्यात् । तरमात् लक्षणसूत्रमेतदयुक्तम् ॥

[११६. जल्पलक्षणविचारः]

जल्पलक्षणेऽपि हृलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालभ्य इत्यसंगतम् । हेषां साधनदूषणसामर्थ्ययोगात् । तथा हि । हृलादयो च साधनसमर्थाः साधनाभासात्त्वात् दूषणाभासात्त्वात् । नोपालभ्यसमर्थाऽहं दूषणाभासात्त्वात् कलिपतचौर्यधत् । आभासर्हृलादयः उसत्साधनदूषणात्त्वात् तडतः कसःसाधनदूषणात्त्वात् साधनदूषणयोरप्यनितावात् अभ्यतरपश्चनिर्णयान् कारणत्वात्त्वा शब्दाशापाहितत् । ततो जल्पलक्षणसूत्रमपि युवत्या न समाप्तते ॥

कि जल्प और विलप्ति में ऐसा विचार होने पर भी उन्हें बाद नहीं कहा जाता । पक्ष और प्रतिपक्ष का ग्रहण कर के उचित साधनों और दूषणों को प्रस्तुत करते हुए बार्दा और प्रतिवादा जो विचार करते हैं उसे बाद कहा जाता है यह कथन भी उचित नहीं वर्णों कि बाद के लक्षण के सूत्र में ऐसे विशेषण नहीं दिये गये हैं । अतः यह लक्षण-सूत्र अयोग्य है ।

जल्प के लक्षण का विचार

जल्प के लक्षण में उसे हृल, जाति निग्रहस्थान इन साधनों व दूषणों से संपन्न कहा है यह अनुचित है क्यों कि हृल आदि में साधन या दूषण का सामर्थ्य नहीं हो सकता । हृल आदि दूषणाभास के समान (स्वपक्ष के) साधन में समर्थ नहीं हो सकते क्यों कि वे साधनाभास हैं । हृल आदि (प्रतिपक्ष के) दूषण में भी समर्थ नहीं हैं क्यों कि वे कलिपत चौरी के समान दूषणाभास हैं । हृल इत्यादि आभास हैं क्यों कि वे कलिपत चौरी के समान सत्-साधन या सत्-दूषण नहीं हैं । अहा अथवा शाय के समान हृल आदि भी सत्-साधनों व सत्-दूषणों में समाविष्ट नहीं हैं तथा किसी एक पक्ष का निर्णय भी नहीं करा सकते अतः वे सत्-साधन या सत्-दूषण नहीं हैं । इस प्रकार जल्प के लक्षण का सूत्र भी युक्ति संगत नहीं है ।

[११७. वितण्डालक्षणविचारः]

तदसंभवे स एव प्रतिपक्षस्थापनादीनो वितण्डा इत्यर्थसांगतम्
वादे जल्पे च पक्षप्रतिपक्षयोः पक्षे अव्यतरस्य निराकरणे अपरस्य
साधनप्रयोगमन्तरेण सुप्रतिष्ठितत्वात् अर्थप्रत्यर्थिनोः एकस्य तस्याः
पिण्डप्रहणादिना दौस्ये अपरस्य तदप्रहणमन्तरेण सौस्थ्यसंभवतः ।
वादिना सासाधनोपम्यासे प्रतिवादिनः सदूषणादर्थनेन तृष्णीभावेन
तेन दूषणाभासोऽन्नावने वादिना तत्परिहारे च वादे जल्पेऽपि प्रतिपक्ष-
स्थापनासंभवात् । ननु सोऽपि वितण्डा भविष्यतीति चेत् । एव प्रति-
वादिना स्थापनाहेतुं निराकृत्य तृष्णीमास्ते सा वितण्डा इत्यज्ञीकारात् ।
अत्र तु वादे स्थापनाहेतुनिराकरणाभावेन प्रतिवादुद्ग्रवित्तूषणाभास-
स्थीव निराकृतत्वात् । तावताप्रतिभवा प्रतिवादिनः तृष्णीमासात् केवं

वितण्डा का लक्षण

जल्प के लक्षण में उपर्युक्त असंगति होने से 'वही जल्प प्रतिपक्ष की
स्थापना से राहेत होने पर वितण्डा कहलाता है' यह कथन भी अनुचित
सिद्ध होता है । वाद में और जल्प में भी पक्ष और प्रतिपक्ष में किसी एक
का निराकरण करने से दूसरा पक्ष किसी समर्थक अनुमान-प्रयोग के बिना
भी विजयी सिद्ध होता है; (जैसे न्यायालय में) वादी और प्रतिवादी इन
दोनों में से तरे हुए लोहे के गोले को पकड़ने जैसी परीक्षा से एक पक्ष के
गलत सिद्ध होने पर दूसरा पक्ष वैसी परीक्षा के बिना भी सही सिद्ध होता है
(तात्पर्य - वाद या जल्प में पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों का समान रूप से
समर्थन होना ही चाहिए ऐसा नहीं है, एक पक्ष के पराजय से दूसरे का
विजय स्वतःसिद्ध हो जाता है) । वादी जब उचित हेतु का प्रयोग करता है
और प्रतिवादी उस में उचित दोष नहीं देख पाता तब चुप रहता है (तथा
यदि) प्रतिवादी झूठमूळ दोष बताता है तो वादी उस का उत्तर देता है
(तब फिर प्रतिवादी चुप हो जाता है) इस प्रकार वाद और जल्प में भी
प्रतिपक्ष की स्थापना संभव नहीं है । ऐसे प्रसंग जौ भी वितण्डा कहेंगे यह
कहना भी संभव नहीं क्यों कि जहाँ प्रतिवादी स्थापना के हेतु का निराकरण
कर के ही चुप हो जाता है वह वितण्डा है ऐसा (तैयारिकी का) कथन

कथा स्थात् । न तथेत् जलपवित्राणे तत्त्वदर्शणाभावात् । बाद एवेति वक्तव्यम् । अथ वाऽहं दूषणाभासोदभावना नोपथीयुजसीति चेत् । सत्साधनोपन्यासे सददृष्टिओदभावनस्यासंभवात् । न च व्याप्तिपश्चधर्म-वत्सत्साधनम् सददृष्टिं संभवति । अन्यथा पक्षस्यापि सत्साधनस्या-संभवात् न कस्यापि स्वपक्षस्मिदिः स्थात् । सददृष्टिस्यापि सत्साधन-पूर्वकस्वात् तदभावे तस्याभ्यभावः स्यादिति सर्वे विवलबते । तस्मादेक-विषयसाधनदृष्टियोः पक्षेनाभासेन भवितव्यम् । तत् एव वादेऽपि साधनदूषणाभासप्रयोगोदभावनं प्रतिपक्षस्थापनाभावम् संभाव्यते

है । इस प्रसंग में बाद में स्थापना के हेतु का निराकरण तो नहीं हुआ है, सिर्फ़ प्रतिवादी द्वारा बताये गये छाटे दूषण का ही निराकरण किया है । उस के बाद कुछ न भूलने से प्रतिवादी चुप हुआ है । अतः इस प्रसंग को कौन सी कथा कहेंगे ? जल्प या विंतण्डा नहीं कह सकते क्यों कि उन के लक्षण इस में नहीं हैं । अतः इस बाद ही कहना होगा । बाद में छाटे दूषण नहीं बताये जाते (अतः यह प्रसंग बाद नहीं है) वह कथन भी उचित नहीं है । (अस्तुतः) उचित हेतु का यदि प्रयोग किया गया है तो उस में उचित दूषण नहीं बताया जा सकता (यदि उचित हेतु में भी कोई दूषण बताया जाये तो वह ब्रूटा दूषण ही होगा) । जो उचित हेतु व्याप्ति से युक्त है तथा पक्ष का धर्म है उस में वास्तविक दूषण नहीं हो सकता । अन्यथा (यदि उचित हेतु में भी दूषण वास्तविक होने लगे तो) एक भी हेतु उचित नहीं होगा तथा किसी का भी पक्ष सिद्ध नहीं हो सकेगा । उचित दूषण तभी होते हैं जब उचित हेतु हों; यदि उचित हेतु ही नहीं हैं तो उचित दूषण भी नहीं होगी, इस प्रकार सर्वत्र गडबड़ी ही आयगी । अतः एक ही विषय में जो हेतु और दूषण प्रस्तुत किये जाते हैं उन में से एक अवद्य ही झूठा होता है (यदि हेतु उचित हो तो दूषण झूठा होगा, तथा दूषण सही हो तो हेतु अथेष्य होगा) । अतः बाद में भी साधन तथा दूषण के आभास का प्रयोग एवं बतलाना तथा प्रतिपक्ष की स्थापना का अभाव ही सकता है । अतः जल्प और विंतण्डा के लक्षण अतिव्यापक हैं (उन की कुछ बातें बाद में भी पाई जाती हैं) । यही बात अनुमान-प्रयोग के रूप में बतेलाते-

इत्यसिद्धयत्तकं जल्पवितण्डोर्लक्षणम् । प्रयोगश्चत्रादः छलादिप्रयोगवान्
निग्रहस्थानवचात् परिसमाप्तिप्रद्वित्तादत्ता त् पञ्चप्रतिपक्षप्रिग्रहत्वात्
जल्पविति । तदेतत् निरुपणमयुक्तं परस्य ॥

[११८. जल्पवितण्डयोः तत्त्वाध्यवस्थायस्तथकल्पाभावः]

य शब्दोक्तं—तत्त्वाध्यवस्थायस्तथकल्पार्थं जल्पवितण्डे वीजप्रयोगवल्लभाध्य-
यार्थं कण्ठकशाखावरणवत् इति तदेतत् स्थानवस्थायस्तथकल्प-
सामर्थ्यव्योगात् । तथाहि । जल्पवितण्डे च तत्त्वाध्यवस्थायस्तथकल्प-
असत्साधनदूषणवरयात् निक्षिलदाधकनिराकरणास्तमर्थत्वाच्च अवला-
कलहवत् । न चासत्साधनदूषणत्वमसिद्धं छलजातिनिग्रहस्थानसाधनो-
पालम्भो जल्पः स पक्षं प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा इत्यमिधानात् ।

‘हे ... बाद में छल इत्यादि का प्रयोग होता है क्यों कि वह भी जल्प के
समान ही निग्रहस्थानों से उत्पन्न है, विचारविमर्श की समाप्ति तक चलता है
तथा पक्ष और प्रतिपक्ष को स्वीकार कर किया जाता है । अतः प्रतिपक्षी
(नैवादिकों) का यह (बाद, जल्प और वितण्डा के वर्णन का) कथन
योग्य नहीं है ।

जल्प और वितण्डा तत्त्व के रक्षक नहीं हैं

(न्यायदर्शन का) यह कथन भी उचित नहीं है कि जल्प और
वितण्डा तत्त्व के निश्चय के रक्षण के लिए होते हैं, उसी प्रकार जैसे वीज से
निकले हुए छोटे अंकुर की रक्षा के लिए कॉटोमरी टहनियों का बाढ़ा
उगाया जाता है । जल्प और वितण्डा में तत्त्व के निश्चय की रक्षा का सामर्थ्य
नहीं हो सकता । जल्प और वितण्डा में साधन और दूषण असत् होते हैं
तथा उन में बाधक आक्षेपों को पूरी तरह दूर करने का सामर्थ्य भी नहीं
होता अतः खियों के कलह के समान जल्प और वितण्डा भी तत्त्व के निश्चय
की रक्षा में समर्थ नहीं हो सकते । जल्प और वितण्डा में साधन और दूषण
असत् होते हैं पह हमारा कथन असिद्ध नहीं है क्यों कि न्यायदर्शन में ही
कहा है कि जिस में छल, जाति तथा निग्रहस्थानों द्वारा साधन और दूषण
उपस्थित किये जाते हैं वह जल्प कहलता है तथा उसी में यदि प्रतिपक्ष की
स्थापना न की जाये तो उसे वितण्डा कहते हैं । हमारे उपर्युक्त कथन का

तथा द्वितीयोऽपि हेतुः नासिद्धः । जल्पवितण्डे न निखिलवाधकलिय-
करणसमर्थं असत्साधनदूषणोपेतत्वात् अवलाकलहवत् । छलाद्यो वा न
तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणसमर्थः असत्साधनदूषणत्वात् शापादिवत् । छला-
दीनि असत्साधनदूषणानि अन्यतरयश्चनिर्णयकारकत्वात् अभासत्वाच्च
शापादिवत् । छलाद्यस्तदाभासा इति निरुपितत्वात् नासिद्धो हेतुः ॥

[११९. वादस्यैव तत्त्वाध्यवसायसंरक्षकत्वम्]

कि च । जल्पवितण्डाभ्यां वदनात् वादी तत्त्वाध्यवसायरद्वित एव
परनिर्मुखीकरणे प्रवृत्तत्वात् तत्त्वोपलब्धवादिवत् । तस्मात् वाद एव
तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणसमर्थः प्रमाणतर्कसाधनोपालभत्वात् अतिरेके

दूसरा हेतु (वाधक आक्षेपों को दूर न कर सकना) भी असिद्ध नहीं है ।
जल्प और वितण्डा में सभी वाधक आक्षेपों को दूर करने का समर्थ नहीं
होता क्यों कि लियों के कलह के समान ही उन के साधन और दूषण
असत् होते हैं । छल आदि (जिन का प्रयोग जल्प और वितण्डा में होता
है) असत् साधन व असत् दूषण है अतः शाप आदि के समान वे (छल
आदि) भी तत्त्व के निश्चय के रक्षण में समर्थ नहीं हो सकते । छल इत्यादि
किसी एक पक्ष का निर्णय नहीं कर सकते, वे शाप आदि के समान आभास
हैं अतः उन्हें असत् साधन और असत् दूषण कहा जाता है । छल इत्यादि
आभास है ऐसा न्याय दर्शन में भी कहा है अतः हमारा, यह कथन असिद्ध
नहीं है ।

वाद ही तत्त्व के निश्चय का संरक्षक होता है

जल्प और वितण्डा का प्रयोग करनेवाला वादी तत्त्व के निश्चय से
रहित होता है क्यों कि तत्त्वोपलब्धव वादी के समान वह केवल प्रतिकूलों को
चुप करने के लिए ही बोलता है (अपनी कोई बात सिद्ध करना उस का
उद्देश नहीं होता) । अतः वाद ही तत्त्व के निश्चय के संरक्षण में समर्थ होता
है क्यों कि वह प्रमाण और तर्क द्वारा साधन-दूषणों का उपयोग करता है
जिस के प्रतिकूल कलह होता है (शागड़े में प्रमाण या तर्क का उपयोग नहीं
होता अतः वह तत्त्व के निश्चय के संरक्षण में समर्थ नहीं है) । वाद का
उपयोग कर बोलनेवाला ही तत्त्व का निश्चय कर सकता है क्यों कि वह दूसरे

वद्विद्यत् । वादेन वद्वेव तत्त्वाध्यवसायी परप्रतिबोधनाय प्रबुद्धत्वात् अभिमत्ततत्त्वानिवृत् ॥

[१२०. जल्यवितण्डयोः विजिग्निषुविषयत्वम्]

यदपि व्यापीरुच्चद् वौगः—जल्यवितण्डे विजिग्निषुविषये तत्त्वज्ञानं संरक्षणार्थत्वात् चतुरङ्गत्वात् च्यतिपूजालाभकामैः प्रबुद्धत्वात् समत्सरैः कृतत्वात् प्रतिबादिशङ्कलितमात्रपर्यवसानत्वात् छलादिमत्वात् लोकप्रसिद्धविचारवत् व्यतिरेके वादविति तत् स्वमनोरथमात्रम् । तत्त्वज्ञानं संरक्षणादिहेतुनां वादेऽपि सद्भावेन व्यभिचारात् । तथा हि । वादः तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थः स्वसिङ्गान्ताविरुद्धार्थविषयत्वात् स्वाभिप्रतार्थव्यवस्थापनकलत्वात् विचारत्वात् पश्चप्रतिपक्षपरिप्रदृत्वात् निश्चहस्थानवत्वात् परिसमाप्तिमद्विचारत्वात् जल्यवत् । तथा अतुरङ्गो वादः लाभप्रतिपक्षी () को समझाने में प्रबुद्ध हुआ है, जैसे कोई भी मान्य तत्त्वज्ञानी होता है ।

क्या जल्य और वितण्डा विजय के लिए होते हैं ?

नैयायिकों ने जो यह कहा है कि जल्य और वितण्डा विजय की इच्छा से किये जाते हैं क्यों कि वे तत्त्वज्ञान के संरक्षण के लिए होते हैं, उन के चार अंग होते हैं, कीर्ति, सम्पादन आदि लाभ की इच्छा रखनेवाले ही उन में प्रबुद्ध होते हैं, मासरी वादी उन में भाग लेते हैं, प्रतिवादी की गलती होती ही वे समाप्त होते हैं तथा वे छल आदि से शुक्र होते हैं, इन सब बातों में वे जल्य और वितण्डा लोगों में सुप्रसिद्ध विचारविमर्श के समान हैं, वाद में ये सब बातें नहीं पाई जाती—यह नैयायिकों का कथन उन की कल्पना—मात्र है (वस्तुतः उचित नहीं है) । ऐसा कहने का कारण यह है कि तत्त्वज्ञान का संरक्षण करना आदि ये सब हेतु वाद में भी विद्यमान हैं अतः उस हेतु व्यभिचारी हैं (वे अत्यवितण्डा इस पक्ष में तथा वाद इस विपक्ष में दोनों में पाये जाते हैं) । इसी को स्पष्ट करते हैं—वाद तत्त्व के निश्चय के संरक्षण के लिए होता है क्यों कि अपने सिद्धान्त से अविरोधी अर्थ उस का विषय होता है, अपने लिए इष्ट अर्थ की स्थापना करना यह उस का फल

पूजाल्पत्रातिकामैः प्रकृतो वादः समरसरैः कियते वादः प्रतिवादिस्त्वलित-
भाष्यपर्यवस्थानो वादः छलादिमान् वादः विचारत्वात् पश्चप्रतिपश्चापदिग्रहा-
न्वितत्वात् निग्रहस्थानवस्थात् परिसमाप्तिगत्वात् सिद्धान्ता-
विशदार्थे विषयत्वात् स्वाभिप्रेतार्थव्यवस्थापनकलत्वात् अत्यबिति-
यज्ञसाध्येषु प्रत्येकं षट् हेतुबो द्रष्टुत्याः ॥

[१२१. उक्तहेतुनां निर्दोषता]

सर्वत्र विप्रतिपत्तिनिराकरणेन स्वपक्षसौहर्द्यकरणमेव स्वाभि-
प्रेतार्थः तदृश्यवस्थापनफलं वादे अत्येऽपि समानम् । अन्यहेतुबः अङ्गी-
कृताः परैः वादे अत्येऽपि । ततश्च उक्तहेतुनां पक्षे सदूभावात् न से-
इत्याविद्या त्यगिकरणात्मित्यात्, पक्षस्य प्रमाणसिद्धत्वात् नाशया-

होता है, वह विचारविमर्शी होता है, पक्ष और प्रतिपक्ष स्वीकार कर के किया
जाता है, निग्रहस्थानों से युक्त होता है, तथा विचारविमर्शी की समाप्ति
तक किया जाता है, इन सब बातों में वह अत्यर के समान ही है । वाद वार
अंगों से संवेदन होता है, लाभ, कीर्ति, सत्कार आदि की इच्छा रखनेवाले
वाद में प्रवृत्त होते हैं, मानसी वादी-प्रतिवादी वाद करते हैं, प्रतिवादी की
गलती होती ही वाद समाप्त किया जाता है, वाद छल आदि से युक्त होना
है ये (उपर्युक्त कथन में) पांच साध्य हैं, इन में से प्रत्येक के समर्थन के
लिए छह हेतु दिये जाते हैं वे इस प्रकार हैं—वाद विचारविमर्शी है, वह पक्ष
और प्रतिपक्ष स्वीकार कर के किया जाता है, वह निग्रहस्थानों से युक्त होता
है, विचारविमर्शी की समाप्ति तक किया जाता है, सिद्धान्त के अविरोधी अर्थे
उस के विषय होते हैं, तथा अपने इष्ट अर्थ की स्थापना यह उस का फल
है, इन सब बातों में वह अत्यर के समान है (अतः जल्प और वितण्डा
विजय के लिए है एवं वाद विजय के लिए नहीं है यह भेद उचित नहीं है) ।

पूर्वोक्त हेतुओं की निर्दोषता

सभी प्रसंगों में विरोधी आक्षेपों को दूर कर के अपने पक्ष को उचित
सिद्ध करना यही वादी को अभीष्ट बात होती है उस की व्यवस्था करना यह
फल वाद और जल्प दोनों में समान है । शेष हेतु वाद और अत्य दोनों में
है यह प्रतिपक्षियों ने (नैयायिकों ने) भी स्वीकार किया है । यह पूर्वोक्त हेतु
प.प.४

सिद्धाः । पक्षे सर्वत्र ग्रन्थान्वात् न भाष्यासिद्धाः । पक्षे निश्चितत्वात् नाक्षात्सिद्धाः न संदिग्धासिद्धात् । विपरीते निश्चिताद्विजामावाभावात् न विरुद्धाः । विपक्षे बुद्धिविरहितत्वात् अनैकान्तिकाः । सपक्षे सत्त्वात् वान्ध्यवसिताः । पक्षे साध्याभावावेदकग्रमाणाभावात् न कालात्यया-पश्यिणाः । स्वपक्षे सत्त्विरुपत्वात् परपक्षे असत्त्विरुपत्वात् न प्रकरण-समाः । यथोक्तसाध्यसाधनानां जल्ये स्वभावात् न उष्ट्रान्तोऽधि साध्य-साधनोभयविकल्पो नाध्ययहीनश्च । ततो निर्दुष्टेभ्यो हेतुभ्यः तत्त्वज्ञान-संरक्षणादीनां वादं स्वभावसिद्धं तदुक्तसाधनाभ्यभिभावः विष्फः । लोकप्रसिद्धविज्ञारे तत्त्वज्ञानस्वरूपहेतुलामभावात् साधनशूल्य-

पक्ष (वाद) में विद्यमान है अतः वे स्वरूपासिद्ध नहीं हैं तथा व्यधिकरणा-सिद्ध भी नहीं हैं । यहाँ पक्ष प्रमाणों से छात है अतः वे हेतु आश्रयासिद्ध नहीं हैं । पक्ष में सर्वत्र विद्यमान हैं अतः वे भागासिद्ध नहीं हैं । पक्ष में उन का होना निश्चित है अतः वे अक्षात्सिद्ध नहीं हैं तथा संदिग्धासिद्ध भी नहीं है । विपरीत पक्ष में उन का अविनाभाव संबंध नहीं है यह निश्चित है अतः वे हेतु विरुद्ध नहीं हैं । विपक्ष में उन का अस्तित्व नहीं है अतः वे अनैकान्तिक नहीं हैं । सपक्ष में उन का अस्तित्व है अतः वे अनैव्यवसित नहीं हैं । पक्ष में साध्य का अभाव बतलानेवाला कोई प्रमाण नहीं है अतः वे हेतु कालात्ययापदिष्ट नहीं हैं । स्वपक्ष में इन के तीन रूप हैं (वे पक्ष में हैं, सपक्ष है तथा विपक्ष में नहीं है) तथा विरुद्ध पक्ष में इन के तीन रूप नहीं है अतः वे प्रकरणसम नहीं हैं । पूर्वोक्त साध्य और साधन दोनों ही जल्य में विद्यमान है असः जल्य का दृष्टान्त भी साध्यविकल, साधनविकल या उभयविकल नहीं है तथा आश्रयहीन भी नहीं है । इस प्रकार निर्दोष हेतुओं वे वाद में तत्त्वज्ञान का संरक्षण करना आदि साध्यों का अस्तित्व-सिद्ध होता है इसलिए उन के (नैयायिकों के) द्वारा प्रस्तुत साधन (हेतु) व्यभिचारी हैं (विपक्ष में भी पाये जाते हैं) । लोगों में ग्रसिद्ध विचारविमर्श में तत्त्वज्ञान का संरक्षण करना आदि उक्त हेतु नहीं होते अतः उन का दृष्टान्त भी साधनविकल है । उन के द्वारा कहे गये हेतु वाद में भी पाये जाते हैं अतः उन का व्यतिरेक दृष्टान्त भी साधन-अव्याप्त है । अतः जल्य

च तत्त्विदर्शनम् । अते सदुक्लसाधनाचारा सद्भावात् साधनाभ्याचुत्सो व्यतिरेकदृष्टान्तोऽपि । ततः कथं जलपवितण्डयोविजिगीषुविषयत्वं व्यक्त-
स्पस्त्यम् ॥

[१२२. बादजल्पयोः अभेदः]

किं च जल्पवितण्डे न विद्वदोषीयोम्ये असत्साधनदूषणोपेतत्वात्
कलहत् । छलादयो वा न विद्वदोषीयोम्याः असत्साधनदूषणत्वात्
शापादिवत् । एतेन यद्यपि प्रत्युचिरे यौमाः-बादो न विजिगीषुविषयः
तत्त्वज्ञानसंरक्षणरहितत्वात् चतुरक्षरहितत्वात् लाभपूजाख्यातिकामैः
अप्रवृत्तविद्यत्वात् समत्सरैरकृतत्वात् प्रतिवादिस्वलितमाशापर्यवसान-
त्वात् छलादिरहितत्वात् श्रीहर्षकथावत्, तथा बादः तत्त्वाध्यवसायसंर-
क्षणरहितादिमान् चतुरक्षरहितादित्वात् श्रीहर्षकथावत् इति पूर्वपूर्व-

और वितण्डा विजय के इच्छुकों द्वारा किये जाते हैं (तथा बाद विजय के
इच्छुकों द्वारा नहीं किया जाता — वीतरामों द्वारा किया जाता है) ऐसा
निरूपण आपने किस प्रकार किया है (अर्थात् ऐसा भेद करना प्रामाणिक
नहीं है) ।

बाद और जल्प में भेद नहीं है

(नैयायिकों द्वारा वर्णित) जल्प और वितण्डा विद्वानों की चर्ची में
प्रयुक्त होने योग्य नहीं हैं क्यों कि कलह के समान इन जल्प-वितण्डाओं में
भी असुचित साधन और दूषण प्रयुक्त होते हैं । छल आदि भी विद्वानों की
चर्ची में प्रयुक्त होने योग्य नहीं हैं क्यों कि शाप आदि के समान ये छल
आदि भी असुचित साधन या दूषण हैं । अतः नैयायिकों ने जो यह उत्तर
दिया था कि बाद विजय की इच्छासे नहीं किया जाता, क्यों कि वह तत्त्वज्ञान
का संरक्षण नहीं करता, चार अंगों से संपन्न नहीं होता, लाभ, सत्कार याँ
कीर्ति की इच्छा रखनेवालों द्वारा नहीं किया जाता, मत्सरी वादियों द्वारा नहीं
किया जाता, प्रतिवादी की गलती होते ही समाप्त नहीं किया जाता, छल आदि से
युक्त नहीं होता जैसे श्रीहर्ष की कथा (बाद); तथा बाद तत्त्वज्ञान के संरक्षण
से रहित होता है क्यों कि वह चार अंगों से रहित होता है जैसे श्रीहर्ष की
कथा (बाद) इस प्रकार अहां पहला कथन साध्य हो वही बाद के कथन हेतु

असाध्यत्वे उत्तरोत्तरैककप्रसाध्यत्वे इतरे पञ्च हेतुत्वेन द्रष्टव्या इति—
तमिनरस्तम्। उत्तराकलहेतुमालाया असिद्धत्वात्। कथमिति चेत्
प्राप्तुकप्रकारेण वादे तत्त्वज्ञानसंरक्षणादीनां सद्भावसमर्थनात्। यज्ञा-
न्यत् प्रत्यवातिष्ठिष्ठित् तत् सकलहेतुसमर्थनार्थं वादः तत्त्वज्ञानसंर-
क्षणरहितादिमान् अविजिगीषुविषयत्वात् तदवधिति तद्व्यसिद्धम्। तथा
हि-चादो विजिगीषुविषयः सिद्धान्ताविरुद्धार्थविषयत्वात् स्वाभिप्रेतार्थ-
व्यवस्थापनफलत्वात् विचारत्वात् पश्चप्रतिपक्षप्रिहत्वात् निप्रहस्यान-
वत्वात् परिसमाप्तिमत्कथात्वात् जल्पविद्विति। यत्किञ्चिद् वादे निविद्यते
जल्ये समर्थ्यते परैः तत्सर्वमेतैहेतुभिः वादे समर्थनीयं जल्ये निषेधनीयम्।
तथा अल्पो वीतरागविषयः सिद्धान्ताविरुद्धार्थविषयत्वात् स्वाभिप्रेतार्थ-
व्यवस्थापनफलत्वात् विचारत्वात् पश्चप्रतिपक्षप्रिहत्वात् निप्रहस्यान-

के रूप में समझने चाहियें—यह (सब कथन हमारे उपर्युक्त प्रभाणों से)
खण्डित हुआ क्यों कि उन की पूर्वोक्त हेतुओं की पूरी मालिका ही असिद्ध है।
वह कैसे असिद्ध है इस प्रश्न का उत्तर है कि (हमारे हारा) पहले बताये
गये प्रकार से वाद में तत्त्वज्ञान का संरक्षण करना आदि सब बातों का
अस्तित्व पाया जाता है इस का समर्थन होता है। नैयायिकों ने जो यह और
कहा था कि वाद में तत्त्वज्ञान का संरक्षण करना आदि बातें नहीं होतीं क्यों
कि वह विजय की इच्छा से नहीं किया जाता—यह भी असिद्ध है। जैसे कि—
वाद विजय की इच्छा से किया जाता है क्यों कि वह सिद्धान्त से
अविरोधी विषय के बारे में होता है, अपना इष्ट तत्त्व सिद्ध करना। उस का
फल होता है, वह विचारविमर्श के रूप में होता है, पश्च और प्रतिपक्ष
स्वीकार कर के किया जाता है—इन सब बातों में वह जल्प के समान है। इस
प्रकार प्रतिपक्षी (नैयायिक) वाद में जिन बातों का निषेध करते हैं (अभाव
बतलाते हैं) तथा जल्प में उन बातों का समर्थन करते हैं उन सबका उपर्युक्त
हेतुओं हारा वाद में समर्थन तथा जल्प में निषेध करना चाहिये। जैसे कि—
जल्य वीतरागों द्वारा किया जाता है क्यों कि वह सिद्धान्त से अविरोधी विषय
के बारे में होता है, अपने इष्ट तत्त्व की सिद्ध करना यह उस का फल होता

वेस्वात् परिसमासिमत्कथात्वात् वाक्षविदि। एवं वादजलयोः सद्गु-
साधनदूषणत्वात् अविशेषेण वीतरागविजिगीयुविषयत्वाच्च संभाषणं
वादः संजल्यः विचारः कथा उपन्यास इत्यमर्थान्तरम्। तथा हि शुद्धीत
विषयं प्रति युक्त्या संभाष्यत इति संभाषणं, विप्रतिष्ठनं प्रति युक्त्या
स्थाभिप्रेतार्थवद्वान् वादः, तथा जल्यनं अस्य, सेषां धात्वर्थप्रत्ययार्थयोः
मेवाभावाद्भेद एव। तथा विचारणं विचारः, कथनं कथा, उपन्यसनम्
उपन्यास इति च। इत्यनुमानप्रपञ्चः ॥

[१२३. आगमः]

आसवचनादिजनिलपदार्थकान्तम् आगमः। ये यत्राभिहत्वे सत्य-
वज्ञकः स तत्रासः। तद्वचनमयि शानहेतुत्वादागम एव। तत्रो जाते
तस्याथात्यव्यवहारं भावशुतम्। तस्याथात्यव्यग्रतिपाद्कं वचनं द्रव्यशुतम्।

है, वह विचारदिर्दि ने रूप में लिया जाता है, वह और प्रनिदा स्वीकार
कर के किया जाता है, निग्रहस्थानों से युक्त होता है तथा कथा की समाप्ति
तक किया जाता है—इन सब बातों में वह वाद के समान है। इस प्रकार वाद
और जल्य दोनों में साधन और दुष्पण समान हैं, दोनों समान रूप से वीतराग-
विषय तथा विजिगीयुविषय हैं (विजय की इच्छासे या उस के बिना किये
जाते हैं), अतः वाद, संभाषण, संजल्य, विचार, कथा, उपन्यास ये सब
एकार्थक शब्द हैं। जिससे विरुद्ध पक्ष लिया है उस से युक्तिपूर्वक बोलना
यही संभाषण है, विरुद्ध पक्ष के बादी को युक्तिपूर्वक अपनी इष्ट बात बताना
यही वाद है, जल्यन (बोलना) यही जल्य है, इन सब शब्दों में धातु कति
अर्थं तथा प्रत्यय का अर्थ इन दोनों में कोई भेद नहीं है अतः उन शब्दों के
अर्थ में भी कोई भेद नहीं है। इसी प्रकार विचारण, विचार, कथन, कथा,
उपन्यसन, उपन्यास ये भी एकार्थक शब्द हैं। इस प्रकार अनुमान का विस्तु
कथन यूणि हुआ।

आगम

आस के वचन आदि से उत्पन्न हुए पदार्थों के ज्ञान की आगम कहते
हैं। जो जिस विषय को जानता ही तथा अवज्ञक हो (— धोखा न देता
हो — सत्य बोलता हो) वह उस विषय के लिए आत होता है। आस के

स शास्त्रज्ञवाङ्मेरेन दिवा । तत्राहं द्रष्टव्यविषयम् । आचाराहं सूत्रठाक्षरं
स्थानाहं समवायाङ्म इयाख्यप्रशब्द्यक्षं शालुकथाङ्म् । उपासकाध्ययनाङ्म्
अन्तःकुदशाङ्म् । अनुस्तोपपादकदशाहं प्रश्नव्याकरणाङ्म विपरकसूत्राहं
हृषिवादाङ्मिति द्रष्टव्याङ्मात्रमि । तत्र हृषिवादाङ्मे परिकर्मसूत्रप्रथमानुयोग-
पूर्वचूलिका इति पञ्चाधिकाराः । तत्र पूर्वाधिकारे उत्पादपूर्व-अप्रायणीय-
चीर्णानुप्रवाद-अस्तिनास्तिप्रवाद-शानप्रवाद-सत्यप्रवाद-आत्मप्रवाद-
कर्मप्रवाद-प्रत्याख्यान-चिद्यानुवाद-फल्याण-प्राणावाय-कियाधिशाल-
लोकविन्दुसार-पूर्वधिति चतुर्दश पूर्वाधिकाराः । अङ्गवाह्ये सामाधिक-
चतुर्भिंशतिसतत्र-घन्दना-प्रतिक्रमण-वैनयिक-कृतिकर्म-दशवैकालिक-
उत्तराध्ययन-कल्प-वयवद्वार-कल्पाकल्प-महाकल्प-पुण्डरीक-महापुण्ड-
रीक-अशीतिका-प्रकीर्णकानीति चतुर्दशाधिकाराः ॥

[१२४. आगमाभासः]

अनात्मव वनादिजनितमिथ्याज्ञानमाभायाभासः । अज्ञानदुष्टाभिप्राय-
वाननासः । तद्वचनमध्यागमाभास एव । सर्वे तु खं सर्वे अणिकं सर्वे

बाक्यों को भी आगम ही कहते हैं क्यों कि वे बाक्य आगमज्ञान के कारण
हैं (बाक्य शब्दों से बने हुए अतएव अहं हैं, वे प्रमाण नहीं हो सकते,
किन्तु आगमज्ञान के कारण हेतु से उन्हें उपचार से आगम-प्रमाण कहते
हैं) उन से उत्पन्न तत्त्वों का वास्तविक ज्ञान भाव-शुत कहलाता है । तत्त्वों
के वास्तविक स्वरूप को बतलानेवाले बाक्य द्रव्य-श्रूत कहलाते हैं । द्रव्यश्रूत
के दो प्रकार हैं — अंग तथा अंगज्ञान । अंगों के बारह प्रकार हैं — आचाराग-
से दृष्टिकाद अंग तक वे बारह अंग हैं (नाम मूल में गिनाये हैं) । दृष्टिकाद
अंग में पाँच अधिकार (विभाग) हैं — परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्व
तथा चूलिका । इन में से पूर्व-अधिकार के चौदह भाग हैं — उत्पाद पूर्व से
लोकविन्दुसार तक (जो मूल में गिनाये हैं) चौदह पूर्व हैं । अंगज्ञान के
चौदह अधिकार हैं — सामाधिक से प्रकीर्णक तक (नाम मूल में गिनाये हैं) ।

आगमाभास

अनास के बाक्य आदि से उत्पन्न मिथ्या ज्ञान को आधमाभास कहते
हैं । जो अज्ञान तथा दृष्टिअभिप्राय से युक्त हो वह अनास होता है । उस

निरात्मकं सर्वे शून्यमित्यादि । प्रकृतेभिर्हांस्ततोऽहंकारस्तस्मद् गुणम्
शोऽशकः । तस्मादपि योऽशकात् पञ्चश्च एव भूतानि ॥ इत्यादि ।
अलात्रुनि मञ्जन्ति, आवाणः लक्ष्मने, अन्यो मणिमविन्धत्, तमनङ्गुलि-
राघयत्, उत्तना वै देवगत्या बहन्ति इत्यादि । इति परोक्षप्रपञ्चः । इति
आवप्रमाणनिरूपणम् ॥

[१२५. करणप्रमाणम्—द्रव्यप्रमाणम्]

करणप्रमाणे द्रव्यक्षेत्रकालभेदेन विविधम् । तत्र द्रव्यप्रमाणमिन्द्रि-
यार्थतसंयन्त्वेतुद्वान्तव्यविशब्दार्थेणकेतद्यः भानोऽस्मानावमान
प्रतिमानतत्प्रतिमानगणनायाद्यादि । तत्र भाने योऽशिका-लाखिका-
ग्रान्तसिद्धप्रस्थादि । उन्माने त्रातुलिङ्गवर्तिकातुलादि । अवमाने चतुर-
ङ्गुलचुलुष्टाणे चुटप्रभूते । प्रतिमाने गुआकपादिकाकडिलादि । तत्-

के वाक्यों को भी आगमाभास ही कहते हैं । (अगत में) सब हुख है, सब क्षणिक है, सब निरात्मक है, सब शून्य है आदि वाक्य आगमाभास है । प्रकृति से महान्, महान् से अहंकार, अहंकार से सोलह (तत्त्वों) का समूह तथा उन सोलह में से पाँच (उन्मात्रों) से पाँच भूत (व्यक्त होते) हैं आदि वाक्य आगमाभास है । तूंकी छूती है, पत्तर तैरते हैं, अंवेने रज को बींधा, उस में बिना अंगुली के सतुर्ज ने धाया विरेया, द्रेयों की गायें ललटी बहती हैं आदि वाक्य आगमाभास है । इस प्रकार परोक्ष प्रमाणों का और उसके साथ भाव प्रमाण का वर्णन पूर्ण हुआ ।

करणप्रमाण—द्रव्यप्रमाण

करण प्रमाण के तीन प्रकार हैं — द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण तथा काल प्रमाण । इन्द्रिय और कर्मार्थ तथा उन के सम्बन्ध के हेतु और द्वान्तोपर आधारित शब्द और वर्थ के संकेत आदि को द्रव्यप्रमाण कहते हैं । उस के बिना इस प्रकार हैं — मान, उन्मान, अवमान, प्रतिमान, तत्प्रतिमान तथा आगमाभास । योऽशिका, अर्धमान, मान, सिद्धप्रस्थ आदि मान (धान्यमान) के प्रकार हैं । त्रातु, छिन्न, वर्तिका, तुला आदि उन्मान (तील) के प्रकार हैं । चार अंगुल, चुल्ह, अंगलि आदि अवमान के प्रकार हैं । गुंजा, कौड़ी,

प्रतिमानं कर्त्यपदार्थस्य मूलयं काकिणीविंशाविंशार्धपादपादपणनिष्कादयः
गणनामानं संख्यातासंख्यातामन्त्रमेदात् शिधा । तत्र संख्यातं जघन्य-
मध्यमोक्तुष्टमेदात् श्रिविधम् । असंख्यातमन्तं च परिमितयुक्तद्विक्वार-
मेदात् श्रिविधम् । तथात्मेदं जघन्यात्तामोक्तुष्टमेदात् श्रिविधमिति
गणनामानम् पक्विंशातिभेदभिन्नम् । लिखितसाक्षिभुक्तिस्थापित-
पापाणादयत्वा ॥

[१२६. क्षेत्रप्रमाणम्]

क्षेत्रप्रमाणम् — उत्तममध्यमजघन्यभोगभूमिर्भूजिहरोहुलक्षतिलय-
वाङ्गुलान्यष्टुष्टगुणितानि । द्वादशाङ्गुलैः वितस्तिः । वितस्तिभ्यो
कदिला आदि प्रतिमान (बाट) के प्रकार हैं । खरादनेयोग्य पदार्थ के मूल्य-
को तत्प्रतिमान कहते हैं, जैसे काकिणी, विंश, विंश, अर्धपाद, पाद, पण,
निष्क आदि । गणनामान के तीन प्रकार हैं — संख्यात, असंख्यात और
अनन्त । संख्यात के तीन प्रकार हैं — अवन्य, मध्यम और उत्कृष्ट । असं-
ख्यात और अनन्त के तीन-तीन प्रकार हैं — परिमित, युक्त तथा द्विहत्त
(परिमित असंख्यात, युक्त असंख्यात, असंख्यात असंख्यात, परिमित अनन्त,
युक्त अनन्त, अनन्त अनन्त) । इन में से प्रत्येक के जघन्य, मध्यम और
उत्कृष्ट ये तीन-तीन भेद होते हैं । इन सब को मिलाकर गणनामान के
इककीस प्रकार हैं । इस के अतिरिक्त लिखित (दस्तावेज), साक्षी, अधिकारी
आदि द्वारा स्थापित (सीमा बतावेशाले) पत्थर आदि का भी द्रव्यप्रमाण में
समावेश होता है ।

क्षेत्रप्रमाण

क्षेत्रप्रमाण की गणना इस प्रकार है — उत्तम भोगभूमि, मध्यम भोग-
भूमि, जघन्य भोगभूमि, तथा कर्मभूमि के मनुष्यों के सिर के केश की छौड़ाई
की आठगुणा रुक्ष होता है । कर्मभूमि के मनुष्य के सिर के केश की छौड़ाई^१
की आठगुणा रुक्ष होता है । आठ लक्षों का १ तिल होता है ।

हस्तः। चतुर्हस्तैः दण्डः। द्विसहस्रदण्डैः कोशः। चतुर्कोशैः योजनम्
इत्यादि ॥

[१२७. कालप्रमाणम्]

कालप्रमाणम्—असंख्यातसमयः आवलिः। संख्यातावलिसमूहैङ्ग-
रुच्छासः। सप्तोच्छासैः स्तोकः। सहस्रोकैः लबः। सार्थाष्टुकिंशत्पूर्वैः
घटिका। घटिकाभ्यां मुहूर्तैः। चित्रान्मुहूर्तैः दिनम्। पञ्चदशादिवैः पक्षः।
एकाभ्यां मासः। मासाभ्याम् ऋतुः। ऋतुभिः अयनम्। अयनाभ्यां
संवत्सरः। पञ्चसप्तसरैः शुगम्। द्वादशशत्युगैः भण्डलम्। चत्वारिंशत्-
सहस्राधिकलक्षमण्डलैः पूर्वोक्तम्। पूर्वाङ्गवर्गः पूर्वम् इत्यादि ॥

[१२८. उपमानप्रमाणम्]

उपमानप्रमाणं क्षेत्रप्रमाणं कालप्रमाणं च भवति । तद् यथा—
पल्योपमसारोपमसूच्यङ्गलप्रतराङ्गलधनाङ्गलजगच्छेष्टीजगल्पतरलोका

८ तिल = १ यव; ८ यव = १ अंगुल; १२ अंगुल = १ वितस्ति;
२ वितस्ति = १ हस्त; ४ हस्त = १ दण्ड; २००० दण्ड = १ कोश; तथा
४ कोश = १ योजन होता है ।

काल प्रमाण

काल प्रमाण की गणना इस प्रकार है—असंख्यात समय = १ आवलिः;
संख्यात आवलि = १ उच्छ्वास; ७ उच्छ्वास = १ स्तोक; ७ स्तोक = १
लब; ३८५ लब = १ घटिका; २ घटिका = १ मुहूर्त; २० मुहूर्त = १ दिन;
१९ दिन = १ पक्ष; २ पक्ष = १ मास; २ मास = १ ऋतु; ३ ऋतु = १
अयन; २ अयन = १ संवत्सर; ५ संवत्सर = १ शुग; १३ शुग = १ मंडल;
१ लक्ष ४० हजार मंडल = पूर्विंग; पूर्विंग × पूर्विंग = १ पूर्व ॥

उपमान प्रमाण

उपमान प्रमाण दो तरह का है—क्षेत्र प्रमाण तथा काल प्रमाण । इस
के आठ प्रकार हैं—पल्योपम, सारोपम, सूच्यंगुल, प्रतराङ्गुल, धनाङ्गुल,
जगच्छेष्टी, जगल्पतर तथा लोक । इस में पल्य के तीन भेद हैं—व्यवहारपल्य,

इत्यस्त्रकाराः । तत्र पर्य व्यवहार - उद्धार - अद्धारभेदेन विविधम् । यथाक्रमं संख्यादीपसमुद्रकर्मस्थितिव्यवस्थाप्रकाम् । प्रमाणयोजनोत्सेष्य-विस्तारवृत्तभर्ते उत्तमभोगभूमिजाजकेशान् समखण्डान् शिखां परिहार्य-वर्षशाताभ्से एकेकापनयने वावृतकालेन परिसमाप्तिः वावृतकालसमय-संख्या व्यवहारपल्यम् । व्यवहारपल्यकेशानसंख्यातखण्डान् विधाय तथापनयने तत्काले समयसंख्या उद्धारपल्यम् । उद्धारपल्यकेशान-संख्यातखण्डान् विधाय तथापनयने तत्कालसमयसंख्या अद्धारपल्यम् । पल्यानां संदृष्टिः । १ । एतेषां पल्यानां दशकोटिकोटिसंख्या सागरः । तस्य संदृष्टिः । २ । पल्यक्षेत्रभासात्रपल्यानामन्योन्यात्मासे सूच्यंगुलम् । तस्य संदृष्टिः । ३ । सूच्यंगुलस्य वर्णः प्रतरांगुलम् । तस्य संदृष्टिः । ५ ।

उद्धारपल्य तथा अद्धारपल्य । इन तीनों का उपयोग क्रमशः संख्या, द्वीप-समुद्र तथा कर्मस्थिति के विषय में होता है । एक प्रमाण योजन और उत्तने ही व्यास के गोल गढ़े में उत्तम भोगभूमि में उत्पन्न हुए बकरे के समस्त केशों के बहुत बारीक टुकड़े कर के समनल भर दिये जायें तथा एक एक सौ वर्ष बाद एक एक टुकड़ा निकाला जाय तो जितने समय बाद वह केश समाप्त होंगे उत्तने समय को एक व्यवहारपल्य कहते हैं । व्यवहारपल्य के केशों के असंख्यात टुकड़े कर के उसी प्रकार (सौ सौ वर्ष बाद एक एक टुकड़ा निकाल कर) जितने समय में वे केश समाप्त होंगे उत्तने समय को एक उद्धारपल्य कहते हैं । इस उद्धारपल्य के केशों के असंख्यात टुकड़े कर उसी प्रकार (सौ सौ वर्ष बाद एक एक टुकड़ा) निकालने पर जितने समय में वे समाप्त होंगे उत्तने समय को एक अद्धार पल्य कहते हैं । (ग्रन्थों में उदाहरणों आदि में) पल्य के लिए । ४ । यह संदृष्टि (प्रतीक) उपयोग में आती है । द१ कोटि ५ कोटि पल्यों का एक सागर होता है । सागर का प्रतीक । ५ । यह होता है । एक पल्य के जितने अर्ध छेर होते हैं उत्तने पल्यों का परस्पर गुणाकार करने से एक सूच्यंगुल होता है उस का प्रतीक

सूच्यंगुलस्य घनो घनांगुलम् । तस्य संदृष्टिः । ६ । पत्त्वलेदनानामसंख्या-
त्तेकभावामात्रे घनांगुलानामस्योन्याभ्यासे जगच्छ्रेणिः । तस्य संदृष्टिः । ७ ।

जगच्छ्रेणिः धनों जगत्प्रतरः । तस्य संदृष्टिः । ८ । जगच्छ्रेणिः धनों
लोकः । तस्य संदृष्टिः । ९ । जगच्छ्रेणिः सप्तमभागो रज्जुः । तस्य
संदृष्टिः । १० ॥

[१२९. अपमानंतराभावः]

अथ उपमानार्थापत्त्वभावप्रमाणानि निरूपणीयात्तीति चेत् तत्सर्वे
निरूपितमेव । तत् कथम् । गोसदृशोऽयं गवयः, अनेन सदृशी मदीया
गौः, इत्युपमानस्य सादृश्यप्रत्यभिज्ञानेन, नदी पूर्णार्थप्रसंः अनुमानस्वेन
अभावप्रमितेः प्रतियोगिकशाहकप्रमाणत्वेन निरूपणात् ॥

११। है । सूच्यंगुल का वर्ग प्रत्यंगुल कहलाता है उसका प्रतीक । ४ । है ।
सूच्यंगुल का घन घनांगुल कहलाता है उस का प्रतीक । ५ । है । पत्त्व के
छेदों के असंख्यतर्वै एक भाग में घनांगुलों का पत्त्वर गुणाकार करने से
जगत् श्रेणी प्राप्त होती है । इस का प्रतीक । ६ । है । जगत्श्रेणी का वर्ग
जगत् प्रतर होता है उस का प्रतीक । ७ । होता है । जगत् श्रेणी का घन
लोक होता है । उस का प्रतीक । ८ । है । जगत् श्रेणी के सामने साम को
रज्जु कहते हैं । उस का प्रतीक । ९ । होता है ।

दूसरे प्रमाणों का समावेश

यहाँ उपमान, अर्थापत्ति तथा अभाव इन प्रमाणों का भी वर्णन करना
चाहिये ऐसा कोई कहे तो उत्तर यह है कि इन का वर्णन पहले ही उक्ता
है । यह गवय गाय जैसा है, मेरी गाय इस जैसी है आदि उपमान प्रमाण
का सादृश्य प्रत्यभिज्ञान में अन्तर्भीकृत किया है । नदी को बाढ़ आई है अतः
उपर वर्षी हुई होगी आदि अर्थापत्ति प्रमाण का अनुपान में अन्तर्भीकृत किया
है । अभाव की प्रमिति तथा प्रतियोगी वस्तु के प्रहण करने वाले प्रत्यक्ष में
कोई भेद नहीं है । इस तरह उपमान, अर्थापत्ति एवं अभाव ये पृथक् प्रमाण
नहीं हैं ।

[१३०. उपसंहारः]

भावसेनविद्यार्थी एव विद्यावचारकृतः ।

सिद्धान्तसारशास्त्रे इस्मिन् प्रमाणं प्रत्यपीयवत् ॥ १३० ॥

इति एव यदिग्निरुद्धरश्च श्रीमद्भावसेनविद्याविद्याविद्याले सिद्धान्तसारे मोक्षशास्त्रे प्रमाणनिरूपणं नाम प्रथमः परिच्छेदः ॥

बादी रूपी पर्वती के लिए इन्द्र के समान भावसेन विद्यार्थी ने इस सिद्धान्तसार शास्त्र में प्रमाण का प्रतिपादन किया ।

इस प्रकार प्रतिपक्ष के बादीरूपी पर्वती के लिए इन्द्र सहश्र श्रीभावसेन विद्यादेव द्वारा रचित सिद्धान्तसार मोक्षशास्त्र का प्रमाणनिरूपण नामक पहला परिच्छेद समाप्त हुआ ॥

तुल्ला और समीक्षा

प्रमाण का लक्षण (परि० २)

तर्कशास्त्र के प्रारंभिक युग में प्रमाण शब्द का उपयोग किसी छक्षण के बिना ही किया जाया है। न्यायत्रूपे तथा ऐसा वाचायौः के उल्लेख इसी प्रकार के हैं। वात्स्यायन^१, उमास्वाति^२ तथा पूज्यपाद^३ने प्रमाण शब्द की व्युत्पत्ति बतलाई है। समन्तभद्र ने स्व तथा पर को जाननेवाली बुद्धि को प्रमाण कहा है^४ तथा एकसाथ सब को जाननेवाला सर्वज्ञ का ज्ञान और ऋग्मः होनेवाला स्याद्वाद्-संस्कृत ज्ञान ये उस के प्रकार बतलाये हैं^५। सिद्ध-सेन ने प्रमाण के लक्षण में स्व-पर के ज्ञान में बाधा न होना इस विशेषता का समावेश किया है^६। बौद्ध आचार्यों के प्रमाण-लक्षण में अविसंवादि ज्ञान^७ इस शब्दप्रयोग द्वारा इसी बाधा न होने की विशेषता को स्वीकार किया गया है। मीमांसक आचार्यों ने उस ज्ञान को प्रमाण माना है जो किसी नये (अथवा अज्ञात = अगृहीत = अपूर्व) पदार्थ को जानता हो^८। अकलीक विद्यानन्द तथा माणिक्यनन्दि ने उपर्युक्त लक्षणों का समन्वय करते हुए सब

१. न्यायष्ट्र १-१-१ तथा १-१-२ ।

२. अनुयोगद्वारष्ट्र (स. १३१) इत्यादि ।

३. न्यायभाष्य १-१-३। प्रमीयते अनेनेति करणार्थमिधानो हि प्रमाणशब्दः।

४. सत्त्वार्थभाष्य १-१-२। प्रमीयते अर्थाः तैः इति प्रमाणानि ।

५. सर्वार्थसिद्धि १-१-२। प्रमिलोऽपि प्रमीयते अनेन प्रमिलिमात्रं वा प्रमाणम् ।

६. स्वधम्भूस्तोऽपि ४-३। स्वपरावभासकं यथा प्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम् ।

७. आसमीमांसा १०१। सत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते युगपत् सर्वमासनम् ।

क्रमभावि च यज्ञानं स्याद्वादनवसंस्कृतम् ॥

८. न्यायावतार १। प्रमाणं स्वपरामासि ज्ञानं बाधविवर्जितम् ।

९. प्रमाणशार्तिक २-१। प्रमाणमविसंवादि ज्ञानम् ।

१०. मीमांसाश्लोक वार्तिक में कुमारिलः तत्रापूर्वार्थविवामं भिन्निते बावत-
जितम् । अद्वृकारणारब्दे प्रमाणं लोकसंमतम् ॥

तथा अपूर्वी अर्थ का निश्चय करनेवाले ज्ञान को प्रमाण कहा है^१। हेमचन्द्र ने अपूर्वीर्थप्रहण विशेषण को अनावश्यक समझ कर वस्तु का यथार्थ निष्ठीयही प्रमाण का लक्षण माना है^२। आचार्य भावसेन का पदार्थवाचात्म्य-निश्चय यह लक्षण भी इसीका अनुसरण करता है। नैयायिक विद्वानों ने प्रमाणशब्द की व्युत्पत्ति को ही लक्षण का रूप देने की पद्धति अपनाई है^३। इस में प्रमाण का साधन प्रमाण होता है अतः ज्ञान के साथ साथ इन्द्रिय और प्रदार्थों के सम्बन्ध को भी प्रमाण कहा जाता है। प्रमाण शब्द के रूढ़ अर्थ में विश्वसनीयता का अंश महत्त्वपूर्ण है—विश्वासयोग्य ज्ञान की ही प्रमाणभूत समझा जाता है। बौद्ध और जैन आचार्यों के लक्षण इस अर्थ के अनुकूल हैं। इस पक्ष में प्रमाणशब्द का भावरूप अर्थ प्रसुल है। नैयायिक विद्वान् प्रमाण शब्द के साधन रूप अर्थ पर जोर देते हैं।

प्रमाणों के प्रकार (परि० २)

भावसेन ने प्रमाण के दो प्रकार बतलाये हैं—भावप्रमाण तथा करणप्रमाण; एवं करण प्रमाण के तीन भेदों का (द्रव्य, क्षेत्र, काल) ग्रन्थ के अन्तिम भाग (परि. १२९-२७) में वर्णन किया है। इन चार भेदों का एकत्रित उल्लेख अनुयोगद्वारसूत्र में मिलता है^४ किंतु वही भाव तथा करण यह वर्गीकरण नहीं पाया जाता।

१. अष्टसहस्री पृ. १७५। प्रमाणभविसंशादि ज्ञानमनविगतार्थीविगम-लक्षणत्वात्। परीक्षामुख १-१ स्वापूर्वीर्थ व्यवसायात्मक ज्ञाने प्रमाणम्।

२. प्रमाणभीमासा १-१-२। सम्बगर्वनिर्णयः प्रमाणम्।

३. व्यायकातिकतात्पर्य टीका पृ. २१। प्रमाणाधने हि प्रमाणम्।

न्यायसार पृ. २। सम्बगनुभवसाधने प्रमाणम्।

तत्कथाधा पृ. १। प्रमाणकरणं प्रमाणम्।

न्यायमंजरी पृ. १२। अव्यभिचारिणीमसन्दिग्धाभ्यर्थोपलब्धिं विद्वती बोधा-बोधस्वभावा सामग्री प्रमाणम्।

इस परम्परा में उल्लेखनीय अपवाद उदयन का है, उन्होंने यथार्थ अनुभव को प्रमाण कहा है (यथार्थानुभवो मानम्—न्यायकुसुमांश्लि प्र. ४४०.३)।

४. द्वृत १३१ से किं सं प्रमाणे। प्रमाणे चउद्दिष्टे धरणसे, सं चहृ दृढवप्तमाणे छेत्रप्रमाणे कालप्रमाणे भावप्रमाणे।

प्रत्यक्ष से भिन्न सभी प्रमाणों का परीक्ष इस संज्ञा में अन्तर्भूत करना यह जैन प्रमाणशास्त्र की विशेषता है। प्रायः सभी जैन आचार्यों ने इस का समर्थन किया है^१। अन्य दर्शनों में यह संज्ञा नहीं पाई जाती।

अन्य दर्शनों में प्रमाणों के प्रकारों की जो मान्यताएँ हैं उन का संग्रह निम्नलिखित लोक में मिलता है^२—

ज्ञावीकोऽध्यक्षमेकं सुगतकणमुजौ सानुमानं सशाब्दं

तदृद्वैतं पारमषः सहितमुपमया तत्त्वयं चाक्षणादः ।

अर्थापित्या प्रमाण्डृ वदति स निखिलं मन्यते भट्ट एतत्

सामावै द्वे प्रमाणे जिनपतिसमये स्पष्टतोऽस्पष्टतत्त्व ॥

अर्थात् — चावकि एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण मानते हैं, बौद्ध और वैशेषिक प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो प्रमाण मानते हैं, साह्य प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण मानते हैं, नैयायिक इन तीनों में उपमान प्रमाण और जोड़ते हैं, प्राभाकर मीमांसक इन चारों के साथ अर्थापति पांचवीं प्रमाण मानते हैं और भाइ मीमांसक इन पांच में अमाव यह छठा प्रमाण जोड़ते हैं, जैन मत में सब प्रमाण स्पष्ट (प्रत्यक्ष) और अस्पष्ट (परीक्ष) इन दो भेदों में समाविष्ट हो जाते हैं।

प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण (परि० ३)

प्राचीन आगमों के अनुसार प्रत्यक्ष प्रमाण वह है जिस में केवल (इन्द्रियों की तथा मन की सहायता के बिना ही) ज्ञाता को पदार्थों का ज्ञान होता है^३। इस लिए अत्रधि, मनःपर्यय तथा केवल इन तीन ज्ञानों को ही वे प्रत्यक्ष कहते हैं तथा इन्द्रियों और मन से होनेवाले मति और श्रुत इन

१. नन्दीसूत्र (स. २)। तं समाधिं दुष्टिं पर्णत्वं तं जहा पञ्चकर्त्तं च
परोक्तवं च ॥ तत्त्वार्थसूत्र अ. १ स. ११, १२ । आदे परोक्षम् ।
प्रत्यक्षमन्यत् । इत्यादि ।

२. यह लोक न्यायावली दिग्बन्ध (प. ९-१०) में उद्धृत है ।

३. प्रवचनसार गा. ५८। जं परदो विष्णाणीं तं तु परोक्तव ति भणिदमद्देशु ।
अदि केवलेण वादं इवदि हि वीचेण पञ्चकर्त्तं ॥

दोनों ज्ञानों को परोक्ष कहते हैं^१। सिद्धसेन ने जो परोक्ष नहीं है उसे प्रत्यक्ष कहा है— प्रत्यक्ष की विभिन्नता व्याख्या नहीं की है^२। आगमों की दूसरी परम्परा के अनुसार जब इन्द्रियों और मन से प्राप्त ज्ञान को व्यवहारतः प्रत्यक्ष माना गया तब प्रत्यक्ष के लक्षण में परिवर्तन जखति हुआ। अकलंकदेव ने विशद अथवा स्पष्ट ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा तथा उसे साकार यह विशेषण भी दिया^३। विशद का अर्थीकरण करते हुए कहा गया कि जिस ज्ञान के लिए कोई दूसरा ज्ञान आवारमूल नहीं होता वह विशद अर्थात् प्रत्यक्ष है^४—सूति आदि ज्ञानों के लिए पूर्ववर्ती प्रत्यक्ष ज्ञान आवारमूल होता है इस लिए वे परोक्ष हैं। भावसेन का प्रत्यक्ष लक्षण भी इस व्याख्या के अनुहृत है।

न्यायसूत्र में प्रत्यक्ष उसे कहा गया है जो इन्द्रिय और पदार्थ के सम्बन्ध से उत्पन्न, शब्द वोजन से पूर्ववर्ती, वर्थार्थ तथा निश्चयात्मक ज्ञान होता है^५। किन्तु इस में योगिप्रत्यक्ष तथा मानसप्रत्यक्ष का समावेश नहीं हो सकता। इस लिए वात्स्यायन ने इस सूत्र के इन्द्रिय शब्द में मन का अन्तर्भूति करने का प्रयत्न किया है^६। भास्त्रवेद ने सम्पूर्ण अपरोक्ष अनुभव के साधन को प्रत्यक्ष कहा है^७।

१. तत्त्वार्थसूत्र अ. १ रु. १०१२। मतिंशुदाविभिन्नः पर्यष्टकेवलानि ज्ञानम् । तत्प्रमाणे । आद्ये परोक्षम् । प्रत्यक्षमन्यत् ।

२. न्यायावतार श्लो. ४ । अपरोक्षस्यार्थस्य याहके ज्ञानमीहशम् । प्रत्यक्षमितरज्ञेये परोक्षं यहेऽक्षया ॥

३. न्यायविनिश्चय श्लो. ३ । प्रत्यक्षलक्षणं प्राहुः स्पष्टं साकारमञ्जसा ।

४. परीक्षासुख रु—४ । प्रतीत्यन्तराध्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैश्वरम् ।

५. न्यायसूत्र १-१-४। इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमन्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ।

६. न्यायमार्थ १-१-४ । आत्मादिषु सुखादिषु च प्रत्यक्षलक्षणं वक्तव्यम् । ... मनसंश्लेष्मिद्रियमावात् तत्र वाच्ये लक्षणान्तरभिति ।

७. न्यायसार षु. ७ सम्यग्यपरोक्षानुभवसाधनं प्रत्यक्षम् ।

बौद्ध भावाओं ने शब्दयोजना से पूर्ववर्ती निर्विकल्प ज्ञान को ही अस्यक्ष माना है^१। जैन भावाओं का इस विषय में यह मत है कि बस्तु के निर्विकल्प ग्रहण को दर्शन कहा जाय-ज्ञान नहीं। वह ज्ञान ही नहीं होता अतः प्रमाण भी नहीं हो सकता। निर्विकल्पक प्रत्यक्ष के खण्डन के लिए भावतेर ने निर्विकल्पज्ञान में इन पुरिचलेन (११) लिखा है।

अस्यक्ष प्रमाण के प्रकार (परिं ३-९)

आगमों की प्राचीन परम्परा में अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान तथा केवलज्ञान इन तीन प्रकारों में प्रत्यक्षप्रमाण का विसर्जन मिलता है। इस का अनुसरण कुन्दकुन्द और उमास्वाति ने किया है^२। ये तीनों ज्ञान अती-निर्दिष्ट हैं। इस परम्परा के अनुसार इन्द्रिय और मन द्वारा होनेवाले समस्त ज्ञान परोक्ष हैं। आगमों में मिलनेवाली दूसरी परम्परा के अनुसार उक्त तीन ज्ञानों को भोग्निदिवप्रत्यक्ष कहा है^३ तथा स्पर्शनादि पाच इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान को इन्द्रियप्रत्यक्ष कहा है। उक्त विरोध को दूर करने के लिए जिनभद्रगणी ने इन्द्रियप्रत्यक्ष को संव्यवहारप्रत्यक्ष कहते हुए अवधि आदि ज्ञानों को मुख्य प्रत्यक्ष कहा है^४। अकलेकदेव ने प्रत्यक्ष के तीन प्रकार किये हैं—इन्द्रिय-प्रत्यक्ष, अनिन्द्रियप्रत्यक्ष (स्मृति, प्रत्यभिज्ञा, तर्क और अनुमान ये ज्ञान जब तक शब्दाश्रित नहीं होते तब तक मन द्वारा प्रत्यक्ष जाने आते हैं) तथा अती-निर्दिष्ट प्रत्यक्ष (अवधि आदि तीन ज्ञान)^५। इन में प्रथम दो प्रकारों को

१. प्रत्यक्ष कव्यनामोदमध्यान्तम् (न्यायविभु ४)

२. ये मूळ उल्लेख ऊर उद्धृत कर लुके हैं।

३. अनुषोगद्वारसूत्र (स. १ ४४)। पञ्चकले दुविहे पण्णसे। तं जहा इदिय-पञ्चकले अ गोहंदियपञ्चकले अ। से कि तं हंदियपञ्चकले। हंदियपञ्चकले पञ्चविहे पण्णसे। तं जहा—गोहंदियपञ्चकले चच्छु-रिदियपञ्चकले वाग्मिदियपञ्चकले जिङ्गिभदियपञ्चकले फालिदिय-पञ्चकले। . . . गोहंदियपञ्चकले तिविहे पण्णसे। तं जहा—गोहिणाण पञ्चकले भणपञ्चकले गणपञ्चकले केवलगणपञ्चकले।

४. हंदियमणोभवं अं तं संववशारपञ्चकले। विशेषावदयक माध्य गा, १५

५. प्रमाणसंग्रह शो. १। प्रत्यक्षं विशार्द ज्ञानं तत्त्वज्ञानं विशादम्। इन्द्रिय-प्रत्यक्षमनिन्द्रियप्रत्यक्षमतीन्द्रियप्रत्यक्षं जिवा।

उन्होंने भी संव्यवहारप्रत्यक्ष कहा है। बाद के आचार्यों ने मुख्य तथा संव्यवहारप्रत्यक्ष का यह वर्गीकरण मान्य किया है किन्तु स्मृति आदि को उन्होंने अनिन्द्रियप्रत्यक्ष नहीं माना है^१। भावसेन ने प्रत्यक्ष प्रमाण के जौह चार प्रकार बतलाये हैं उनमें योगिप्रत्यक्ष में अवधि, मनःपर्यय तथा केवलज्ञान का समावेश है अर्थात् प्राचीन आगमिक परम्परा का प्रत्यक्ष और अकलंकदेव आदि की परम्परा का मुख्य प्रत्यक्ष ही वही योगिप्रत्यक्ष कहा गया है^२। इन्द्रियप्रत्यक्ष भी इन पूर्वीनार्थों हारा वर्णित हैं—उद्घातहस्तप्रत्यक्ष एक मार्ग है। मानसप्रत्यक्ष का संव्यवहारप्रत्यक्ष में अभ्यर्थीव किया जा सकता है—उमास्वाति ने भृतज्ञान को इन्द्रिय-अनिन्द्रियनिमित्तक माना है, जिनमध्ये ने संव्यवहारप्रत्यक्ष को इन्द्रियमनोभव कहा है तथा अकलंकदेव ने तो अनिन्द्रियप्रत्यक्ष का स्थष्ट ही वर्णन किया है। किन्तु भावसेन ने मानसप्रत्यक्ष की जो विषयमयदा बतलाई है (आत्मा के मुख, दुःख, हर्ष, इच्छा आदि का ज्ञान ही मानसप्रत्यक्ष का विषय है) वह अकलंकदर्शित अनिन्द्रियप्रत्यक्ष के अनुकूल नहीं है। भावसेन के स्वसंबोद्धनप्रत्यक्ष का भी स्वतन्त्र प्रकार के रूप में वर्णन अन्य जैन ग्रन्थों में नहीं पाया जाता, फिर भी ज्ञान अपने आप को जानता है इस विषय में जैन आचार्य एकमत है^३,

१. लक्षीयस्त्रय स्तो. ४। तत्र संव्यवहारिकमिन्द्रियानिन्द्रियप्रत्यक्षम् ॥
मुख्यमतीनिदियज्ञानम् ।

२. लक्षीयस्त्रय स्तो. १०-११ पर प्रमाचन्द्र की व्याख्या इस दृष्टि से
देखनेयोग्य है।

३. यहाँ दृष्टव्य है कि भावसेन ने योगिप्रत्यक्ष में केवलज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तथा अवधिज्ञान को समाविष्ट किया है, इनमें पहले दो ज्ञान तो सिर्फ़ योगिषो को (महाब्रतधारी मुनिषों को) होते हैं किन्तु अवधिज्ञान एहस्थों को भी होता है। बिनेश्वरसूरि ने प्रमालङ्घ (स्तो. ३) में इसी प्रकार योगिज्ञानशब्द का प्रबोध किया है, यथा— प्रत्यक्षं योगिज्ञानमवधिमनसो गमः । केवल यज्ञिषा प्रोक्तं योगिनां यज्ञिविष्टवतः ॥

४. भावसेन ने विश्वतत्त्वप्रकाश (परि. १८) में इस विषय की वर्चोविस्तार से की है :

प्रमाण के लक्षण में भी उन्होंने स्वप्रसामानि, स्वप्रव्यवसायात्मक जैसे शब्दों द्वारा स्व का ज्ञान समाप्ति किया है।

भावसेन द्वारा वर्णित इन चार प्रकारों के नाम तो बौद्ध ग्रन्थों के अनुकूल हैं^१ किन्तु बौद्ध आचार्यों द्वारा उन का जो स्वरूप बताया गया है वह भावसेनवर्णित स्वरूप से भिन्न है। बौद्धों ने मानसप्रत्यक्ष को वह ज्ञान माना है जो इन्द्रियों द्वारा पदार्थ का ज्ञान होने के बाद के क्षण में उसी पदार्थ के उत्तरक्षणवर्ती सन्तान के बारे में मन को होता है—अर्थात् वे बाया पदार्थों को ही मानस प्रत्यक्ष का विषय मानते हैं। योगिप्रत्यक्ष को बौद्ध आचार्य निर्विकल्प ही मानते हैं। स्वसंवेदनप्रत्यक्ष का स्वरूप भी बौद्ध मत के अनुसार निर्विकल्प है।

न्यायसूत्र में प्रत्यक्ष का जो लक्षण है वह केवल इन्द्रियप्रत्यक्ष का ही है^२। किन्तु उद्घोतकर तथा वाचस्पति ने मानसप्रत्यक्ष तथा योगिप्रत्यक्ष का अस्तित्व स्वीकार किया है^३। वह भी भावसेनवर्णित प्रत्यक्षप्रकारों से भिन्न है क्यों कि ये आचार्य बाया पदार्थों की भी मानसप्रत्यक्ष का विषय मानते हैं। ज्ञान का स्वसंवेदन न्यायदर्शन में मान्य नहीं है अतः इस प्रत्यक्ष प्रकार को वे नहीं मान सकते।

सिद्धसेन ने अनुमान के समान प्रत्यक्ष के भी स्वार्थ और परार्थ ये दो भेद किये हैं^४। किन्तु अन्य आचार्यों ने इस वर्गीकरण की ओर ध्यान नहीं दिया।

१. न्यायविनिदु पृ. १२-१४। कल्पनायोदयमध्यान्तं प्रत्यक्षम्। तच्चतुर्विधम्। इन्द्रियशानम्। स्वविषयानन्तरविषयस्तद्विविधम्। उपनिषद्विविधम्। उपनिषद्विविधम्। सर्वविचित्रचैतानामात्मसंवेदम्। भूतार्थभावनाप्रकृष्टपर्यन्तं योगिशानं वेति।

२. यह लक्षण ऊपर उद्दृत किया है।

३. न्यायवाचिकतात्पर्यटीका पृ. १८३। इच्छादयः खलु वामिको मवनित मानसप्रत्यक्षाद्धाः। पृ. २०३। योगिप्रत्यक्ष स्वर्गादिविषयम्।

४. न्यायवाचतार दली, १२। प्रत्यक्षेणानुमानेन प्रसिद्धार्थप्रकाशनात्। परस्त ददुपायत्वात् परार्थस्वं द्वयोरपि।।

भासवेङ्ग ने प्रत्यक्ष के बोगीप्रत्यक्ष और अबोगीप्रत्यक्ष ये दो प्रकार किये हैं और इन को पुनः सविकल्पक तथा निर्विकल्पक इन प्रकारों में विभाजित किया है^१।

इन्द्रियप्रत्यक्ष (परि० ४)

इस परिच्छेद में इन्द्रियों के प्रकार, आकार तथा विषयों का जो वर्णन है वह मुख्यतः तत्त्वार्थसूत्र की परम्परा के अनुसार है^२।

इन्द्रियों का प्राप्यकारित्व (परि० ५)

न्यायसूत्र के प्रत्यक्षलक्षण के अनुसार^३ इन्द्रियों का पदार्थ से संबंध (समिकर्ष) होने पर प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। तदनुसार न्यायदर्शन में सभी इन्द्रियों के प्राप्यकारी (प्राप्त पदार्थ का ज्ञान करानेवाले) माना गया है।

जौह्र आचार्यों का मत है कि मन, कान तथा आँखें — ये तीन इन्द्रिय अप्राप्यकारी हैं^४—पदार्थ से असंबद्ध रह कर ही ये पदार्थ का ज्ञान कराते हैं।

जैन आचार्यों ने कान को प्राप्यकारी तथा आँख को अप्राप्यकारी माना है^५। भावसेन ने मन का समावेश प्राप्यकारी तथा अप्राप्यकारी दोनों

१. न्यायसार पृ. ७—१३। तद् द्विविधं बोगिप्रत्यक्षमयोगिप्रत्यक्षं चेति ।
... तत्त्वं पुनर्द्विविधम् । सविकल्पकं निर्विकल्पकं च ।

२. तत्त्वार्थसूत्र अ. २ सू. १५—२१। पञ्चेन्द्रियाणि । द्विविधानि । निर्विकल्पकरणे द्वयेन्द्रियम् । लब्ध्युपशोगो भावेन्द्रियम् । स्पर्शनरसनप्राणचक्षुः—ओत्राणि । स्पर्शनरसगन्धवर्णशब्दाः तदर्थाः । शुद्धमनिन्द्रियस्य ।

३. यह लक्षण ऊपर उद्घृत किया है।

४. अग्रासान्यज्ञिमनःश्रोत्राणि । अभिव्यमकोद्य १४४ ।

५. वस्तुतः कान तथा आँख दोनों समान रूप से प्राप्यकारी हैं—ज्ञनितरंग प्राप्त होने पर कान से शब्द का ज्ञान होता है उसी प्रकार प्रकाशकिरण प्राप्त होने पर आँख से रंग का ज्ञान होता है। किन्तु रंग के ज्ञान में प्रकाश के महत्व की ओर जैन आचार्यों का ध्यान नहीं गया है। आँख के प्राप्यकारित्व की चर्चा भावसेन ने विश्वतत्त्वप्रकाश (परि. ६८) में की है।

में किया है — अपने आप के सुख, दुःख आदि के ज्ञान में मन प्राप्तकारी होता है किन्तु लूटि लादि गतेव इनमें न वह अवश्यकता ही होता है। यह बात अन्यत्र हमारे अवलोकन में नहीं आई।

अवग्रह आदि ज्ञान (परिं ६)

यह वर्णन मुख्यतः तत्त्वार्थसूत्र की परम्परा के अनुसार है^१। किन्तु अभ्यस्त विषयों में अवग्रह तथा इहा नहीं होते यह भावसेन का कथन अन्यथा प्राप्त नहीं होता।

योगिप्रत्यक्ष (परिं ७)

सर्वेष्व के ज्ञान में आत्मा और अन्तःकरण के संयोग की जो बात भावसेन में कही है वह जैन परम्परा के अनुकूल नहीं प्रतीत होती^२। संभवतः ऐयायिक परम्परा के प्रभाव से ऐसी शब्दरचना हुई है। इन्द्रियप्रत्यक्ष के वर्णन में भी आचार्य ने इसी प्रकार ‘आत्मा के अवधान तथा अव्यग्र मन के सहकार्य से युक्त निर्दोष इन्द्रिय से प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है’ जैसे शब्दों का प्रयोग किया है।

अवधिज्ञान का विवरण तत्त्वार्थसूत्र की परम्परा के अनुसार है^३।

मनःपर्यायज्ञान (परिं ८)

मनःपर्याय का विवरण तत्त्वार्थसूत्र की परम्परा के अनुसार है^४। किन्तु यह ज्ञान मन द्वारा होता है यह कथन परम्परा के प्रतिकूल है।

१. तत्त्वार्थसूत्र अ. १ सू. १५। अवग्रहेहावायथारणः।

२. अवधि, मनःपर्याय तथा केवल ज्ञान में इन्द्रिय और मन की अपेक्षा नहीं होती— तत्त्वार्थराजवासिक अ. १ सू. १२। इन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षम् अतीत-प्रत्यक्षिकारं साकार्यइण्ठन्युपत्यक्षम्।

३. तत्त्वार्थसूत्र अ. १ सू. २१—२२। मनप्रत्ययोवधिदेवनारकाणाम्। कथोपश्चमनिमित्तः षड्विकरूपः शेषाणाम्।

४. तत्त्वार्थसूत्र अ. १ सू. २३ ऋगुविषुलभट्टी मनःपर्यायः।

स्वसंवेदनप्रत्यक्षः (परि० ९)

इस का विवेचन ऊपर प्रत्यक्ष के प्रकारों में हो चुका है ।

अत्यक्ष के आभास (परि० १०)

इस में अनध्यवसाय को आचार्य ने प्रत्यक्षाभास में नहीं गिनाया है तथा उसे ज्ञान का अभाव माना है । अनध्यवसाय का प्रमाणाभास में अन्तर्भौति वादिरेखसूरि ने किया है^१, उसी का यह खण्डन प्रतीत होता है । भासवैज्ञ ने अनध्यवसाय का अन्तर्भौति संशय में किया है^२ ।

परोक्ष प्रमाण के प्रकार (परि० ११)

ऊपर कहा जा चुका है कि तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार मति और श्रुत (अर्थात् इन्द्रिय और मन से प्राप्त समस्त ज्ञान) ये ज्ञान परोक्ष हैं । इन में श्रुतज्ञान को परोक्ष मानने के विषय में सभी जैन आचार्य एकमत हैं । कुछ लेखकों ने श्रुत की जगह प्रवचन अथवा आगम जैसे शब्दों का प्रयोग किया है इतनाही फर्क है । मतिज्ञान (इन्द्रिय और मन से प्राप्त ज्ञान) को जिनभद्र आदि आचार्यों ने व्यवहारतः प्रत्यक्ष माना है यह ऊपर बता चुके हैं । मतिज्ञान के ही नामान्तर के रूप में स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिवोध इन चार शब्दों का उल्लेख तत्त्वार्थसूत्र में है^३ । अकलेकदेव ले इन शब्दों को क्रमशः स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क तथा अनुमान इन चार शब्दों का बाचक माना है^४ । इस प्रकार परोक्षप्रमाण के पांच भेद होते हैं — स्मृति, प्रत्यभिज्ञान,

१. प्रमाणनयतत्त्वालोक ६—१५ । वथा सञ्चिकर्षिद्यस्वसंविदितपरमव्यवसाय-क्षानदर्शनविश्वर्द्धसंशयानध्यवसायः ।

२. न्यायसार पृ. ४ । अनववारणत्वाविशेषत् ऊहानध्यवसाययोर्न संशया-दर्शनन्तरभावः ।

३. तत्त्वार्थसूत्र १-१३ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ता अभिनिवोध इत्यन्तर्भौत्यम्

४. वे इन शब्दों को शब्दयोजना के पहले प्रत्यक्ष मानते हैं तथा शब्द-योजना के बाद परोक्ष मानते हैं यह ऊपर बता चुके हैं ।

तर्क, अनुमान तथा आगम^१। भावसेन ने इन भेदों में एक और प्रकार—ऊहापोह जोड़ा है। तर्क के अर्थ में उह शब्द का प्रयोग पहले होता था^२। भावसेन ने तर्क और ऊहापोह में भिन्नता बताई है जिस का तार्पर्य यह अतीत होता है कि जिस अविनाभावसंबन्ध का ज्ञान अनुमान में प्रयुक्त होता हो उसे तर्क कहना चाहिये तथा ऐसा जो ज्ञान अनुमान में प्रयुक्त न होता हो उसे ऊहापोह कहना चाहिये। यह भेद अप्यत्र देखने में नहीं आता।

यह भी देखनेयोग्य है कि सिद्धसेम लथा उभ के टीकाकारों ने परोक्ष प्रमाण के दो ही प्रकारों का—अनुमान तथा आगम का वर्णन किया है^३। इस मत का आधार सन्दीसूत्र में भिन्नता है जहाँ परोक्ष ज्ञान को आभिन्निक्षेपिक तथा शुल इन दो भेदों में विभक्त किया है^४।

स्मृति (परि० १२)

अन्य दर्शनों में स्मृति को प्रमाण में अन्तर्भूत नहीं किया जाता^५ क्यों कि स्मृति में किसी नये पदार्थ का ज्ञान नहीं होता—वह पुराने प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित होती है। किन्तु अकलंकदेव का कथन है कि स्मृति को प्रमाण मानना चाहिए क्यों कि प्रत्यक्ष पर आधारित होते हुए भी वह पदार्थ के स्वरूप से विसंवादी नहीं होती—और जो भी ज्ञान अविसंवादी हो वह प्रमाण होता है^६। उत्तरवती जैन आचार्यों ने इसी का अनुसरण किया है। भावसेन का स्मृति—वर्णन प्रायः परीक्षामुख के शब्दों पर आधारित है^७।

१. परीक्षामुख ३-१, २। परोक्षमितरत्। प्रत्यक्षादिनिमिलं स्मृतिग्रन्थमित्तान्-तर्कानुमानागमभेदम्।

२. परीक्षामुख ३-७। उपलभ्यानुपलभ्यमिमिलं व्यासिशानस्त्रहः।

३. न्यायवाचस्पटीका पृ. ३३। (परोक्षम्) सामान्यलक्षणस्तुमावादेकान्कारमपि चिप्रतिपत्तिनिराकरणार्थं द्विवा भिन्नते तद् यथा अनुमानं शास्त्रं चेति ।

४. सूत्र २४। परोक्षवाचाणं दुष्कृतं पण्णतं तं जह। आभिन्निक्षेपित्यनाणपरोक्षस्त्रह सुधनागपरोक्षस्त्रह ।

५. न्यायवाचिकतात्पर्यटीका पृ. २१। प्रपात्ताचरन् हि प्रमाणम् । न च भ्यूतिः प्रमाण ।

६. प्रमाणसंग्रह इलो. १०। प्रपात्तमर्यसंवादात् प्रत्यक्षान्वयिनी स्मृतिः ।

७. परीक्षामुख ३-३। संस्कारोद्गोषनिवन्धना लदित्याकारा स्मृतिः ।

प्रत्यभिज्ञान (परि० १३)

प्रत्यभिज्ञान शब्द का अर्थ है पहचानना। किन्तु इस प्रमाण में आचार्यों ने पहचानने के साथ साथ समानता, भिन्नता, निकटता, दूरता, छोटाई, बड़ाई, ऊंचाई जैसे तुलनात्मक ज्ञान के सभी प्रकारों का समावेश किया है^१। इस तरह न्यायदर्शन के उपमान प्रमाण का (जिस में एक चीज़ की समानता से दूसरी चीज़ जानी जाती है^२) यह विकसित रूप है।

बीद्र आचार्यों ने इस प्रमाण को अमर्गुण माना है क्यों कि वे प्रत्येक पदार्थ को क्षणस्थायी मानते हैं और क्षणस्थायी पदार्थ की तुलना करना संभव नहीं होता। इस का खण्डन भावसेन ने किञ्चित्तत्वप्रकाश (परि० ४७) में किया है। इस के तुलनात्मक टिप्पण वहाँ देखने चाहिए।

अनुयोगदार सूत्र (सू. १४४) में औपम्य प्रमाण इस संज्ञा में प्रत्यभिज्ञान के प्रकारों का सन्तर्भाव किया है। वहाँ औपम्य के दो प्रकार बतलाये हैं— साधम्योपनीत तथा विधम्योपनीत। इन दोनों के तीन— तीन प्रकार किये गए हैं— किञ्चित् साधम्योपनीत, प्रायः साधम्योपनीत तथा सर्वसाधम्योपनीत, इसी प्रकार विधम्य के भी किञ्चित्, प्रायः तथा सर्व ये प्रकार हैं।

उद्घापोद (परि० १४)

इस का विवेचन ऊपर परोक्ष के प्रकारों में हो चुका है।

तर्क (परि० १५)

भावसेन ने तर्क शब्द का उपयोग दो अर्थों में किया है। इस परिच्छेद में व्यासि के ज्ञान की तर्क कहा है। आगे परि. ४३ में प्रतिपक्ष में आत्माश्रय, इतरेतराश्रय आदि दोष बतलाना यह तर्क का स्वरूप बतलाया है।

१. परीक्षामुख ३-५, ६। दशैनसाम्नकारणक संकलने प्रत्यभिज्ञानम्
सदेवेदं सत्सदग्नं सद्विलक्षणं तत् प्रतिवीभीत्यादि। यथा स एवार्थ वैवदत्तं
गोसदृष्टो गवयः गोविलक्षणो भविषः इदमसमाद् दूरं वृक्षोऽप्यवित्यादि।

२. न्यायमूल ४-३-६। प्रसिद्धसामर्थ्यात् साध्यसाधनमुनमानम्।

स्वासि के ज्ञान को तर्क अथवा उह यह सज्जा अकर्लकदेव ने दी थी ३ सथा माणिक्यनन्दि ने उन का अनुसरण किया है ४ यह प्रमाण का प्रकार प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों से भिन्न है इस बात का विस्तृत समर्थवादीभस्ति का स्थाद्वादसिद्धि में (प्रकरण १३) पाया जाता है ।

न्यायसूत्र में तर्क एवं ता प्रयोग एवं से भिन्न रूपी हैं दुआ है । अनुमान के लिए उपयोगी विचारविधी को बहाँ तर्क कहा है । उन के कथनानुसार तर्क न प्रमाण है, न अप्रमाण, वह प्रमाण के लिए उपयोगी है ५ । अनुमान के प्रकार (परि० १६, ८८-२९)-

आचार्य ने यही तीन प्रकारों में अनुमान का विभाजन किया है । स्वार्थ सथा परार्थ इन प्रकारों का वर्णन प्रशस्तपाद, सिद्धेन आदि के अनुसार है ६ । केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी, तथा अन्वयव्यतिरेकी इन तीन प्रकारों का वर्णन उद्घोतकर आदि के अनुसार है ७ । किन्तु हष, सामान्यतोद्घष तथा अद्घष ये जो प्रकार आचार्य ने बताये हैं वे अन्यत्र देखने में नहीं आये ८ ।

न्यायसूत्र में अनुमान के तीन प्रकार बताये हैं ९ - पूर्ववत् (कारण से कार्य का अनुमान), शेषवत् (कार्य से कारण का अनुमान) तथा सामान्यतोद्घष (आर्थिकारणभाव से भिन्न सम्बन्धों पर आधारित अनुमान) । वाचस्पति ने साल्यतत्त्वकौमुदी में अनुमान के दो प्रकार बताये हैं - वीत (विशिष्ट) तथा अवीत (निषेधपर) १० ।

१. न्यायविनिक्षय ३२९ । स तर्कपरिमितिः । अविनाभावसंबन्धः साहस्रेनावधार्यते । २. उपलभ्यानुपलभ्मनिमित्तं व्याप्तिशानमूहः । दरीकामुख ३-७ ।

३. न्यायसूत्र ३-१-४० । अविशाततत्त्वेण कारणोपपस्तिस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः । न्यायभाष्य ३-१-४० कथे पुनरयं तत्त्वज्ञानार्थो न तत्त्वज्ञानमेवेति । अनवधारणात् अनुज्ञानात्ययमेकसंर भर्म कारणोपपस्था न त्वक्वधारयति न व्यवस्थिति न निष्क्रियोति एवमेवेदमिति ।

४. न्यायवत्तार इलो, ११ (ऊपर उद्गृत किया है) ।

५. न्यायवर्तिक पृ. ४५, ६. न्यायसार (पृ. १८) में हेतु के दो प्रकार हष और सामान्यतोद्घष बताये हैं, अद्घष का उल्लेख वहाँ नहीं है ।

७. न्यायसूत्र ३-१-५ अथ तत्पूर्वकं श्रिविष्टमनुमानं पूर्ववच्छेषवत् सामान्यतोद्घष । ८. पृष्ठ ३० ।

अनुयोगदारसूत्र (सू. १४) में अनुमान के पूर्वकृत्, शेषकृत् तथा उष्टुप्साधर्म्यवृत् ये तीन प्रकार बतलाये हैं तथा शेषकृत् के पांच प्रकार किये हैं — कार्य से, कारण से, गुण से, अवयव से, आश्रय से । वैशेषिक दर्शन में अनुमान के जो पांच प्रकार बतलाये हैं वे इन से मिलते जुलते हैं ।

अनुमान के अवयव (परि० १६-२१)

न्यायसूत्र में अनुमान के पांच अवयव बतलाये हैं—प्रतिशा, हेतु, उदाहरण, उपनय तथा निगमन । वात्स्यायन ने इस प्रसंग में अनुमान के दस अवयवों की एक परम्परा का उल्लेख किया है जिस में पूर्वोक्त पांच अवयवों के साथ जिङ्गासा, संशय, शक्यप्राप्ति, प्रयोजन तथा संशयविच्छेद ये अवयव अधिक ओड़े जाते थे । दशवैकालिक निर्युक्ति में भद्रबाहु ने भी दस अवयवों की मणिना बतलाई है, वह इस प्रकार है—प्रतिशा, प्रतिशाविभक्ति, हेतु, हेतुविभक्ति, विभक्ति, विपश्चप्रतिवेद, दृष्टान्त, आशंका, आशंकाप्रतिवेद और निगमन । प्रशस्तधार ने अनुमान के पांचही अवयव बताये हैं किन्तु उन के नाम और क्रम न्यायसूत्र से भिन्न हैं, ये अवयव हैं—अपदेश (व्याप्ति का कथन), साधर्म्य-निर्दर्शन (समानता बतानेवाला दृष्टान्त), वैधर्म्य निर्दर्शन (भिन्नता बतानेवाला दृष्टान्त), अनुसन्धान (पक्ष में हेतु का अस्तित्व जानना) तथा ग्रह्याभ्याय (पक्ष में साध्य की सिद्धि) । प्रसुत प्रसंग में भावसेन ने न्यायसूत्र आदि में वर्णित प्रतिशा के दो भाग किये हैं—पक्ष और साध्य । इन दोनों का वर्णन तो पहले के लेखकों

१. अस्येदं कारणं कार्यं संबन्धिष्ठ एकार्यं समवाप्ति विरोधि चेति लैकिकम् ।

२. न्यायसूत्र १-१-३२ । प्रतिशादेशुदाहरणोपनयनिगमनान्यवयवः ।

३. न्यायमाध्य १-१-३२ । दशावयवानेके वैवायिकाः वास्ये संचक्षते विशासा संशयः शक्यप्राप्तिः प्रयोजनं संशयव्युदास इति ।

४. गाथा १४२ ते उ पदिन्द्रियमत्ती हेतु विस्ती विपक्ष पदिसेहो ।

विदिहतो आशंका सर्वदिसेहो निगमणं च ॥ यहां पहले दो अवयवों में विस्तृत व्याप्ति स्पष्टीकरण के अर्थ में आया है ।

ने किया है कि न्यु अवयवों के रूप में पृथक् मण्डना नहीं की गई है।

माणिक्यनन्द के कथनानुसार बाद में जो अनुमान प्रयुक्त होते हैं उन में प्रतिश्ला और हेतु ये दो ही अवयव होने चाहिए। उदाहरण, उपनय सत्य निगमन इन का प्रयोग सो केवल गिर्भों को समझाने के लिए किया जा सकता है, बाद में इन का उपयोग नहीं ऐसा उन का काम है। इस की चर्ची भावसेन ने नहीं की है। फ्रैंक के अंगों की चर्ची में (परि. १००) इस का उल्लेख जरूर हुआ है। सिद्धसेन ने अनुमानवाक्य को पञ्चादिवचनात्मक कहा है। उन के ठीकाकारी ने इस का अर्थ यह किया है कि अनुमानवाक्य में एक (केवल हेतु), दो (एक, हेतु), तीन (एक, हेतु-दृष्टान्त) पांच (उपर्युक्त) या दस अवयवों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है। सिद्धर्थि ने दस अवयवों में पञ्च इत्यादि पांच अवयवों के साथ उन पांच अवयवों की निर्दोषता की शामिल किया है। जिनेश्वर ने उन का समर्थन किया है।

१. किनहुना पञ्च और सात्य में विशिष्ट रूप में एकत्र भी बताया गया है—यथा—साध्याभ्युपयमः पञ्चः (न्यायावतार इलो, १४), सात्य धर्मः कवचित् तद्विजिष्टो वा धर्मी, पञ्च इति बाबत् (परीक्षामुख ३-२०, २१)।

२. परीक्षामुख ३-३२, ४१। एतद् द्वयमेवानुग्रामाङ्गं नोदादृशम्। बाल-अयुसत्यर्थे तत्त्वयोगमें शास्त्र एवाणी न बादे तदनुपयोगात्।

३. न्यायावतार इलो, १३। परार्थमनुमाने तत् पञ्चादिवचनत्मकम्।

४. प्रमालक्षम् इलो, ५६। कवचिद् हेतुः कवचिद्वातं कवचित् पञ्चोपि सम्भवः। यज्ञावप्यवयुक्तोऽपि दशश्च वा कवचिन्मतः ॥

५. न्यायावतारटीका (इलो, १३)। दशावयवं सावने प्रतिपादनोपायः तदृथया पञ्चादयः पञ्च तत्त्वादपश्च।

६. प्रमालक्षम् (इलो, ५६)। प्रत्यक्षादिभिराकृतपञ्चदोषपरिहारः अतिष्ठ-विकल्पानेकान्तिकदोषपरिहारो शाते साध्यसाधनोभविकल्पादिपरिहारः तुष्पनी-तत्त्वपरिहारो शुर्णिगमितपरिहारो बदत्य शति।

हेतु का स्वरूप (परि० १५ तथा २२—२५)

न्यायसूत्र के अनुसार हेतु वह होता है जो उदाहरण की समानता से या भिन्नता से साध्य को सिद्ध करे । दिग्ग्राम ने उदाहरण की समानता और भिन्नता को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा कि जो पक्ष में है, सप्तक में है तथा विपक्ष में नहीं है वह हेतु होता है । इस पर कुमारिल का कथन या कि हेतु का पक्ष में अस्तित्व सर्वदा होता ही है ऐसा नहीं है — बाढ़ से मारी वर्षी का जहाँ अनुमान होता है वहाँ बाढ़ यह हेतु वर्षी के स्थान से बहुत दूर होता है । इसी बात को देखते हुए आचार्यों ने भी माना कि पक्ष — सप्तक — विपक्ष की वर्षी न करते हुए हेतु उसे माना जाय जिस के बिना साध्य की उपपत्ति न लगती हो । यदि हेतु में अन्यथा-नुपपत्ति है तो अन्य गुण हों या न हों — इस से कोई फरक नहीं पड़ता । इस अन्यथा-नुपपत्ति लक्षण के प्रतिपादन का श्रेय आचार्य पात्रकेसरी को दिया जाता है । तथा सिद्धसेन, अकलंकदेव आदि ने इसी लक्षण को माना है । किन्तु इस प्रसंग में मायसेन ने व्यासिमान् पक्षधर्मे यह हेतु का लक्षण बतला कर पूर्वपरम्परा की है, यहाँ के बौद्ध-परम्परा से प्रभावित प्रतीत होते हैं । साथ ही हेतु के छह गुण बतला कर उन्होंने नैयायिक-

१. न्यायसूत्र १-१-३४, ३५ । उदाहरणसाधर्यात् साध्यसाधनं हेतुः ।
तथा वैधर्यात् ।

२. तत्र यः सम साकाशीये द्वेषा चासंस्तद्यथे ।

३. हेतुः विपरीतोऽसादसिद्धोन्यस्वनिश्चितः ॥

उद्धृत-न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका पृ. २८९

३. परि. २४ में उद्धृत इलोक देखिए । हेमचन्द्र तथा देवशूरि ने इन्हें भइ (कुमारिल) के नाम से उद्धृत किया । है किन्तु कुमारिल के उपलब्ध ग्रन्थों में ये नहीं मिलते ।

४. न्यायावसार इलो, २२ । अन्यायनुपदेशवें हेतोर्लक्षणमीरितम् । न्याय-
विनिश्चय इलो, ३२३ अन्यथानुपदेशवें यथा तत्र अयेण किम् । मात्यथानु-
पदेशवें यथा तत्र अयेण किम् ॥ (यह इलोक पात्रकेसरी का है तथा अकलंकदेवने
उद्धृत किया है) ।

परम्परा का भी संग्रह किया है। नैयाविक परम्परा में हेतु के पाँच गुण माने गये हैं — पक्षधर्मत्व, सपक्ष में सत्त्व, विपक्ष में असत्त्व, अवधित विषय हेतु, उस प्रतिपक्ष जल्द न जोड़ा। सावसेन ने इस के साथ असिद्धसाधकत्व यह गुण भी जोड़ा है। हेतु के छह गुणों की एक दूसरी परम्परा भी रही है। इस में पूर्वोक्त पाँच गुणों के साथ ज्ञातत्व यह गुण जोड़ा गया है। इस का उल्लेख अर्चटक्ट हेतुबिश्वदृष्टीका में मिलता है^१।

हेतु पक्ष का धर्म नहीं भी होता इस विषय में भावसेन ने जिस पूर्वपक्ष का खण्डन किया है वह बादीभासिंह की स्थाद्वादसिद्धि में विस्तृत रूप से मिलता है^२।

दृष्टान्त (परि० २०)

भावसेन के वर्णनानुसार दृष्टान्त वह होता है जो बादी और प्रतिबादी दोनों को मान्य हो। उन्होंने इस के दो प्रकार बतलाये हैं — अन्वय तथा अपतिरेक। न्यायसूत्र में कहा है कि दृष्टान्त लौकिक तथा परीक्षक दोनों को मान्य होना चाहिए^३। वहां इस के प्रकारों को साधर्य तथा वैधर्य ये नाम दिये हैं। सिद्धसेन ने बादी-प्रतिबादी या लौकिक-परीक्षक का उल्लेख नहीं किया है — साध्य और साधन का निश्चित सम्बन्ध जिस में दिखाई दे उसे

१. न्यायसार दृ. २०। तत्र पञ्चलपः अन्वयव्यतिरेकी । रूपाणि तु प्रद-
श्यन्ते । पक्षधर्मत्वं सपक्षे सत्त्वं विपक्षाद् व्यावृत्तिः अष्वाधितविषयत्वमसत्-
अतिपक्षत्वं चेति ।

२. अकलंकग्रन्थव्य प्रस्तावना पु. ६३ ।

३. प्र. ४ इलो. ८२—८३ हेतुप्रयोगकाले तु तद्विशिष्टस्य धर्मिणः ॥
किं च पक्षादिवर्मत्वेऽप्यन्तर्ब्याप्तेभावतः ॥ तद्वुत्त्वादिहेतुर्दां गमकत्वं न दृश्यते ॥
पक्षधर्मत्वहीनोऽपि गमकः कृत्तिकोदयः ॥

४. न्यायसूत्र १-१-१५ । लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे तु द्विसाधर्य स
दृष्टान्तः ।

दृष्टान्त कहा है । देवसूरि ने इसी बात को प्रकारान्तर से कहा है ॥

अनुमान में अन्वय और व्यतिरिक्त (परि० २६—२८)

यहाँ हेतु के अनुसार अनुमान के तीन प्रकार बतलाये हैं — केवलान्वयी, केवलव्यतिरिक्ती और अन्वयव्यतिरिक्ती । इन के प्रतिशादन का ऐयउद्दीतकर को दिया जाता है ॥ इन में अन्वयव्यतिरिक्ती अनुमान तो सर्वमान्य है । किन्तु केवलान्वयी और केवलव्यतिरिक्ती के बारे में मतभेद है ॥ आचार्य ने यहाँ इस विषय की जो चर्चा की है वह प्रायः शब्दशः विश्वतत्त्वप्रकाश (परि. १६—१७) में भी प्राप्त होती है । जयन्त में केवलान्वयी हेतु को प्रमाण नहीं माना है ॥ केवलव्यतिरिक्ती के बारे में केशवमिश्र का कहना है कि इस से कोई नई बात मालूम नहीं होती, यह तो किसी वस्तुसमूह का लक्षण बतलाने का एक प्रकार है ॥

हेत्वाभास (परि० ३०—३९)

न्यायसूत्र में हेत्वाभास के पांच प्रकार बतलाये हैं — सव्यमिच्छाह (जो समान तथा विरुद्ध दोनों पक्षों में मिलता हो), विरुद्ध (जो विरुद्ध पक्ष में ही हो), प्रकरणसम (जिस का प्रतिपक्ष समान रूप से संभव हो), साध्यसम (जिसे सिफ़ करना असुरी हो) तथा कालातीत (जिस के

१. न्यायावतार इलो. १८—१९ । साध्यसाधनयोद्योप्तिर्थत्र निष्ठीयतेतराम् ।
साध्यमैण स दृष्टान्तः संवन्धस्मरणान्मतः ॥ साध्ये निवर्त्माने तु साधनस्थाप्य-
संभवः । लक्ष्यते यत्र दृष्टान्ते वैधमैणेति स स्मृतः ॥

२. प्रमाणग्रन्थतत्त्वालोक १—४३ । प्रतिक्षयप्रतिपत्तेरास्पदं दृष्टान्तः ।

३. न्यायकार्तिकतात्पर्यं टीका पृ. १७१,

४. न्यायमंजरी भा. २ पृ. १४८ । केवलान्वयी हेतुनीस्त्वेव, सामान्य-
लक्षणं तु अनुग्रानलक्षणात् साध्यसाधनपदात् या अवग्रान्तव्यम्, भाष्याक्षराणि तु
कथमप्युपेक्षित्यामहे ।

५. तर्कभाषा पृ. ११ लक्षणमपि केवलव्यतिरिक्ती हेतुः—अत्र च व्यवहारः
साध्यः ॥

उदाहरण का काल साध्य के काल से भिन्न हो)^१। उत्तरकालीन नैयायिक आचार्यों ने साध्यसम के लिए असिद्ध इस संज्ञा का प्रयोग किया, कालातीत के लिए कालात्ययापदिष्ट शब्द का तथा सव्यभिकार के लिए अनैकान्तिक शब्द का अयोग किया। कालात्ययापदिष्ट के अर्थ में भी ऐसे हुआ — जिस का साध्य कानून हो उसे यह नाम दिया गया। उद्योतकर तथा जयन्त ने इस पढ़ति का वर्णन किया है^२। भासवेङ्ग ने इन पांच के साथ अनध्य-वसित यह छठा प्रकार जोड़ा। जो फेवल पक्ष में हो (सपक या विपक्ष में न हो) किन्तु साध्य को सिद्ध न कर सके वह अनध्यवसित हेत्वाभास होता है^३। भावसेन ने इन छह प्रकारों के साथ अकिञ्चिकर यह प्रकार जोड़ा है — जो सिद्ध साध्य के बारे में हो वह अकिञ्चिकर हेत्वाभास होता है^४। किन्तु प्रकरणसन हेत्वाभास के वर्णन में ये सदृष्ट करते हैं कि यह अनैकान्तिक से भिन्न नहीं है।

बौद्ध आचार्य हेत्वाभास के तीन ही प्रकार मानते हैं — असिद्ध, विरुद्ध तथा संदिग्ध (इसे अनैकान्तिक या अनिश्चित भी कहा है)^५। सिद्धसेन, देवसूरि आदि ने इसी प्रकार वर्णन किया है^६।

अकलंकदेव ने असिद्ध आदि प्रकारों को एक ही अकिञ्चिकर हेत्वाभास के प्रकार माना है। जो भी हेतु अन्यथा उपपत्ति हो सकता है (साध्य-

१. न्यायसूत्र १-२-४। सव्यभिकारविषयप्रकरणमस्तुत्यसमकालातीताः देत्वाभासाः।

२. न्यायमंजरी भा. रु. १५३-६८.

३. न्यायसार पृ. २५-३५.

४. माणिक्यनन्दि ने अकिञ्चिकर में इस प्रकार के साथ कालात्ययापदिष्ट को भी अन्तर्दृश किया है (परीक्षामुख ६-३९)।

५. इस विषय में दिग्गंग का इलोक ऊपर उद्धृत किया है।

६. न्यायावतार इलो. २३। असिद्धस्तपतीतो यो योऽन्यथैवोपचयते।

विरुद्धो योऽन्यथाप्यथ युक्तोऽनैकान्तिकः स द्वा।
प्रमाणनयतस्यालोक ६-४७।

के बिना भी जिस की उपयति लगती है अर्थात् साध्य से जिस का अविनाभाव संबन्ध नहीं है) वह अकिञ्चिकर हेत्वाभास है — असिद्ध आदि उसी के प्रकार है३। किन्तु माधिक्यनिद ने हेतु के लक्षण में परिवर्तन न करते हुए भी हेत्वाभास के चार प्रकार किये हैं। वे असिद्ध आदि तीन प्रकारों के साथ अकिञ्चिकर यह चौथा प्रकार मानते हैं (जो सिद्ध या वाधित साध्य में प्रयुक्त हो उसे वे अकिञ्चिकर कहते हैं)४।

भावसेन ने असिद्ध आदि हेत्वाभासों के कई उपभेदों का जो वर्णन किया है वह प्रायः शब्दशः भासर्व इके अनुसार है५। अन्य जैन आचार्यों ने इन उपभेदों के वर्णन में हचि नहीं दिखाई है। भावसेन ने स्वयं भी विश्वतत्त्वप्रकाश (पृ. ४१) में असिद्ध के दो ही प्रकार बतलाये हैं — अविद्यमानसत्ताक और अविद्यमाननिष्ठ्य। प्रसाचन्द्र ने विशेष्यासिद्ध आदि प्रकारों का अविद्यमानसत्ताक असिद्ध में समावेश किया है६।

दृष्टान्तभास (परि० ४०—४२)

भावसेन ने अन्यदृष्टान्त के छह तथा व्यतिरेकदृष्टान्त के छह आभास बताये हैं। इन का वर्णन भासर्वश के अनुसार है७। जयन्त ने अन्य और व्यतिरेक दोनों दृष्टान्तों के पांच-पाँच आभास बतलाये हैं — उन्होंने आश्रयविकल का वर्णन नहीं किया है८ तथा अप्रदशितव्याप्ति के स्थान पर अनन्य का वर्णन किया है। सिद्धर्थि ने इन आभासों की संख्या तो बारह ही मानी है किन्तु स्वरूप भिन्न प्रकार से बताया है — साध्यविकल, साधनविकल, व उभयविकल के साथ संदिग्धसाध्य, संदिग्धसाधन व संदिग्धोभय ये प्रकार

१. न्यायविनिष्ठ्य श्लो. २६९। साधनं प्रकृताभाषेऽनुपपञ्चं ततोऽप्ते ।

विश्वासिद्धसंदिग्धा अकिञ्चित्करविस्तराः ॥

२. परीक्षामुख ६—११। हेत्वाभासा असिद्धविश्वानैकानितकाकिञ्चित्कराः ॥

३. न्यायसार पृ. २५—३८।

४. प्रसेत्यकमलमातृण्ड ६-२२.

५. न्यायसार पृ. ३६-३८।

६. न्यायमजरी भा. २ पृ. १४०। तत्र साध्यविकलः साधनविकल उभयविकल इति वस्तुदोषकृतात्म्यः साधर्म्यदृष्टान्ताभासाः अनन्ययो विप्रीतान्य इति द्वौ वज्जनदोषकृतौ ... वैधर्म्यदृष्टान्ताभासा। अपि पञ्चैव, साध्यान्यात्म्यः साधनात्यात्म्यत्वा उभयात्यात्म्यत्वा इति वस्तुदोषात्म्यः अध्यतिरेको विपरीतात्यतिरेक इति वज्जनदोषी द्वौ ।

उन्होंने जोड़े हैं तथा अनन्य आदि प्रकारों को अयोग्य बताया है १। संदिग्धसाध्य आदि प्रकारों का उल्लेख मासर्वज्ञ ने भी किया है तथा उनमें संदिग्धान्य को जोड़ कर (अन्यदृष्टान्त के चार तथा व्यतिरेकदृष्टान्त के बार इस प्रकार) आठ प्रकारों की मान्यता का उल्लेख किया है २। देवसूरि ने इस दोनों प्रकारों को जोड़ कर अठारह दृष्टान्ताभास बताये हैं - साध्यविकल आदि तीन, संदिग्धसाध्य आदि तीन, तथा अनन्य, विपरीतान्य व अप्रदर्शितान्य ये अन्यदृष्टान्त के आभास हैं । इसी प्रकार व्यतिरेक दृष्टान्त के भी भी आभास हैं । माणिक्यनन्दि सिर्फ आठ दृष्टान्ताभास मालते हैं - साध्यविकल आदि तीन तथा विपरीतान्य, एवं साध्याव्यावृत्त आदि तीन एक विपरीतान्यतिरेक ३ ।

तर्क (परि० ४३—४४)

इस विषय का संक्षिप्त उल्लेख ऊपर परि. १९ के टिप्पण में किया है । आत्मान्य इत्यादि तर्क के प्रकार तथा उन के दोषों का संक्षिप्त उल्लेख आचार्य ने विश्वतत्त्वप्रकाश (परि. ३९) में भी किया है । अन्यत्र इस विषय का वर्णन देखने में नहीं आया ।

छल (परि० ४५—४८)

यह वर्णन ग्रायः शब्दशः न्यायसूक्त तथा उस की टीका-परम्परा पर आधारित है ४ ।

१. न्यायावतारटीका पृ. ५६-६०.

२. न्यायसार पृ. ३८-३९। आम्ये तु सन्देहदोषेण अपरान् अष्टौ उदाहरणाभासान् वर्णयन्ति । इत्यादि ।

३. प्रमाणनयतत्त्वालोक अ. ६ स. ५८-७९.

४. परीक्षासूत्र अ. ६ स. ४०-४५.

५. न्यायसूक्त अ. ३, अ. २ स. १०-१४। वक्तव्यविषातः अर्थविकल्पोपपत्त्या छलम् । इत्यादि ।

जातियां (परि० ४८-६९)

यहाँ जातियों का समुचित लक्षण नैयायिक परम्परा के अनुसार है। जातियों के चौबीस प्रकारों के नाम तथा लक्षण न्यायसूत्र में मिलते हैं। उस में साध्यसम के स्थान पर आचार्य ने असिद्धादिसम का वर्णन किया है।

अकलंकदेव ने जातियों का सामान्य लक्षण ही कहाया है — भेदों का वर्णन नहीं किया क्यों कि ये भेद अनन्त हो सकते हैं तथा शास्त्र में उन का विस्तार से वर्णन हो चुका है। यहाँ शास्त्र शब्द से उन का अभिप्राय न्यायसूत्र से हो सकता है। जातियों की संख्या का नियम नहीं है यह बात नैयायिक विद्वानों में भी मानी है। न्यायसार में सोलह जातियों का ही वर्णन है^१ किन्तु न्यायसूत्र में वर्णित जातियों के अतिरिक्त अनन्यसमा आदि जातियाँ हो सकती हैं इस की सूचना भी वहाँ मिलती है^२।

भावसेन ने जातियों की संख्या बीस मानी है। वे अर्थापत्तिसम तथा उपपत्तिसम को प्रकरणसम से अभिन्न मानते हैं। अद्यते ने प्रकरणसम तथा उपपत्तिसम द्वारा साधर्म्यसम से अभिन्न मानने के मत का उल्लेख कर उस का खण्डन किया है, उन का कथन है कि साधर्म्यसम में प्रतिपक्ष का

१. न्यायसूत्र १-२-१८। साधर्म्यवैधर्म्यमिति प्रत्यवस्थानं आसिः। न्यायसार पृ. ४६ प्रयुक्ते हेतौ सभीकरणाभिप्रायेण प्रसंगो जातिः।

२. न्यायविनिधिय इलो. ३७६ मिथ्योत्तराणामानन्यात् शास्त्रे वा विश्वरोक्तिः। साधर्म्यादिसमत्वेन जातिनेह प्रतन्यते ॥ विद्वानन्द तथा प्रभाचन्द्र ने इसी विश्विकोण को मान्य किया है किन्तु वे पूर्ववर्णित जातियों का वर्णन भी करते हैं (तत्त्वार्थइलोकवार्तिक पृ. २९८-३१० प्रमेयकर्मलमार्तण्ड पृ. २९६-२००)।

३. न्यायमंजरी भा. २ पृ. १७६। सत्यप्राप्तानन्त्ये आतीनामसंकीर्णोदाहरणविवेक्षया चतुर्विशतिप्रकारत्वमुपबर्णितम् न तु तत्संख्यानिष्ठमः कृत इति।

४. न्यायसार पृ. ४७-५५ इस में प्रसंगसम, प्रतिदृष्टान्तसम, संक्षेपसम, प्रकरणसम, अर्थापत्तिसम, अनित्यसम तथा कार्यसम का वर्णन नहीं है।

५. न्यायसार पृ. ५५-५६। एतेनान्यत्वस्य आत्मनोऽनन्यत्वात् अन्यत्वं नास्तीत्यसदुत्तरणि (ठीका—इथमनन्यत्वमा जातिः) प्रत्युक्तानि ।... आनन्द्यत्वं न सर्वीणि जात्युत्तरणि उदाहर्तु शक्यन्ते द्वापामपि उदाहरणार्थात् ।

७ प्राण = १ स्तोक, ८ स्तोक = १ छद्म, ७७ छद्म = १ मुहूर्त, ३० मुहूर्त = १ अहोरात्र, १९ अहोरात्र = १ पक्ष, २ पक्ष = १ मास, २ मास = १ ऋतु, २ ऋतु = १ अयन, २ अयन = १ संवत्सर, ९ संवत्सर = १ युग, २० युग = १ वर्षशत, १० वर्षशत = १ वर्षसहस्र, १०० वर्षसहस्र = १ वर्षशतसहस्र, ४४ वर्षशतसहस्र = १ पूर्वोग (यहाँ से ऊपर प्रत्येक मात्र पूर्वोगाप के ४४ लक्ष गुणित बतलाया है, जिन के नाम हैं - पूर्व, त्रिलिङ्ग, त्रुटित, अटटींग, अठठ, अववांग, अवव, हुहुवंग, हुहुङ्ग, उत्त्वलींग, उत्त्वल, पञ्चोग, पञ्च, नलिनींग, नलिन, अच्छमित्तरंग, अच्छानित्तर, अकुलांग, अयुत, प्रयुतोग, प्रयुत, नमितांग, नमित, चूलिकांग, चूलिका, शीषिप्रहेलिकांग, शीषिप्रहेलिका)।

गणितसारसंग्रह (अ. १, श्ल. ३२-३३) में कालप्रमाण की गणना एक वर्ष की अवस्था तक बतलाई है। वह यहाँ आचार्य द्वारा दी गई तालिका से मिलती है।

तिलोयपण्ठित्ति (अ. ४, गा. २८९-२८६) में भी कालगणना की गणित बतलाई है।

उपमान प्रमाण (परि० १२८)

अतिथिस्तुत क्षेत्र और काल की गणना के लिए उपमाओं के द्वारा पल्योपम, सामारोपम आदि संज्ञाओं का प्रयोग करना जैन ग्रन्थों की विशेषता है। इन्हीं संज्ञाओं को वहाँ उपमान प्रमाण कहा है (न्यायदर्शन में वर्णित उपमान का इस से कोई संबन्ध नहीं है, उस उपमान का समावेश पूर्वोक्त प्रत्यभिज्ञान परोक्ष प्रमाण में होता है यह ऊपर बताया है)। इस विषय का वर्णन कई ग्रन्थों में मिलता है जिन में प्रमुख हैं—अनुयोगद्वाररसूत्र (सू. १३८) तिलोयपण्ठित्ति (प्रथम अधिकार, इस का विवेचन जंबूदीवपण्ठितीसंग्रह की प्रस्तावना में उपलब्ध है) तथा गोम्मटसार (कर्मकाण्ड) की हिन्दी भूमिका।

श्लोकसूची

	पृष्ठांक		पृष्ठांक
अहानि चत्वारि	७९	लक्षणेपि निहम्यसे	४८
अंश्चीकृतं वस्तु	१०	तत्त्वमत्प्रसिद्धाङ्गं	४७-
अहातसत्त्वचेतोभिः	८१	तथा चेदमिति प्रोवते	८९
अशानोपास्तिरज्ञानं	८३	तदैहलो दीपगुञ्जाव्य	८५
अनुग्राहस्य शिष्यस्य	७६	तस्मात् समं जनैः	७६
अनेकवाचके शब्दे	४८	तत्त्विकः प्रातिभः	८४
अपक्षपातिनः प्राज्ञाः	८०	चायन्ते वा पदानि	८९
अपूर्ज्या यत्र धूयन्ते	८२	हण्डादैः भृतज्येष्ठैः	८१
अर्थापश्युपपत्ती	६५	द्रुतं विलम्बितं	७८
असंकेताप्रसिद्धादि	१०	नदीपूरोप्यशोदेशे	११
असमेनापि हृतेन	७७	न रात्रे नामि	७८
असूपकर्त्त्वं शठता	७६	नार्यसम्बिद्यमः	८१
आज्ञानामीर्य	८१	मैवारोहेत् तुला	७७
आज्ञावान् धार्मिकः	७९	पश्चप्राताद् वदेद्	८२
आदिशान् वादयेद्	७९	पञ्चावयवान् धौराः	८८
इति पञ्चाप्यसारेण	६९	पञ्चार्थं न विजानाति	१०
उक्ते देतौ षिपक्षेष	५१	परप्रधर्मित्रहितेन	७७-
उपचारेण वक्षना	५०	परार्थे तात्त्विकस्येव	८७
कुर्यात् लदाग्रहं	७५	पित्रोश्य ब्राह्मणत्वेन	१९
कर्मी रक्षपर्यक्षः	८४	प्रकृतेमहात्मतैर्हकारः	११९
गोष्ठां सत्त्वाधनैरेक	७६	प्रतिज्ञा तु न कर्तव्यः ।	७८
ग्निवायदन्तराणीर्थ	८८	प्रतिवद्यानुलोक्येन	८६
छलादयस्तदाभासाः	४८	प्रसिद्धावयवं गृह	८७-
छलानुद्गमावने	७३	प्रसिद्धावयवं वाक्यं	८७-
ज्ञाननुभवसिद्धान्ती	८०	प्राकृतसंस्कृतमार्ग	७४
ज्ञातपञ्चार्थकः	९०	प्रातिभे निष्टतार्थे वा	८६

पृष्ठांक		पृष्ठांक
८४	विद्वद्योगे:	८३
८	विदितस्वपरेतिहा:	८३
८२	विपक्षस्थापना:	९१
७८	विवादपदसुद्दिश्य	७४
१२४	विशिष्टैः कियमाणाणां	७७
७९	वीतरागक्षये	१२, ११
८७	व्याख्याकादे च	७७
८९	व्याधिः पीडा	८३
७६	व्यासिभाग् पक्षधर्मम्	७५
८४	श्रीतालं खरतालं	१०
७३	श्रीवर्धमानं	८
७७	सत्साधनेन	७५
७८	उदाग्रहः प्रमाणेन	७५
८४	उभापतिर्क्षेद्	८०
८२	उमज्जसः कृपालुश्च	७९
८३	समुद्रः पीयते मैथैः	७०
८२	लम्परोव तदशाने	११
८३	साधने दूषणं चापि	११
७२	साधनाद् दूषणाद्	४८
८६	सुबनैः किमचानद्भिः	५५
९७	सौवर्णी राजतं ताम्रं	८९
६५	स्त्रात् पक्षगाय	८५
७४	स्वयं मैव प्रयोक्तव्याः	७३
८५	स्वयं नैवाभिषेयानि	१६
८१	देतुत्वकारणत्वाभ्यां	४९
८५	देतुद्वान्तदोषेषु	८६